॥ श्रीहरिः ॥

1774

देवीस्तोत्ररत्नाकर

गीताप्रेस, गोरखपुर

1774

॥ श्रीहरिः ॥

देवीस्तोत्ररत्नाकर

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०६४ द्वितीय पुनर्मुद्रण ५,०००

कुल मुद्रण १५,०००

❖ मूल्य— २२ रु०

(बाईस रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)

फोन : (०५५१) २३३४७२१; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७

e-mail : **booksales@gitapress.org** website : **www.gitapress.org**

1774 देवीस्तोत्ररत्नाकर— 1 B

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

भक्त और उसके आराध्यका परस्पर नित्य सम्बन्ध है। भक्तकी भावनाके अनुसार भगवान् उसके सर्वविध कल्याण-मंगलके लिये सगुण-साकाररूपमें प्रकट होते हैं और अनिर्वचनीय होते हुए भी वे भक्तोंकी वाणीके विषय बनते हैं। भक्त भगवान्‌की उस मंगलमयी मूर्तिको अपने हृदयदेशमें तो बैठा ही लेता है; साथ ही आराधना करनेके लिये अर्चाविग्रहके रूपमें मन्दिर आदिमें प्रतिष्ठित भी कर लेता है।

मूलतः एक ही अद्वितीय सत्-तत्त्व सर्वत्र विद्यमान है—'एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।' उपासकोंके रुचिभेदसे (रुचीनां वैचित्र्यात्) कभी वह भगवत्तत्त्वके रूपमें पूजित होता है तो कभी आदिशक्ति जगदम्बाके रूपमें। जगदम्बारूप मातृतत्त्व है, इसीलिये उसकी करुणाकी, कृपाकी कोई इयत्ता नहीं है। कुपुत्रपर भी माताका अपार स्नेह रहता है—'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥' अपने उपासकद्वारा कितना ही अपराध बन जाय, फिर भी माता उसका परित्याग नहीं करती—'अपराधपरम्परापरं न हि माता समुपेक्षते सुतम्॥' माँकी उपासनाकी यह विशेष बात है कि जो उनकी शरणमें चले जाते हैं अथवा उनके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, वे दूसरोंको भी शरण देनेयोग्य—आश्रय देनेयोग्य हो जाते हैं—'त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥' इसी बातको देवगण महादेवीकी स्तुति करते हुए कहते हैं—हे विश्वेश्वरि! आप विश्वका पालन करती हैं।

आप विश्वरूपा हैं, इसलिये सम्पूर्ण विश्वको धारण करती हैं। आप विश्वनाथकी भी वन्दनीया हैं। जो लोग भक्तिपूर्वक आपके सामने मस्तक झुकाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्वको आश्रय देनेवाले हो जाते हैं—

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥

(मार्कण्डेयपुराण)

एक बार देवगण भगवतीके पास गये और उनसे पूछने लगे—हे महादेवी! आप कौन हैं? 'कासि त्वं महादेवीति।'—इसपर वे बोलीं—'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च।' अर्थात् मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। मुझसे प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है।

यही एक शक्तितत्त्व अनेक नाम-रूपोंमें प्रतिष्ठित है। महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती उसी महादेवीके त्रिविध रूप हैं। काली, तारा आदि दस महाविद्याओंके रूपमें वे ही प्रतिष्ठित हैं। दुर्गा, चण्डिका, भवानी, कात्यायनी, गौरी, पार्वती, गायत्री, अन्नपूर्णा, सीता तथा राधा आदि उन्हीं महाशक्तिके विविध नाम-रूप हैं। साधक अपनी अभिरुचिके अनुसार आराधना करता है।

उपासनामें मन्त्रजप, नामजप, ध्यान, कवच, पटल, पद्धति, हृदय, स्तोत्र, शतनाम, सहस्रनाम आदि कई उपाय परिगणित हैं तथापि आराध्यके समक्ष आत्मनिवेदनका सर्वसुलभ साधन स्तुति या स्तोत्रपाठको बताया गया है। वास्तवमें जो गुण व्यक्तिमें विद्यमान नहीं हैं उनका वर्णन करना ही स्तुति है, परंतु

आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुमें तो सभी गुण विद्यमान हैं—'समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः॥' (आलवन्दारस्तोत्र २१)

यद्यपि परमात्माके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन करना जीवके वशकी बात नहीं है, परंतु प्रार्थनाके माध्यमसे भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करनेपर व्यक्तिका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तथा मन और वाणी भी पवित्र हो जाती है, इसलिये सर्वगुणसम्पन्न प्रभु ही वास्तविक स्तुतिके अधिकारी हैं। स्तुतिसे शीघ्र ही प्रभु द्रवित होते हैं और आराधक कृतकृत्य हो जाता है, इसीलिये सगुणोपासनामें स्तुति-प्रार्थनाका प्राधान्य है। स्तुतिमें मुख्यरूपसे आराध्यकी महिमा और स्तोताके दैन्यनिवेदन तथा प्रपत्तिके भावका निरूपण रहता है। स्तुति-निवेदनमें उपास्य, उपासक तथा उपासना—इस त्रिपुटीका अभेद होकर तादात्म्यकी स्थिति हो जाती है।

स्तुति-साहित्य अत्यन्त विशाल है। वेदोंके उपासनाकाण्डमें स्तुतिका ही प्राधान्य है। तन्त्रागमों तथा पुराणोंका तो अधिकांश भाग स्तुतियोंसे ही भरा पड़ा है। यही बात भक्तों, संतों तथा आचार्योंकी वाणियोंमें भी निहित है। अद्वैतनिष्ठाके सर्वोपरि आचार्य श्रीशंकराचार्यजीने सभी देवी-देवताओंकी स्तुतियाँ निरूपित कर भक्त और भगवान्‌के यथार्थ-सम्बन्धका बोध कराया है।

भगवत्-सम्बन्धके स्थापनमें स्तुतिके माहात्म्यको देखते हुए पूर्वमें गीताप्रेससे 'स्तोत्ररत्नावली' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया गया था, उसे जनताने बहुत सराहा। इसी क्रममें विगत दिनों भगवान् शिव-सम्बन्धी स्तोत्रोंका 'शिवस्तोत्ररत्नाकर' नामसे

हिन्दीभाषानुवादके साथ प्रकाशन हुआ था, वह भी अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। इसी शृंखलामें यह 'देवीस्तोत्ररत्नाकर' ग्रन्थ प्रस्तुत है, इसमें प्रधानरूपसे महादेवीके अनन्त रूपोंमें कुछ मुख्य स्वरूपों तथा गंगा, यमुना आदि पुण्यतोया नदियों और तुलसी, षष्ठी आदि देवियोंकी स्तुतियोंका एकत्र संकलन किया गया है। साथ ही सर्वसाधारण भी अर्थानुसंधान कर सकें, इस आशयसे स्तोत्रोंका हिन्दीभाषानुवाद भी साथमें दिया गया है। मूल पाठकी दृष्टिसे 'श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र' तथा देवीके कुछ ललित ध्यान-स्वरूप भी हिन्दी-अर्थके साथ दिये गये हैं। ग्रन्थके अंतमें विविध देवियोंकी आरतियाँ आदि भी संग्रहीत हैं।

आशा है, यह ग्रन्थ सभीके लिये ग्राह्य एवं उपयोगी होगा।

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

देवीस्तोत्राणि

१- श्रीदेव्याः प्रातःस्मरणम् [संकलित] ११
२- सप्तश्लोकी दुर्गा [संकलित] १२
३- श्रीदुर्गापदुद्धारस्तोत्रम् [श्रीसिद्धेश्वरीतन्त्रात्] १५
४- भुवनेश्वरीकात्यायनीस्तुतिः [श्रीमार्कण्डेयमहापुराणात्] १९
५- कात्यायनीस्तुतिः [श्रीमहाभागवतमहापुराणात्] २८
६- दुर्गास्तुतिः [,,] ३१
७- जयास्तुतिः [श्रीमार्कण्डेयमहापुराणात्] ३४
८- कामेश्वरीस्तुतिः [श्रीमहाभागवतमहापुराणात्] ४६
९- देवीस्तुतिः [श्रीमार्कण्डेयमहापुराणात्] ४८
१०-आनन्दलहरी [श्रीमच्छङ्कराचार्यस्य] ५४
११-ललितापञ्चकम् [,,] ६२
१२-मीनाक्षीपञ्चरत्नम् [,,] ६५
१३-भवान्यष्टकम् [,,] ६७
१४-तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम् *[योगनिद्रास्तुतिः]* [दुर्गासप्तशतीतः] ६९
१५-पार्वतीस्तुतिः [श्रीमत्स्यमहापुराणात्] ७३
१६-पार्वतीस्तुतिः [श्रीमहाभागवतमहापुराणात्] ७५
१७-श्रीसीताजीकृत गौरीवन्दना [श्रीरामचरितमानस] ७७
१८-दशमयीबालात्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रम् [श्रीमेरुतन्त्रात्] ८०
१९-देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम् [श्रीमच्छङ्कराचार्यस्य] ८६
२०-देवीस्तोत्रम् [श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणात्] ९१
२१- देवीस्तुति [विनय-पत्रिका] ९९
२२- भवानीस्तुति [,,] १००

विषय पृष्ठ-संख्या

कालीस्तोत्रम्

२३- भद्रकालीस्तुतिः [श्रीमहाभागवतमहापुराणात्] १०३

२४- श्रीकालिकाष्टकम् [श्रीमच्छङ्कराचार्यस्य] १०६

सरस्वतीस्तोत्राणि

२५- श्रीसरस्वतीस्तोत्रम् [संकलित] ११०

२६- श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रम् [श्रीमद्ब्रह्मणा कृतम्] ११४

२७- नीलसरस्वतीस्तोत्रम् [संकलित] १२१

लक्ष्मीस्तोत्राणि

२८- श्रीकनकधारास्तोत्रम् [श्रीमच्छङ्कराचार्यस्य] १२४

२९- कल्याणवृष्टिस्तोत्रम् [,,] १३१

३०- श्रीलक्ष्मीस्तोत्रम् [श्रीविष्णुमहापुराणात्] १३७

३१- महालक्ष्म्यष्टकम् [इन्द्रकृतम्] १४२

३२- महालक्ष्मीस्तुतिः [श्रीस्कन्दमहापुराणात्] १४४

३३- श्रीसूक्तम् [ऋक्परिशिष्टात्] १४८

३४- लक्ष्मीस्तोत्रम् [श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणात्] १५५

सीतास्तोत्राणि

३५- श्रीजानकीस्तुतिः [श्रीस्कन्दमहापुराणात्] १६१

३६- श्रीसीता-स्तुति [विनय-पत्रिका] १६३

३७- श्रीसीता-स्तुति [,,] १६४

राधास्तोत्राणि

३८- राधाषोडशनामस्तोत्रम् [श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणात्] १६५

३९- श्रीराधास्तोत्रम् [,,] १७०

४०- श्रीराधाष्टकम् [श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रविरचितम्] १७६

विषय पृष्ठ-संख्या

गायत्रीस्तोत्रम्

४१- **गायत्रीस्तुतिः** [श्रीवराहमहापुराणात्] १८०

अन्नपूर्णास्तोत्रम्

४२- **श्रीअन्नपूर्णास्तोत्रम्** [श्रीमच्छङ्कराचार्यस्य] १८२
४३- **श्रीअन्नपूर्णा-माहात्म्य** [कवितावली] १८७

विन्ध्येश्वरीस्तोत्रम्

४४- **श्रीविन्ध्येश्वरीस्तोत्रम्** [संकलित] १८८

काशीस्तोत्राणि

४५- **काशीपञ्चकम्** [श्रीमच्छङ्कराचार्यस्य] १९०
४६- **काशी-स्तुति** [विनय-पत्रिका] १९२
४७- **श्रीमणिकर्णिकाष्टकम्** [श्रीमच्छङ्कराचार्यस्य] १९४

गङ्गास्तोत्राणि

४८- **श्रीगङ्गाष्टकम्** [श्रीमहर्षिवाल्मीकिविरचितम्] १९९
४९- **श्रीगङ्गाष्टकम्** [श्रीमच्छङ्कराचार्यस्य] २०२
५०- **श्रीगङ्गास्तोत्रम्** [,,] २०६
५१- **गङ्गादशहरास्तोत्रम्** [श्रीस्कन्दमहापुराणात्] २१०
५२- **गङ्गास्तुतिः** [श्रीमहाभागवतमहापुराणात्] २१५
५३- **गङ्गा-स्तुति** [विनय-पत्रिका] २१७

यमुनास्तोत्राणि

५४- **श्रीयमुनाष्टकम्** [श्रीमच्छङ्कराचार्यस्य] २१९
५५- **श्रीयमुनाष्टकम्** [,,] २२२
५६- **श्रीयमुनाष्टकम्** [श्रीमद्वल्लभाचार्यस्य] २२५

नर्मदास्तोत्रम्

५७- **नर्मदास्तुतिः** [श्रीस्कन्दमहापुराणात्] २३०
५८- **नर्मदाष्टकम्** [श्रीमच्छङ्कराचार्यस्य] २३२

विषय पृष्ठ-संख्या

प्रकीर्णस्तोत्राणि

५९- **शीतलाष्टकम्** [श्रीस्कन्दमहापुराणात्] २३६
६०- **श्रीसंकटास्तुतिः** [संकलित] २३९
६१- **संकष्टनामाष्टकम्** [श्रीपद्मपुराणात्] २४९
६२- **तुलसीस्तुतिः** [श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणात्] २५२
६३- **तुलसीस्तोत्रम्** [श्रीपुण्डरीककृतम्] २५४
६४- **षष्ठीस्तोत्रम्** [श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणात्] २५७
६५- **सुरभिस्तोत्रम्** [,,] २६०
६६- **पृथ्वीस्तोत्रम्** [,,] २६२
६७- **स्वधास्तोत्रम्** [,,] २६४
६८- **दक्षिणास्तोत्रम्** [,,] २६६
६९- **मनसास्तोत्रम्** [,,] २६९
७०- **श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्** [श्रीविश्वसारतन्त्रात्] २७३
७१- **महादेवीके विभिन्न स्वरूपोंका ध्यान** २७५

आरती

१- **श्रीदुर्गाजी** २८०
२- **श्रीदेवीजी** २८१
३- **श्रीअम्बाजी** २८२
४- **श्रीज्वाला-कालीजी** २८३
५- **श्रीगीताजी** २८४
६- **श्रीसरस्वतीजी** २८५
७- **श्रीलक्ष्मीजी** २८५
८- **श्रीजानकीजी** २८६

देवीस्तोत्राणि

१—श्रीदेव्याः प्रातःस्मरणम्

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां
सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम् ।
दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम्॥ १ ॥
प्रातर्नमामि महिषासुरचण्डमुण्ड-
शुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम् ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनशीललीलां
चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम्॥ २ ॥

जिनकी अंगकान्ति शारदीय चन्द्रमाकी किरणके समान उज्ज्वल है, जो उत्तम रत्नद्वारा निर्मित मकराकृति कुण्डल और हारसे विभूषित हैं, जिनके गहरे नीले हजारों हाथ दिव्यायुधोंसे सम्पन्न हैं तथा जिनके चरण लाल कमलकी कान्ति-सदृश अरुण हैं, ऐसी आप परमेश्वरीका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ॥ १ ॥

जो महिषासुर, चण्ड, मुण्ड, शुम्भासुर आदि प्रमुख दैत्योंका विनाश करनेमें निपुण हैं, लीलापूर्वक ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र और मुनियोंको मोहित करनेवाली हैं, समस्त देवताओंकी मूर्तिस्वरूपा हैं तथा अनेक रूपोंवाली हैं, उन चण्डीको मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं
धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम्।
संसारबन्धनविमोचनहेतुभूतां
मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः॥ ३॥

॥ इति श्रीदेव्याः प्रातःस्मरणं सम्पूर्णम्॥

२—सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच

देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनी।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः॥

देव्युवाच

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम्।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते॥

जो भजन करनेवाले भक्तोंकी अभिलाषाको पूर्ण करनेवाली, समस्त जगत्का धारण-पोषण करनेवाली, पापोंको नष्ट करनेवाली, संसार-बन्धनके विमोचनकी हेतुभूता तथा परमात्मा विष्णुकी परा माया हैं, उनका ध्यान करके मैं प्रातःकाल भजन करता हूँ॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीदेवीका प्रातःस्मरण सम्पूर्ण हुआ॥

शिवजी बोले—हे देवि! तुम भक्तोंके लिये सुलभ हो और समस्त कर्मोंका विधान करनेवाली हो। कलियुगमें कामनाओंकी सिद्धि-हेतु यदि कोई उपाय हो तो उसे अपनी वाणीद्वारा सम्यक्-रूपसे व्यक्त करो।

देवीने कहा—हे देव! आपका मेरे ऊपर बहुत स्नेह है। कलियुगमें समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाला जो साधन है वह बतलाऊँगी, सुनिये! उसका नाम है 'अम्बास्तुति'।

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥ १॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता॥ २॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ३॥

ॐ इस दुर्गासप्तश्लोकी स्तोत्रमन्त्रके नारायण ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीमहाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती देवता हैं, श्रीदुर्गाकी प्रसन्नताके लिये सप्तश्लोकी दुर्गापाठमें इसका विनियोग किया जाता है।

वे भगवती महामाया देवी ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती हैं॥ १॥

माँ दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो॥ २॥

नारायणि! आप सब प्रकारका मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हैं, आप ही कल्याणदायिनी शिवा हैं, आप सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली गौरी हैं; आपको नमस्कार है॥ ३॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ४॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ ५॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥ ६॥
सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥ ७॥

॥ इति श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा।

शरणागतों, दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवि! आपको नमस्कार है॥ ४॥

सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयोंसे हमारी रक्षा कीजिये; आपको नमस्कार है॥ ५॥

देवि! आप प्रसन्न होनेपर सब रोगोंको नष्ट कर देती हैं और कुपित होनेपर मनोवांछित सभी कामनाओंका नाश कर देती हैं। जो लोग आपकी शरणमें हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं; आपकी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं॥ ६॥

सर्वेश्वरि! आप इसी प्रकार तीनों लोकोंकी समस्त बाधाओंको शान्त करें और हमारे शत्रुओंका नाश करती रहें॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्ण हुई॥

३—श्रीदुर्गापदुद्धारस्तोत्रम्

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे
नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे।
नमस्ते जगद्वन्द्यपादारविन्दे
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥ १॥
नमस्ते जगच्चिन्त्यमानस्वरूपे
नमस्ते महायोगिनि ज्ञानरूपे।
नमस्ते नमस्ते सदानन्दरूपे
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥ २॥
अनाथस्य दीनस्य तृष्णातुरस्य
भयार्तस्य भीतस्य बद्धस्य जन्तोः।

शरणागतोंकी रक्षा करनेवाली तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हे शिवे! आपको नमस्कार है। जगत्को व्याप्त करनेवाली हे विश्वरूपे! आपको नमस्कार है। हे जगत्के द्वारा वन्दित चरणकमलोंवाली! आपको नमस्कार है। जगत्का उद्धार करनेवाली हे दुर्गे! आपको नमस्कार है; आप मेरी रक्षा कीजिये॥ १॥

हे जगत्के द्वारा चिन्त्यमानस्वरूपवाली! आपको नमस्कार है। हे महायोगिनि! आपको नमस्कार है। हे ज्ञानरूपे! आपको नमस्कार है। हे सदानन्दरूपे! आपको नमस्कार है। जगत्का उद्धार करनेवाली हे दुर्गे! आपको नमस्कार है; आप मेरी रक्षा कीजिये॥ २॥

हे देवि! एकमात्र आप ही अनाथ, दीन, तृष्णासे व्यथित, भयसे पीड़ित, डरे हुए तथा बन्धनमें पड़े जीवको आश्रय देनेवाली

त्वमेका गतिर्देवि निस्तारकर्त्री
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥ ३॥
अरण्ये रणे दारुणे शत्रुमध्ये-
ऽनले सागरे प्रान्तरे राजगेहे।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारनौका
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥ ४॥
अपारे महादुस्तरेऽत्यन्तघोरे
विपत्सागरे मज्जतां देहभाजाम्।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारहेतु-
र्नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥ ५॥
नमश्चण्डिके चण्डदुर्दण्डलीला-
समुत्खण्डिताखण्डिताशेषशत्रो।

तथा एकमात्र आप ही उसका उद्धार करनेवाली हैं। जगत्का उद्धार करनेवाली हे दुर्गे! आपको नमस्कार है; आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ३॥

हे देवि! वनमें, भीषण संग्राममें, शत्रुके बीचमें, अग्निमें, समुद्रमें, निर्जन तथा विषम स्थानमें और शासनके समक्ष एकमात्र आप ही रक्षा करनेवाली हैं तथा संसारसागरसे पार जानेके लिये नौकाके समान हैं। जगत्का उद्धार करनेवाली हे दुर्गे! आपको नमस्कार है; आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ४॥

हे देवि! पाररहित, महादुस्तर तथा अत्यन्त भयावह विपत्ति-सागरमें डूबते हुए प्राणियोंकी एकमात्र आप ही शरणस्थली हैं तथा उनके उद्धारकी हेतु हैं। जगत्का उद्धार करनेवाली हे दुर्गे! आपको नमस्कार है; आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ५॥

अपनी प्रचण्ड तथा दुर्दण्ड लीलासे सभी दुर्दम्य शत्रुओंको समूल नष्ट कर देनेवाली हे चण्डिके! आपको नमस्कार है।

त्वमेका गतिर्देवि निस्तारबीजं
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥ ६॥
त्वमेवाघभावाधृतासत्यवादी-
र्न जाता जितक्रोधनात् क्रोधनिष्ठा।
इडा पिङ्गला त्वं सुषुम्णा च नाडी
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥ ७॥
नमो देवि दुर्गे शिवे भीमनादे
सरस्वत्यरुन्धत्यमोघस्वरूपे।
विभूतिः शची कालरात्रिः सती त्वं
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥ ८॥
शरणमसि सुराणां सिद्धविद्याधराणां
मुनिमनुजपशूनां दस्युभिस्त्रासितानाम्।

हे देवि! आप ही एकमात्र आश्रय हैं तथा भवसागरसे पारगमनकी बीजस्वरूपा हैं। जगत्का उद्धार करनेवाली हे दुर्गे! आपको नमस्कार है; आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ६॥

आप ही पापियोंके दुर्भावग्रस्त मनकी मलिनता हटाकर सत्यनिष्ठामें तथा क्रोधपर विजय दिलाकर अक्रोधमें प्रतिष्ठित होती हैं। आप ही योगियोंकी इडा, पिंगला और सुषुम्णा नाडियोंमें प्रवाहित होती हैं। जगत्का उद्धार करनेवाली हे दुर्गे! आपको नमस्कार है; आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ७॥

हे देवि! हे दुर्गे! हे शिवे! हे भीमनादे! हे सरस्वति! हे अरुन्धति! हे अमोघस्वरूपे! आप ही विभूति, शची, कालरात्रि तथा सती हैं। जगत्का उद्धार करनेवाली हे दुर्गे! आपको नमस्कार है; आप मेरी रक्षा करें॥ ८॥

हे देवि! आप देवताओं, सिद्धों, विद्याधरों, मुनियों, मनुष्यों,

नृपतिगृहगतानां व्याधिभिः पीडितानां
त्वमसि शरणमेका देवि दुर्गे प्रसीद॥ ९ ॥
इदं स्तोत्रं मया प्रोक्तमापदुद्धारहेतुकम्।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा पठनाद् घोरसङ्कटात्॥ १० ॥
मुच्यते नात्र सन्देहो भुवि स्वर्गे रसातले।
सर्वं वा श्लोकमेकं वा यः पठेद्भक्तिमान् सदा॥ ११ ॥
स सर्वं दुष्कृतं त्यक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम्।
पठनादस्य देवेशि किं न सिद्ध्यति भूतले॥ १२ ॥
स्तवराजमिदं देवि संक्षेपात्कथितं मया॥ १३ ॥

॥ इति श्रीसिद्धेश्वरीतन्त्रे उमामहेश्वरसंवादे श्रीदुर्गापदुद्धारस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

पशुओं तथा लुटेरोंसे पीड़ित जनोंकी शरण हैं। राजाओंके बन्दीगृहमें डाले गये लोगों तथा व्याधियोंसे पीड़ित प्राणियोंकी एकमात्र शरण आप ही हैं। हे दुर्गे! मुझपर प्रसन्न होइये॥ ९॥

विपदाओंसे उद्धारका हेतुस्वरूप यह स्तोत्र मैंने कहा। पृथ्वी-लोकमें, स्वर्गलोकमें अथवा पातालमें—कहीं भी तीनों सन्ध्याकालों अथवा एक सन्ध्याकालमें इस स्तोत्रका पाठ करनेसे प्राणी घोर संकटसे छूट जाता है; इसमें कोई संदेह नहीं है। जो मनुष्य भक्ति-परायण होकर सम्पूर्ण स्तोत्रको अथवा इसके एक श्लोकको ही पढ़ता है, वह समस्त पापोंसे छूटकर परम पद प्राप्त करता है। हे देवेशि! इसके पाठसे पृथ्वीतलपर कौन-सा मनोरथ सिद्ध नहीं हो जाता? अर्थात् सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। हे देवि! मैंने संक्षेपमें यह स्तवराज आपसे कह दिया॥ १०—१३॥

॥ इस प्रकार श्रीसिद्धेश्वरीतन्त्रके अन्तर्गत उमामहेश्वरसंवादमें श्रीदुर्गापदुद्धारस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

४—भुवनेश्वरीकात्यायनीस्तुतिः

ध्यानम्

'ॐ' बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥

स्तुतिः

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥ १॥
आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।

ध्यान

मैं भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करता हूँ। उनके श्रीअंगोंकी आभा प्रभातकालके सूर्यके समान है और मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है। वे उभरे हुए स्तनों और तीन नेत्रोंसे युक्त हैं। उनके मुखपर मुसकानकी छटा छायी रहती है और हाथोंमें वरद, अंकुश, पाश एवं अभय-मुद्रा शोभा पाते हैं।

स्तुति

[देवता बोले—] शरणागतकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि! हमपर प्रसन्न होओ। सम्पूर्ण जगत्‌की माता! प्रसन्न होओ। विश्वेश्वरि! विश्वकी रक्षा करो। देवि! तुम्हीं चराचर जगत्‌की अधीश्वरी हो॥ १॥

तुम इस जगत्‌का एकमात्र आधार हो; क्योंकि पृथ्वी-रूपमें तुम्हारी ही स्थिति है। देवि! तुम्हारा पराक्रम अलंघनीय है।

अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये॥ २॥
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः॥ ३॥
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥ ४॥
सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः॥ ५॥

तुम्हीं जलरूपमें स्थित होकर सम्पूर्ण जगत्‌को तृप्त करती हो॥ २॥

तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्वकी कारणभूता परा माया हो। देवि! तुमने इस समस्त जगत्‌को मोहित कर रखा है। तुम्हीं प्रसन्न होनेपर इस पृथ्वीपर मोक्षकी प्राप्ति कराती हो॥ ३॥

देवि! सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। जगत्‌में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। जगदम्ब! एकमात्र तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? तुम तो स्तवन करनेयोग्य पदार्थोंसे परे एवं परा वाणी हो॥ ४॥

जब तुम सर्वस्वरूपा देवी स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हो, तब इसी रूपमें तुम्हारी स्तुति हो गयी। तुम्हारी स्तुतिके लिये इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती हैं?॥ ५॥

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ६ ॥
कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ७ ॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ८ ॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ९ ॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १०॥

बुद्धिरूपसे सब लोगोंके हृदयमें विराजमान रहनेवाली तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ ६॥

कला, काष्ठा आदिके रूपसे क्रमशः परिणाम (अवस्था-परिवर्तन)-की ओर ले जानेवाली तथा विश्वका उपसंहार करनेमें समर्थ नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ ७॥

नारायणि! तुम सब प्रकारका मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हो। कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली गौरी हो। तुम्हें नमस्कार है॥ ८॥

तुम सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणोंका आधार तथा सर्वगुणमयी हो। नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ ९॥

शरणागतों, दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ १०॥

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ११॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १२॥
मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १३॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १४॥
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १५॥

नारायणि! तुम ब्रह्माणीका रूप धारण करके हंसोंसे जुते हुए विमानपर बैठती तथा कुश-मिश्रित जल छिड़कती रहती हो। तुम्हें नमस्कार है॥ ११॥

माहेश्वरीरूपसे त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्पको धारण करनेवाली तथा महान् वृषभकी पीठपर बैठनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ १२॥

मोरों और मुर्गोंसे घिरी रहनेवाली तथा महाशक्ति धारण करनेवाली कौमारीरूपधारिणी निष्पापे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ १३॥

शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुषरूप उत्तम आयुधोंको धारण करनेवाली वैष्णवी शक्तिरूपा नारायणि! तुम प्रसन्न होओ। तुम्हें नमस्कार है॥ १४॥

हाथमें भयानक महाचक्र लिये और दाढ़ोंपर धरतीको उठाये वाराहीरूपधारिणी कल्याणमयी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ १५॥

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १६॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १७॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १८॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १९॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे।
महारात्रि महाऽविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २०॥

भयंकर नृसिंहरूपसे दैत्योंके वधके लिये उद्योग करनेवाली तथा त्रिभुवनकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ १६॥

मस्तकपर किरीट और हाथमें महावज्र धारण करनेवाली, सहस्र नेत्रोंके कारण उद्दीप्त दिखायी देनेवाली और वृत्रासुरके प्राणोंका अपहरण करनेवाली इन्द्रशक्तिरूपा नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ १७॥

शिवदूतीरूपसे दैत्योंकी महती सेनाका संहार करनेवाली, भयंकर रूप धारण तथा विकट गर्जना करनेवाली नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ १८॥

दाढ़ोंके कारण विकराल मुखवाली, मुण्डमालासे विभूषित मुण्ड-मर्दिनी चामुण्डारूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ १९॥

लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महा अविद्यारूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २०॥

मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २१॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ २२॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥ २३॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते॥ २४॥

मेधा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठा), भूति (ऐश्वर्यरूपा), बाभ्रवी (भूरे रंगकी अथवा पार्वती), तामसी (महाकाली), नियता (संयमपरायणा) तथा ईशा (सबकी अधीश्वरी)-रूपिणी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २१॥

सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयोंसे हमारी रक्षा करो; तुम्हें नमस्कार है॥ २२॥

कात्यायनि! यह तीन लोचनोंसे विभूषित तुम्हारा सौम्य मुख सब प्रकारके भयोंसे हमारी रक्षा करे। तुम्हें नमस्कार है॥ २३॥

भद्रकालि! ज्वालाओंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला, अत्यन्त भयंकर और समस्त असुरोंका संहार करनेवाला तुम्हारा त्रिशूल भयसे हमें बचाये। तुम्हें नमस्कार है॥ २४॥

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव॥ २५॥
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम्॥ २६॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥ २७॥
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम्।

देवि! जो अपनी ध्वनिसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके दैत्योंके तेज नष्ट किये देता है, वह तुम्हारा घण्टा हमलोगोंकी पापोंसे उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे पिता अपने पुत्रोंकी बुरे कर्मोंसे रक्षा करता है॥ २५॥

चण्डिके! तुम्हारे हाथोंमें सुशोभित खड्ग, जो असुरोंके रक्त और चर्बीसे चर्चित है, हमारा मंगल करे। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं॥ २६॥

देवि! तुम प्रसन्न होनेपर सब रोगोंको नष्ट कर देती हो और कुपित होनेपर मनोवांछित सभी कामनाओंका नाश कर देती हो। जो लोग तुम्हारी शरणमें हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं; तुम्हारी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं॥ २७॥

देवि! अम्बिके! तुमने अपने स्वरूपको अनेक रूपोंमें विभक्त

रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या॥ २८॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्॥ २९॥
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्॥ ३०॥
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।

करके नाना प्रकारसे जो इस समय इन धर्मद्रोही महादैत्योंका संहार किया है, वह सब दूसरी कौन कर सकती थी?॥ २८॥

विद्याओंमें, ज्ञानको प्रकाशित करनेवाले शास्त्रोंमें तथा आदिवाक्यों (वेदों)-में तुम्हारे सिवा और किसका वर्णन है? तथा तुमको छोड़कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है, जो इस विश्वको मोह-ममताके घने अन्धकार-चक्रमें निरन्तर भटका सके॥ २९॥

जहाँ राक्षस, भयंकर विषवाले सर्प, शत्रु, लुटेरोंकी सेना और दावानल हो, वहाँ तथा समुद्रके बीचमें भी साथ रहकर तुम सबकी रक्षा करती हो॥ ३०॥

विश्वेश्वरि! तुम विश्वका पालन करती हो। विश्वरूपा हो,

विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
　　विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥ ३१॥
देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
　　र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
　　उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥ ३२॥
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥ ३३॥

॥ इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे भुवनेश्वरीकात्यायनीस्तुतिः सम्पूर्णा॥

इसलिये सम्पूर्ण विश्वको धारण करती हो। तुम भगवान् विश्वनाथकी भी वन्दनीया हो। जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक झुकाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्वको आश्रय देनेवाले होते हैं॥ ३१॥

देवि! प्रसन्न होओ। जैसे इस समय असुरोंका वध करके तुमने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओंके भयसे बचाओ। सम्पूर्ण जगत्का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापोंके फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवोंको शीघ्र दूर करो॥ ३२॥

विश्वकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि! हम तुम्हारे चरणोंपर पड़े हुए हैं, हमपर प्रसन्न होओ। त्रिलोकनिवासियोंकी पूजनीया परमेश्वरि! सब लोगोंको वरदान दो॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयमहापुराणकी भुवनेश्वरी-
कात्यायनीस्तुति सम्पूर्ण हुई॥

५—कात्यायनीस्तुतिः

श्रीराम उवाच

नमस्ते त्रिजगद्वन्द्ये संग्रामे जयदायिनि।
प्रसीद विजयं देहि कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥ १॥
सर्वशक्तिमये दुष्टरिपुनिग्रहकारिणि।
दुष्टजृम्भिणि संग्रामे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ २॥
त्वमेका परमा शक्तिः सर्वभूतेष्ववस्थिता।
दुष्टं संहर संग्रामे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ३॥
रणप्रिये रक्तभक्षे मांसभक्षणकारिणि।
प्रपन्नार्तिहरे युद्धे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ४॥
खट्वाङ्गासिकरे मुण्डमालाद्योतितविग्रहे।
ये त्वां स्मरन्ति दुर्गेषु तेषां दुःखहरा भव॥ ५॥

श्रीरामजी बोले—त्रिलोकवन्दनीया! युद्धमें विजय देनेवाली! कात्यायनि! आपको बार-बार नमस्कार है। आप मुझपर प्रसन्न हों और मुझे विजय प्रदान करें। सर्वशक्तिमयी, दुष्ट शत्रुओंका निग्रह करनेवाली, दुष्टोंका संहार करनेवाली भगवती! संग्राममें मुझे विजय प्रदान करें, आपको नमस्कार है। आप ही सभी प्राणियोंमें निवास करनेवाली परा शक्ति हैं, संग्राममें दुष्ट राक्षसका संहार करें और मुझे विजय प्रदान करें, आपको नमस्कार है। युद्धप्रिये! शरणागतकी पीड़ा हरनेवाली! तथा [राक्षसोंका] रक्त एवं मांस भक्षण करनेवाली [जगदम्बे!] युद्धमें मुझे विजय प्रदान करें, आपको नमस्कार है॥ १—४॥

हाथमें खट्वांग तथा खड्ग धारण करनेवाली एवं मुण्डमालासे सुशोभित विग्रहवाली भगवती! विषम परिस्थितियोंमें जो आपका स्मरण

त्वत्पादपङ्कजाद्दैन्यं नमस्ते शरणप्रिये।
विनाशय रणे शत्रून् जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ६ ॥
अचिन्त्यविक्रमेऽचिन्त्यरूपसौन्दर्यशालिनि ।
अचिन्त्यचरितेऽचिन्त्ये जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ७ ॥
ये त्वां स्मरन्ति दुर्गेषु देवीं दुर्गविनाशिनीम्।
नावसीदन्ति दुर्गेषु जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ८ ॥
महिषासृक्प्रिये संख्ये महिषासुरमर्दिनि।
शरण्ये गिरिकन्ये मे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ९ ॥
प्रसन्नवदने चण्डि चण्डासुरविमर्दिनि।
संग्रामे विजयं देहि शत्रूञ्जहि नमोऽस्तु ते॥ १० ॥

करते हैं, उनका दुःख हरण कीजिये। शरणागतप्रिये! आप अपने चरणकमलके अनुग्रहसे दीनताका नाश कीजिये; युद्धक्षेत्रमें शत्रुओंका विनाश कीजिये और मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है, पुनः नमस्कार है। आपका पराक्रम, रूप, सौन्दर्य तथा चरित्र अपरिमित होनेके कारण सम्पूर्णरूपसे चिन्तनका विषय बन नहीं सकता। आप स्वयं भी अचिन्त्य हैं। मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। जो लोग विपत्तियोंमें दुर्गतिका नाश करनेवाली आप भगवतीका स्मरण करते हैं, वे विषम परिस्थितियोंमें दुःखी नहीं होते। आप मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है॥ ५—८॥

युद्धमें महिषासुरका मर्दन करनेवाली तथा उस महिषासुरके रक्त-पानमें अभिरुचि रखनेवाली, शरणग्रहण करनेयोग्य हिमालयसुता! आप मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। चण्डासुरका नाश

रक्ताक्षि रक्तदशने रक्तचर्चितगात्रके।
रक्तबीजनिहन्त्री त्वं जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ११॥
निशुम्भशुम्भसंहन्त्रि विश्वकर्त्रि सुरेश्वरि।
जहि शत्रून् रणे नित्यं जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ १२॥
भवान्येतज्जगत्सर्वं त्वं पालयसि सर्वदा।
रक्ष विश्वमिदं मातर्हत्वैतान् दुष्टराक्षसान्॥ १३॥
त्वं हि सर्वगता शक्तिर्दुष्टमर्दनकारिणि।
प्रसीद जगतां मातर्जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ १४॥
दुर्वृत्तवृन्ददमनि सद्‌वृत्तपरिपालिनि।
निपातय रणे शत्रूञ्जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ १५॥

करनेवाली प्रसन्नमुखी चण्डिके! युद्धमें शत्रुओंका संहार कीजिये और मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। रक्तवर्णके नेत्रवाली, रक्तरंजित दन्तपंक्तिवाली तथा रक्तसे लिप्त शरीरवाली भगवती! आप रक्तबीजका संहार करनेवाली हैं, आप मुझे विजय प्रदान करें, आपको नमस्कार है। निशुंभ तथा शुंभका संहार करनेवाली तथा जगत्‌की सृष्टि करनेवाली सुरेश्वरि! आप नित्य युद्धमें शत्रुओंका संहार कीजिये और मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है॥ ९—१२॥

भवानी! आप सर्वदा इस सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करती हैं। मातः! आप इन दुष्ट राक्षसोंको मारकर इस विश्वकी रक्षा कीजिये। दुष्टोंका संहार करनेवाली भगवती! आप सबमें विद्यमान रहनेवाली शक्तिस्वरूपा हैं। जगन्माता! प्रसन्न होइये, मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। दुराचारियोंका दमन करनेवाली तथा सदाचारियोंका सम्यक्

कात्यायनि जगन्मातः प्रपन्नार्तिहरे शिवे।
संग्रामे विजयं देहि भयेभ्यः पाहि सर्वदा॥ १६॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीरामकृता कात्यायनीस्तुतिः सम्पूर्णा॥

६—दुर्गास्तुतिः

श्रुतय ऊचुः

दुर्गे विश्वमपि प्रसीद परमे सृष्ट्यादिकार्यत्रये
ब्रह्माद्याः पुरुषास्त्रयो निजगुणैस्त्वत्स्वेच्छया कल्पिताः।
नो ते कोऽपि च कल्पकोऽत्र भुवने विद्येत मातर्यतः
कः शक्तः परिवर्णितुं तव गुणाँल्लोके भवेद्दुर्गमान्॥ १॥
त्वामाराध्य हरिर्निहत्य समरे दैत्यान् रणे दुर्जयान्
त्रैलोक्यं परिपाति शम्भुरपि ते धृत्वा पदं वक्षसि।

पालन करनेवाली भगवती! युद्धमें शत्रुओंका संहार कीजिये और मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाली, कल्याण प्रदान करनेवाली जगन्माता कात्यायनी! युद्धमें मुझे विजय प्रदान कीजिये और भयसे सदा रक्षा कीजिये॥ १३—१६॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीरामद्वारा की गयी कात्यायनीस्तुति सम्पूर्ण हुई॥

वेदोंने कहा—दुर्गे! आप सम्पूर्ण जगत्पर कृपा कीजिये। परमे! आपने ही अपने गुणोंके द्वारा स्वेच्छानुसार सृष्टि आदि तीनों कार्योंके निमित्त ब्रह्मा आदि तीनों देवोंकी रचना की है, इसलिये इस जगत्में आपको रचनेवाला कोई भी नहीं है। मातः! आपके दुर्गम गुणोंका वर्णन करनेमें इस लोकमें भला कौन समर्थ हो सकता है!॥ १॥

भगवान् विष्णु आपकी आराधनाके प्रभावसे ही दुर्जय दैत्योंको युद्धस्थलमें मारकर तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं। भगवान् शिवने भी

त्रैलोक्यक्षयकारकं समपिबद्यत्कालकूटं विषं
किं ते वा चरितं वयं त्रिजगतां ब्रूमः परित्र्यम्बिके ॥ २ ॥
या पुंसः परमस्य देहिन इह स्वीयैर्गुणैर्मायया
देहाख्यापि चिदात्मिकापि च परिस्पन्दादिशक्तिः परा।
त्वन्मायापरिमोहितास्तनुभृतो यामेव देहस्थिता
भेदज्ञानवशाद्वदन्ति पुरुषं तस्यै नमस्तेऽम्बिके ॥ ३ ॥
स्त्रीपुंस्त्वप्रमुखैरुपाधिनिचयैर्हीनं परं ब्रह्म यत्
त्वत्तो या प्रथमं बभूव जगतां सृष्टौ सिसृक्षा स्वयम्।
सा शक्तिः परमाऽपि यच्च समभून्मूर्तिद्वयं शक्तित-
स्त्वन्मायामयमेव तेन हि परं ब्रह्मापि शक्त्यात्मकम् ॥ ४ ॥

अपने हृदयपर आपका चरण धारण कर तीनों लोकोंका विनाश करनेवाले कालकूट विषका पान कर लिया था। तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाली अम्बिके! हम आपके चरित्रका वर्णन कैसे कर सकते हैं!॥ २॥

जो अपने गुणोंसे मायाके द्वारा इस लोकमें साकार परम पुरुषके देहस्वरूपको धारण करती हैं और जो पराशक्ति ज्ञान तथा क्रियाशक्तिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं; आपकी उस मायासे विमोहित शरीरधारी प्राणी भेदज्ञानके कारण सर्वान्तरात्माके रूपमें विराजमान आपको ही पुरुष कह देते हैं; अम्बिके! उन आप महादेवीको नमस्कार है॥ ३॥

स्त्री-पुरुषरूप प्रमुख उपाधिसमूहोंसे रहित जो परब्रह्म है, उसमें जगत्की सृष्टिके निमित्त सर्वप्रथम सृजनकी जो इच्छा हुई, वह स्वयं आपकी ही शक्तिसे हुई और वह पराशक्ति भी स्त्री-पुरुषरूप दो मूर्तियोंमें आपकी शक्तिसे ही विभक्त हुई है। इस कारण वह परब्रह्म भी मायामय शक्तिस्वरूप ही है॥ ४॥

तोयोत्थं करकादिकं जलमयं दृष्ट्वा यथा निश्चय-
स्तोयत्वेन भवेद्ग्रहोऽप्यभिमतां तथ्यं तथैव ध्रुवम्।
ब्रह्मोत्थं सकलं विलोक्य मनसा शक्त्यात्मकं ब्रह्म त-
च्छक्तित्वेन विनिश्चितः पुरुषधीः पारं परा ब्रह्मणि॥ ५॥
षट्चक्रेषु लसन्ति ये तनुमतां ब्रह्मादयः षट्शिवा-
स्ते प्रेता भवदाश्रयाच्च परमेशत्वं समायान्ति हि।
तस्मादीश्वरता शिवे नहि शिवे त्वय्येव विश्वाम्बिके
त्वं देवि त्रिदशैकवन्दितपदे दुर्गे प्रसीदस्व नः॥ ६॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे वेदैः कृता दुर्गास्तुतिः सम्पूर्णा॥

जिस प्रकार जलसे उत्पन्न ओले आदिको देखकर मान्यजनोंको यह जल ही है—ऐसा ध्रुव निश्चय होता है, उसी प्रकार ब्रह्मसे ही उत्पन्न इस समस्त जगत्को देखकर यह शक्त्यात्मक ब्रह्म ही है—ऐसा मनमें विचार होता है और पुनः परात्पर परब्रह्ममें जो पुरुषबुद्धि है, वह भी शक्तिस्वरूप ही है, ऐसा निश्चित होता है। जगदम्बिके! देहधारियोंके शरीरमें स्थित षट्चक्रोंमें* ब्रह्मादि जो छः विभूतियाँ सुशोभित होती हैं, वे प्रलयान्तमें आपके आश्रयसे ही परमेशपदको प्राप्त होती हैं। इसलिये शिवे! शिवादि देवोंमें स्वयंकी ईश्वरता नहीं है, अपितु वह तो आपमें ही है। देवि! एकमात्र आपके चरणकमल ही देवताओंके द्वारा वन्दित हैं। दुर्गे! आप हमपर प्रसन्न हों॥ ५-६॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत वेदोंद्वारा की गयी दुर्गास्तुति सम्पूर्ण हुई॥

---

* योगशास्त्रके अनुसार गुदादेशमें मूलाधारचक्र, गुदा और लिंगके मध्यमें स्वाधिष्ठानचक्र, नाभिदेशमें मणिपूरकचक्र, हृदयमें अनाहतचक्र, कण्ठमें विशुद्धाख्यचक्र तथा भ्रूमध्यमें आज्ञाचक्र स्थित है।

७—जयास्तुतिः

ध्यानम्

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥

'ॐ' ऋषिरुवाच

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।

ध्यान

सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुष जिनकी सेवा करते हैं तथा देवता जिन्हें सब ओरसे घेरे रहते हैं, उन 'जया' नामवाली दुर्गादेवीका ध्यान करे। उनके श्रीअंगोंकी आभा काले मेघके समान श्याम है। वे अपने कटाक्षोंसे शत्रुसमूहको भय प्रदान करती हैं। उनके मस्तकपर आबद्ध चन्द्रमाकी रेखा शोभा पाती है। वे अपने हाथोंमें शंख, चक्र, कृपाण और त्रिशूल धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे सिंहके कंधेपर चढ़ी हुई हैं और अपने तेजसे तीनों लोकोंको परिपूर्ण कर रही हैं।

ऋषि कहते हैं—अत्यन्त पराक्रमी दुरात्मा महिषासुर तथा उसकी दैत्य-सेनाके देवीके हाथसे मारे जानेपर इन्द्र आदि देवता

तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ १ ॥
देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ २ ॥
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ३ ॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।

प्रणामके लिये गर्दन तथा कंधे झुकाकर उन भगवती दुर्गाका उत्तम वचनोंद्वारा स्तवन करने लगे। उस समय उनके सुन्दर अंगोंमें अत्यन्त हर्षके कारण रोमांच हो आया था ॥ १ ॥

[देवता बोले—] सम्पूर्ण देवताओंकी शक्तिका समुदाय ही जिनका स्वरूप है तथा जिन देवीने अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है, समस्त देवताओं और महर्षियोंकी पूजनीया उन जगदम्बाको हम भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं। वे हमलोगोंका कल्याण करें ॥ २ ॥

जिनके अनुपम प्रभाव और बलका वर्णन करनेमें भगवान् शेषनाग, ब्रह्माजी तथा महादेवजी भी समर्थ नहीं हैं, वे भगवती चण्डिका सम्पूर्ण जगत्‌का पालन एवं अशुभ भयका नाश करनेका विचार करें ॥ ३ ॥

जो पुण्यात्माओंके घरोंमें स्वयं ही लक्ष्मीरूपसे, पापियोंके यहाँ दरिद्रतारूपसे, शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंके हृदयमें बुद्धिरूपसे,

श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥ ४॥
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु॥ ५॥
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या॥ ६॥

सत्पुरुषोंमें श्रद्धारूपसे तथा कुलीन मनुष्यमें लज्जारूपसे निवास करती हैं, उन आप भगवती दुर्गाको हम नमस्कार करते हैं। देवि! आप सम्पूर्ण विश्वका पालन कीजिये॥ ४॥

देवि! आपके इस अचिन्त्य रूपका, असुरोंका नाश करनेवाले भारी पराक्रमका तथा समस्त देवताओं और दैत्योंके समक्ष युद्धमें प्रकट किये हुए आपके अद्भुत चरित्रोंका हम किस प्रकार वर्णन करें॥ ५॥

आप सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिमें कारण हैं। आपमें सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये तीनों गुण मौजूद हैं; तो भी दोषोंके साथ आपका संसर्ग नहीं जान पड़ता। भगवान् विष्णु और महादेवजी आदि देवता भी आपका पार नहीं पाते। आप ही सबका आश्रय हैं। यह समस्त जगत् आपका अंशभूत है; क्योंकि आप सबकी आदिभूत अव्याकृता परा प्रकृति हैं॥ ६॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च॥ ७॥
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि॥ ८॥
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।

देवि! सम्पूर्ण यज्ञोंमें जिसके उच्चारणसे सब देवता तृप्ति-लाभ करते हैं, वह स्वाहा आप ही हैं। इसके अतिरिक्त आप पितरोंकी भी तृप्तिका कारण हैं, अतएव सब लोग आपको स्वधा भी कहते हैं॥ ७॥

देवि! जो मोक्षकी प्राप्तिका साधन है, अचिन्त्य महाव्रतस्वरूपा है, समस्त दोषोंसे रहित, जितेन्द्रिय, तत्त्वको ही सार वस्तु माननेवाले तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले मुनिजन जिसका अभ्यास करते हैं, वह भगवती परा विद्या आप ही हैं॥ ८॥

आप शब्दस्वरूपा हैं, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्गीथके मनोहर पदोंके पाठसे युक्त सामवेदका भी आधार आप

देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री॥ ९ ॥
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा॥ १०॥
ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण॥ ११॥

ही हैं। आप देवी, त्रयी (तीनों वेद) और भगवती (छहों ऐश्वर्योंसे युक्त) हैं। इस विश्वकी उत्पत्ति एवं पालनके लिये आप ही वार्ता (खेती एवं आजीविका)-के रूपमें प्रकट हुई हैं। आप सम्पूर्ण जगत्की घोर पीड़ाका नाश करनेवाली हैं॥ ९॥

देवि! जिससे समस्त शास्त्रोंके सारका ज्ञान होता है, वह मेधाशक्ति आप ही हैं । दुर्गम भवसागरसे पार उतारनेवाली नौकारूप दुर्गादेवी भी आप ही हैं। आपकी कहीं भी आसक्ति नहीं है। कैटभके शत्रु भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें एकमात्र निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मी तथा भगवान् चन्द्रशेखरद्वारा सम्मानित गौरी देवी भी आप ही हैं॥ १०॥

आपका मुख मन्द मुसकानसे सुशोभित, निर्मल, पूर्ण चन्द्रमाके बिम्बका अनुकरण करनेवाला और उत्तम सुवर्णकी मनोहर कान्तिसे कमनीय है; तो भी उसे देखकर महिषासुरको क्रोध हुआ और सहसा उसने उसपर प्रहार कर दिया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है॥ ११॥

दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन॥ १२॥
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य॥ १३॥
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।

देवि! वही मुख जब क्रोधसे युक्त होनेपर उदयकालके चन्द्रमाकी भाँति लाल और तनी हुई भौंहोंके कारण विकराल हो उठा, तब उसे देखकर जो महिषासुरके प्राण तुरंत नहीं निकल गये, यह उससे भी बढ़कर आश्चर्यकी बात है; क्योंकि क्रोधमें भरे हुए यमराजको देखकर भला, कौन जीवित रह सकता है?॥ १२॥

देवि! आप प्रसन्न हों। परमात्मस्वरूपा आपके प्रसन्न होनेपर जगत्का अभ्युदय होता है और क्रोधमें भर जानेपर आप तत्काल ही कितने कुलोंका सर्वनाश कर डालती हैं, यह बात अभी अनुभवमें आयी है; क्योंकि महिषासुरकी यह विशाल सेना क्षणभरमें आपके कोपसे नष्ट हो गयी है॥ १३॥

सदा अभ्युदय प्रदान करनेवाली आप जिनपर प्रसन्न रहती हैं, वे ही देशमें सम्मानित हैं, उन्हींको ऐश्वर्य और यशकी प्राप्ति होती है,

धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना॥ १४॥
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्याद‍ृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन॥ १५॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥ १६॥

उन्हींका धर्म कभी शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने हृष्ट-पुष्ट स्त्री, पुत्र और भृत्योंके साथ धन्य माने जाते हैं॥ १४॥

देवि! आपकी ही कृपासे पुण्यात्मा पुरुष प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सदा सब प्रकारके धर्मानुकूल कर्म करता है और उसके प्रभावसे स्वर्गलोकमें जाता है; इसलिये आप तीनों लोकोंमें निश्चय ही मनोवांछित फल देनेवाली हैं॥ १५॥

माँ दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं । दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो॥ १६॥

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि॥ १७॥

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी॥ १८॥

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम्।

देवि ! इन राक्षसोंके मारनेसे संसारको सुख मिले तथा ये राक्षस चिरकालतक नरकमें रहनेके लिये भले ही पाप करते रहे हों, इस समय संग्राममें मृत्युको प्राप्त होकर स्वर्गलोकमें जायँ—निश्चय ही यही सोचकर आप शत्रुओंका वध करती हैं॥ १७॥

आप शत्रुओंपर शस्त्रोंका प्रहार क्यों करती हैं? समस्त असुरोंको दृष्टिपातमात्रसे ही भस्म क्यों नहीं कर देतीं? इसमें एक रहस्य है। ये शत्रु भी हमारे शस्त्रोंसे पवित्र होकर उत्तम लोकोंमें जायँ—इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार अत्यन्त उत्तम रहता है॥ १८॥

खड्गके तेजःपुंजकी भयंकर दीप्तिसे तथा आपके त्रिशूलके अग्रभागकी घनीभूत प्रभासे चौंधियाकर जो असुरोंकी आँखें फूट नहीं गयीं,

यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत्॥ १९॥
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम्॥ २०॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि॥ २१॥

उसमें कारण यही था कि वे मनोहर रश्मियोंसे युक्त चन्द्रमाके समान आनन्द प्रदान करनेवाले आपके इस सुन्दर मुखका दर्शन करते थे॥ १९॥

देवि! आपका शील दुराचारियोंके बुरे बर्तावको दूर करनेवाला है। साथ ही यह रूप ऐसा है, जो कभी चिन्तनमें भी नहीं आ सकता और जिसकी कभी दूसरोंसे तुलना भी नहीं हो सकती; तथा आपका बल और पराक्रम तो उन दैत्योंका भी नाश करनेवाला है, जो कभी देवताओंके पराक्रमको भी नष्ट कर चुके थे। इस प्रकार आपने शत्रुओंपर भी अपनी दया ही प्रकट की है॥ २०॥

वरदायिनी देवि! आपके इस पराक्रमकी किसके साथ तुलना हो सकती है तथा शत्रुओंको भय देनेवाला एवं अत्यन्त मनोहर ऐसा रूप भी आपके सिवा और कहाँ है? हृदयमें कृपा और युद्धमें निष्ठुरता—ये दोनों बातें तीनों लोकोंके भीतर केवल आपमें ही देखी गयी हैं॥ २१॥

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते॥ २२॥
शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च॥ २३॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि॥ २४॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम्॥ २५॥

मातः! आपने शत्रुओंका नाश करके इस समस्त त्रिलोकीकी रक्षा की है । उन शत्रुओंको भी युद्धभूमिमें मारकर स्वर्गलोकमें पहुँचाया है तथा उन्मत्त दैत्योंसे प्राप्त होनेवाले हमलोगोंके भयको भी दूर कर दिया है, आपको हमारा नमस्कार है॥ २२॥

देवि! आप शूलसे हमारी रक्षा करें। अम्बिके! आप खड्गसे भी हमारी रक्षा करें तथा घण्टाकी ध्वनि और धनुषकी टंकारसे भी हमलोगोंकी रक्षा करें॥ २३॥

चण्डिके! पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशामें आप हमारी रक्षा करें तथा ईश्वरि! अपने त्रिशूलको घुमाकर आप उत्तर दिशामें भी हमारी रक्षा करें॥ २४॥

तीनों लोकोंमें आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त भयंकर रूप विचरते रहते हैं, उनके द्वारा भी आप हमारी तथा इस भूलोककी रक्षा करें॥ २५॥

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः॥ २६॥

ऋषिरुवाच

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः॥ २७॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान्॥ २८॥

देव्युवाच

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम्॥ २९॥

देवा ऊचुः

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते॥ ३०॥

अम्बिके! आपके कर-पल्लवोंमें शोभा पानेवाले खड्ग, शूल, और गदा आदि जो-जो अस्त्र हों, उन सबके द्वारा आप सब ओरसे हमलोगोंकी रक्षा करें॥ २६॥

ऋषि कहते हैं—इस प्रकार जब देवताओंने जगन्माता दुर्गाकी स्तुति की और नन्दन-वनके दिव्य पुष्पों एवं गन्ध-चन्दन आदिके द्वारा उनका पूजन किया, फिर सबने मिलकर जब भक्तिपूर्वक दिव्य धूपोंकी सुगन्ध निवेदन की, तब देवीने प्रसन्नवदन होकर प्रणाम करते हुए सब देवताओंसे कहा—॥ २७-२८॥

देवी बोलीं—देवताओ! तुम सब लोग मुझसे जिस वस्तुकी अभिलाषा रखते हो, उसे माँगो॥ २९॥

देवताओंने कहा—भगवतीने हमारी सब इच्छा पूर्ण कर दी, अब कुछ भी बाकी नहीं है॥ ३०॥

यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि॥ ३१॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने॥ ३२॥
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम्।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके॥ ३३॥

ऋषिरुवाच

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप॥ ३४॥

॥ इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे देवैः कृता जयास्तुतिः सम्पूर्णा॥

क्योंकि हमारा यह शत्रु महिषासुर मारा गया। महेश्वरि! इतनेपर भी यदि आप हमें और वर देना चाहती हैं। तो हम जब-जब आपका स्मरण करें, तब-तब आप दर्शन देकर हमलोगोंके महान् संकट दूर कर दिया करें तथा प्रसन्नमुखी अम्बिके! जो मनुष्य इन स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करे, उसे वित्त, समृद्धि और वैभव प्राप्तिके साथ ही उसकी धन और स्त्री आदि सम्पत्तिका विकास भी होता रहे; आप सदा हमपर प्रसन्न रहें॥ ३१—३३॥

ऋषि कहते हैं—राजन्! देवताओंने जब अपने तथा जगत्के कल्याणके लिये भद्रकाली देवीको इस प्रकार प्रसन्न किया, तब वे 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयमहापुराणमें देवताओंद्वारा की गयी जयास्तुति पूर्ण हुई॥

८—कामेश्वरीस्तुतिः

युधिष्ठिर उवाच

नमस्ते परमेशानि ब्रह्मरूपे सनातनि।
सुरासुरजगद्वन्द्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ १॥
न ते प्रभावं जानन्ति ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः।
प्रसीद जगतामाद्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २॥
अनादिपरमा विद्या देहिनां देहधारिणी।
त्वमेवासि जगद्वन्द्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ ३॥
त्वं बीजं सर्वभूतानां त्वं बुद्धिश्चेतना धृतिः।
त्वं प्रबोधश्च निद्रा च कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ ४॥
त्वामाराध्य महेशोऽपि कृतकृत्यं हि मन्यते।
आत्मानं परमात्माऽपि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ ५॥

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मरूपा सनातनी परमेश्वरी! आपको नमस्कार है। देवताओं, असुरों और सम्पूर्ण विश्वद्वारा वन्दित कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। जगत्‌की आदिकारणभूता कामेश्वरी! आपके प्रभावको ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी नहीं जानते हैं; आप प्रसन्न हों, आपको नमस्कार है। जगद्वन्द्ये! आप अनादि, परमा, विद्या और देहधारियोंकी देहको धारण करनेवाली हैं, कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। आप सभी प्राणियोंकी बीजस्वरूपा हैं, आप ही बुद्धि, चेतना और धृति हैं, आप ही जागृति और निद्रा हैं। कामेश्वरी! आपको नमस्कार है॥ १—४॥

आपकी आराधना करके परमात्मा शिव भी अपने-आपको कृतकृत्य

दुर्वृत्तवृत्तसंहर्त्रि पापपुण्यफलप्रदे।
लोकानां तापसंहर्त्रि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ ६ ॥
त्वमेका सर्वलोकानां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
करालवदने कालि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ ७ ॥
प्रपन्नार्तिहरे मातः सुप्रसन्नमुखाम्बुजे।
प्रसीद परमे पूर्णे कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ ८ ॥
त्वामाश्रयन्ति ये भक्त्या यान्ति चाश्रयतां तु ते।
जगतां त्रिजगद्धात्रि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ ९ ॥
शुद्धज्ञानमये पूर्णे प्रकृतिः सृष्टिभाविनी।
त्वमेव मातर्विश्वेशि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ १० ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे युधिष्ठिरकृता कामेश्वरीस्तुतिः सम्पूर्णा ॥

मानते हैं, कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। दुराचारियोंके दुराचरणका संहार करनेवाली, पाप-पुण्यके फलको देनेवाली तथा सम्पूर्ण लोकोंके तापका नाश करनेवाली कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। आप ही एकमात्र समस्त लोकोंकी सृष्टि, स्थिति और विनाश करनेवाली हैं। विकराल मुखवाली काली कामेश्वरी! आपको नमस्कार है॥ ५—७॥

शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेवाली, कमलके समान सुन्दर और प्रसन्न मुखवाली माता! आप मुझपर प्रसन्न हों। परमे! पूर्णे! कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। जो भक्तिपूर्वक आपके शरणागत हैं, वे संसारको शरण देनेयोग्य हो जाते हैं। तीनों लोकोंका पालन करनेवाली देवी कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। आप शुद्धज्ञानमयी, सृष्टिको उत्पन्न करनेवाली पूर्ण प्रकृति हैं। आप ही विश्वकी माता हैं, कामेश्वरी! आपको नमस्कार है॥ ८—१०॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत युधिष्ठिरद्वारा की गयी कामेश्वरीस्तुति सम्पूर्ण हुई॥

९—देवीस्तुतिः

ध्यानम्

ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं

हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।

गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-

पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

देवा ऊचुः

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ १॥

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।

ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः॥ २॥

ध्यान

जो अपने करकमलोंमें घण्टा, शूल, हल, शंख, मूसल, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, शरद् ऋतुके शोभासम्पन्न चन्द्रमाके समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो तीनों लोकोंकी आधारभूता और शुम्भ आदि दैत्योंका नाश करनेवाली हैं तथा गौरीके शरीरसे जिनका प्राकट्य हुआ है, उन महासरस्वती देवीका मैं निरन्तर भजन करता हूँ।

देवता बोले—देवीको नमस्कार है, महादेवी शिवाको सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्राको प्रणाम है। हमलोग नियमपूर्वक जगदम्बाको नमस्कार करते हैं॥ १॥

रौद्राको नमस्कार है। नित्या, गौरी एवं धात्रीको बारंबार नमस्कार है। ज्योत्स्नामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपा देवीको सतत प्रणाम है॥ २॥

कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः॥ ३॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः॥ ४॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः॥ ५॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ ६॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ ७॥

शरणागतोंका कल्याण करनेवाली वृद्धि एवं सिद्धिरूपा देवीको हम बारंबार नमस्कार करते हैं। नैर्ऋती (राक्षसोंकी लक्ष्मी), राजाओंकी लक्ष्मी तथा शर्वाणी (शिवपत्नी)-स्वरूपा आप जगदम्बाको बार-बार नमस्कार है॥ ३॥

दुर्गा, दुर्गपारा (दुर्गम संकटसे पार उतारनेवाली), सारा (सबकी सारभूता), सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रादेवीको सर्वदा नमस्कार है॥ ४॥

अत्यन्त सौम्य तथा अत्यन्त रौद्ररूपा देवीको हम नमस्कार करते हैं, उन्हें हमारा बारंबार प्रणाम है। जगत्‌की आधारभूता कृतिदेवीको बारंबार नमस्कार है॥ ५॥

जो देवी सब प्राणियोंमें विष्णुमायाके नामसे कही जाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ६॥

जो देवी सब प्राणियोंमें चेतना कहलाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ७॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ ८॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ ९॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १०॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ ११॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १२॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १३॥

जो देवी सब प्राणियोंमें बुद्धिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ८॥

जो देवी सब प्राणियोंमें निद्रारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ९॥

जो देवी सब प्राणियोंमें क्षुधारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १०॥

जो देवी सब प्राणियोंमें छायारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ११॥

जो देवी सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १२॥

जो देवी सब प्राणियोंमें तृष्णारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १३॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १४॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १५॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १६॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १७॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १८॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १९॥

जो देवी सब प्राणियोंमें क्षान्ति (क्षमा)-रूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १४॥

जो देवी सब प्राणियोंमें जातिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १५॥

जो देवी सब प्राणियोंमें लज्जारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १६॥

जो देवी सब प्राणियोंमें शान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १७॥

जो देवी सब प्राणियोंमें श्रद्धारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १८॥

जो देवी सब प्राणियोंमें कान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १९॥

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २० ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २१ ॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें लक्ष्मीरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २० ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें वृत्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २१ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें स्मृतिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २२ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें दयारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २३ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें तुष्टिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २४ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें मातारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २५ ॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २६॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः॥ २७॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २८॥
स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः॥ २९॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।

जो देवी सब प्राणियोंमें भ्रान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २६॥

जो जीवोंके इन्द्रियवर्गकी अधिष्ठात्री देवी एवं सब प्राणियोंमें सदा व्याप्त रहनेवाली हैं, उन व्याप्तिदेवीको बारंबार नमस्कार है॥ २७॥

जो देवी चैतन्यरूपसे इस सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २८॥

पूर्वकालमें अपने अभीष्टकी प्राप्ति होनेसे देवताओंने जिनकी स्तुति की तथा देवराज इन्द्रने बहुत दिनोंतक जिनका सेवन किया, वह कल्याणकी साधनभूता ईश्वरी हमारा कल्याण और मंगल करे तथा सारी आपत्तियोंका नाश कर डाले॥ २९॥

उद्दण्ड दैत्योंसे सताये हुए हम सभी देवता जिन परमेश्वरीको इस

या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः॥ ३०॥

॥ इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे देवैः कृता देवीस्तुतिः सम्पूर्णा॥

१०—आनन्दलहरी

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः
प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि।
न षड्भिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपति-
स्तदान्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसरः॥ १॥

समय नमस्कार करते हैं तथा जो भक्तिसे विनम्र पुरुषोंद्वारा स्मरण की जानेपर तत्काल ही सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश कर देती हैं, वे जगदम्बा हमारा संकट दूर करें॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयमहापुराणमें देवताओंद्वारा की गयी देवीस्तुति सम्पूर्ण हुई॥

हे भवानि! प्रजापति ब्रह्माजी अपने चार मुखोंसे भी तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, त्रिपुरविनाशक महादेवजी पाँच मुखोंसे भी तुम्हारा स्तवन नहीं कर सकते, कार्तिकेयजी तो छः मुखोंके रहते हुए भी असमर्थ हैं, इने-गिने मुखवालोंकी तो बात ही क्या है, नागराज शेष हजार मुखोंसे भी तुम्हारा गुणगान नहीं कर पाते, फिर तुम्हीं बताओ, जब इनकी यह दशा है तो दूसरे किसीको और किस प्रकार तुम्हारी स्तुतिका अवसर प्राप्त हो सकता है?॥ १॥

घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदै-
  र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः
  कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे॥ २॥
मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला
  ललाटे काश्मीरं विलसति गले मौक्तिकलता।
स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितटे हाटकमयी
  भजामि त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम्॥ ३॥
विराजन्मन्दारद्रुमकुसुमहारस्तनतटी
  नदद्वीणानादश्रवणविलसत्कुण्डलगुणा ।

घी, दूध, दाख और मधुकी मधुरताको किसी भी शब्दसे विशेषरूपसे नहीं बताया जा सकता, उसे तो केवल रसना (जिह्वा) ही जानती है। इसी प्रकार तुम्हारा सौन्दर्य केवल महादेवजीके नेत्रोंका ही विषय है, उसे हम क्योंकर बतावें? हे देवि! तुम्हारे गुणोंका वर्णन तो सारे वेद भी नहीं कर सकते॥ २॥

तुम्हारे मुखमें पान है, नेत्रोंमें काजलकी पतली रेखा है, ललाटमें केसरकी बेंदी है, गलेमें मोतीका हार सुशोभित हो रहा है, कटिके निम्नभागमें सुनहली साड़ी है, जिसपर रत्नमयी मेखला (करधनी) चमक रही है, ऐसी वेश-भूषासे सजी हुई गिरिराज हिमालयकी गौरवर्णा कन्या तुमको मैं सदा ही भजता हूँ॥ ३॥

जहाँ पारिजात-पुष्पकी माला सुशोभित हो रही है, उन उरोजोंके समीप बजती हुई वीणाका मधुर नाद श्रवण करते हुए जिनके

नताङ्गी मातङ्गीरुचिरगतिभङ्गी भगवती
सती शम्भोरम्भोरुहचटुलचक्षुर्विजयते॥ ४॥
नवीनार्कभ्राजन्मणिकनकभूषापरिकरै-
र्वृताङ्गी सारङ्गीरुचिरनयनाङ्गीकृतशिवा।
तडित्पीता पीताम्बरललितमञ्जीरसुभगा
ममापर्णा पूर्णा निरवधिसुखैरस्तु सुमुखी॥ ५॥
हिमाद्रेः संभूता सुललितकरैः पल्लवयुता
सुपुष्पा मुक्ताभिर्भ्रमरकलिता चालकभरैः।

कानोंमें कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जिनका अंग झुका हुआ है, हथिनीकी भाँति जिनकी मन्द-मनोहर चाल है, जिनके नेत्र कमलके समान सुन्दर और चंचल हैं, वे शम्भुकी सती भार्या भगवती उमा सर्वत्र विजयिनी हो रही हैं॥ ४॥

जिनका अंग नवोदित बाल रविके समान देदीप्यमान मणि और सोनेके आभूषणोंसे अलंकृत है, मृगीके समान जिनके विशाल एवं सुन्दर नेत्र हैं, जिन्होंने शिवको पतिरूपसे स्वीकार किया है, बिजलीके समान जिनकी पीत प्रभा है, जो पीत वस्त्रकी प्रभा पड़नेसे और अधिक सुन्दर प्रतीत होनेवाले मंजीरको चरणोंमें धारण करके सुशोभित हो रही हैं, वे निरतिशय आनन्दसे पूर्ण भगवती अपर्णा मुझपर सुप्रसन्न हों॥ ५॥

समस्त रोगोंको नष्ट करनेवाली एक चलती-फिरती चिदानन्दमयी लता (उमा) सुशोभित हो रही है, वह हिमालयसे उत्पन्न हुई है, सुन्दर हाथ ही उसके पल्लव हैं, मुक्ताका हार ही सुन्दर फूल है, काली-काली अलकें भ्रमरोंकी भाँति उसे आच्छन्न किये हुई हैं,

कृतस्थाणुस्थाना कुचफलनता सूक्तिसरसा
रुजां हन्त्री गन्त्री विलसति चिदानन्दलतिका॥ ६॥
सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरमिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम्॥ ७॥
विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नायजननी
त्वमर्थानां मूलं धनदनमनीयाङ्घ्रिकमले।
त्वमादिः कामानां जननि कृतकन्दर्पविजये
सतां मुक्तेर्बीजं त्वमसि परमब्रह्ममहिषी॥ ८॥

स्थाणु (शंकरजी अथवा ठूँठ वृक्ष) ही उसके रहनेका आश्रय है, उरोजरूपी फलोंके भारसे वह झुकी हुई है और सुन्दर वाणीरूपी रससे भरी है॥ ६॥

दूसरे लोग कुछ ही गुणोंसे युक्त सपर्णा (पत्तेवाली) लताका आदरपूर्वक सेवन करते हैं, परन्तु हमारी बुद्धि तो इस प्रकार स्फुरित होती है कि इस जगत्में सभी लोगोंको एकमात्र अपर्णा (पार्वती या बिना पत्तेकी लता)-का ही सेवन करना चाहिये, जिससे आवृत होकर पुराना स्थाणु (ठूँठ वृक्ष अथवा शिव) भी कैवल्यपदवी (मोक्ष)-रूप फल देता है॥ ७॥

सम्पूर्ण धर्मोंकी सृष्टि करनेवाली और समस्त आगमोंको जन्म देनेवाली तुम्हीं हो। हे देवि! कुबेर भी तुम्हारे चरणोंकी वन्दना करते हैं, तुम्हीं समस्त वैभवका मूल हो। हे कामदेवपर विजय पानेवाली माँ! कामनाओंकी आदि कारण भी तुम्हीं हो। तुम परब्रह्मस्वरूप महेश्वरकी पटरानी हो। अतः तुम्हीं संतोंके मोक्षका बीज हो॥ ८॥

प्रभूता भक्तिस्ते यदपि न ममालोलमनस-
स्त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽहमधुना।
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातकमुखे
भृशं शङ्के कैर्वा विधिभिरनुनीता मम मतिः॥ ९ ॥
कृपापाङ्गालोकं वितर तरसा साधुचरिते
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते।
न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका
विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्लीपरिकरैः॥ १० ॥
महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्केरुहयुगे
निधायान्यन्नैवाश्रितमिह मया दैवतमुमे।

मेरा मन चंचल है, इसलिये यद्यपि मैंने आपकी प्रचुर भक्ति नहीं की है तथापि आप श्रीमतीको इस समय मुझपर अवश्य ही दया-दृष्टि करनी चाहिये। चातक चाहे प्रेम करे या न करे, पर मेघ तो उसके मुखमें मधुर जल गिराता ही है अथवा मुझे बड़ी शंका हो रही है कि मेरी बुद्धि किन-किन विधियोंसे आपमें अनुनीत हो, आपकी ओर लगे॥ ९ ॥

हे साधु चरित्रोंवाली माँ! तुम बहुत शीघ्र अपनी कृपाकटाक्षयुक्त दृष्टिसे मुझे निहारो। मैं तुम्हारी शरणकी दीक्षा ले चुका हूँ, अब मेरी उपेक्षा करना उचित नहीं है। यदि कल्पलता पग-पगपर अभीष्ट कामनाओंकी पूर्ति न कर सके तो अन्य साधारण लताओंसे उसमें विशेषता ही कैसे रह सकती है?॥ १० ॥

हे लम्बोदर गणेशको जन्म देनेवाली उमे! मैंने तुम्हारे युगल चरणारविन्दोंमें बहुत बड़ा विश्वास रखकर किसी अन्य देवताका

तथापि त्वच्चेतो यदि मयि न जायेत सदयं
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥ ११॥

अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम्॥ १२॥

त्वदन्यस्मादिच्छाविषयफललाभे न नियम-
स्त्वमर्थानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे।
इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
स्त्वदासक्तं नक्तं दिवमुचितमीशानि कुरु तत्॥ १३॥

स्फुरन्नानारत्नस्फटिकमयभित्तिप्रतिफल-
त्त्वदाकारं चञ्चच्छशधरकलासौधशिखरम्।

आश्रय नहीं लिया तथापि यदि तुम्हारा चित्त मुझपर सदय न हो तो अब मैं किसकी शरण जाऊँगा?॥ ११॥

जिस प्रकार लोहा पारससे छू जानेपर तत्काल सोना बन जाता है और गलियों [-के नाले]-का जल गंगाजीमें पड़कर पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न पापोंसे मलिन हुआ मेरा अन्तःकरण यदि प्रेमपूर्वक तुममें आसक्त हो गया तो वह कैसे निर्मल नहीं होगा?॥ १२॥

हे ईशानि! तुमसे अन्य किसी देवतासे मनोवांछित फल प्राप्त हो ही जाय, ऐसा नियम नहीं है, परंतु तुम तो पुरुषोंको उनकी इच्छासे अधिक वस्तु भी देनेमें समर्थ हो—इस प्रकार ब्रह्मादि प्राचीन पुरुष कहा करते हैं। इसलिये अब मेरा मन रात-दिन तुममें ही लगा रहता है, अब तुम जो उचित समझो करो॥ १३॥

हे त्रिभुवनमहाराज शिवकी गृहिणी शिवे! जहाँ नाना प्रकारके

मुकुन्दब्रह्मेन्द्रप्रभृतिपरिवारं　　विजयते
तवागारं　रम्यं　त्रिभुवनमहाराजगृहिणि ॥ १४ ॥
निवासः कैलासे विधिशतमखाद्याः स्तुतिकराः
कुटुम्बं त्रैलोक्यं कृतकरपुटः सिद्धिनिकरः।
महेशः　　प्राणेशस्तदवनिधराधीशतनये
न ते सौभाग्यस्य क्वचिदपि मनागस्ति तुलना ॥ १५ ॥
वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं
श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणविधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैवं स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा ॥ १६ ॥

रत्न और स्फटिकमणिकी भीतपर तुम्हारा आकार प्रतिबिम्बित हो रहा है, जिसकी अट्टालिकाके शिखरपर प्रतिबिम्बित होकर चन्द्रमाकी कला सुशोभित हो रही है, विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता जिसे घेरकर खड़े रहते हैं, वह तुम्हारा रमणीय भवन विजयी हो रहा है॥ १४॥

हे गिरिराजनन्दिनि! तुम्हारा कैलासमें निवास है, ब्रह्मा और इन्द्र आदि तुम्हारी स्तुति किया करते हैं, समस्त त्रिभुवन ही तुम्हारा कुटुम्ब है, आठों सिद्धियोंका समुदाय तुम्हारे सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहता है और महेश्वर तुम्हारे प्राणनाथ हैं; तुम्हारे सौभाग्यकी कहीं अल्प भी तुलना नहीं हो सकती॥ १५॥

हे जननि! कामारि शिवका बूढ़ा बैल ही वाहन है, विष ही भोजन है, दिशाएँ ही वस्त्र हैं; श्मशान ही रंगभूमि है और साँप ही आभूषणका काम देते हैं; उनकी यह सारी सामग्री संसारमें प्रसिद्ध ही है, फिर भी जो उनके पास ऐश्वर्य है, वह तुम्हारे ही सौभाग्यकी महिमा है॥ १६॥

अशेषब्रह्माण्डप्रलयविधिनैसर्गिकमतिः

श्मशानेष्वासीनः कृतभसितलेपः पशुपतिः।

दधौ कण्ठे हालाहलमखिलभूगोलकृपया

भवत्याः संगत्याः फलमिति च कल्याणि कलये॥ १७॥

त्वदीयं सौन्दर्यं निरतिशयमालोक्य परया

भियैवासीद्गङ्गा जलमयतनुः शैलतनये।

तदेतस्यास्तस्माद्वदनकमलं वीक्ष्य कृपया

प्रतिष्ठामातन्वन्निजशिरसिवासेन गिरिशः॥ १८॥

विशालश्रीखण्डद्रवमृगमदाकीर्णघुसृण-

प्रसूनव्यामिश्रं भगवति तवाभ्यङ्गसलिलम्।

हे कल्याणि! जिनकी बुद्धि स्वभावतः समस्त ब्रह्माण्डका संहार करनेमें ही प्रवृत्त होती है, जो अंगोंमें राख पोतकर श्मशानमें बैठे रहते हैं, [ऐसे निठुर स्वभाववाले] पशुपतिने जो समस्त भूमण्डलपर दया करके कण्ठमें हालाहल विष धारण कर लिया, उसे मैं आपके सत्संगका ही फल समझता हूँ॥ १७॥

हे शैलनन्दिनि! आपके सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यको देखकर अत्यन्त भयके कारण ही गंगाजीने जलमय शरीर धारण कर लिया, इससे गंगाजीके दीन मुखकमलको देखकर दयावश शंकरजी उन्हें अपने सिरपर निवास देकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं॥ १८॥

हे भगवति! जिसमें विशाल चन्दनके रस, कस्तूरी और केसरके फूल मिले हुए हैं, ऐसे तुम्हारे अनुलेपनके जलको और चलते हुए

समादाय स्त्रष्टा चलितपदपांसून्निजकरैः
समाधत्ते सृष्टिं विबुधपुरपङ्केरुहदृशाम्॥ १९॥
वसन्ते सानन्दे कुसुमितलताभिः परिवृते
स्फुरन्नानापद्मे सरसि कलहंसालिसुभगे।
सखीभिः खेलन्तीं मलयपवनान्दोलितजले
स्मरेद्यस्त्वां तस्य ज्वरजनितपीडापसरति॥ २०॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता आनन्दलहरी सम्पूर्णा॥

११—ललितापञ्चकम्

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं
विम्बाधरं पृथुलमौक्तिकशोभिनासम्।

तुम्हारे चरणोंकी धूलिको ही लेकर ब्रह्माजी सुरपुरकी कमलनयनी वनिताओं (अप्सराओं)-की सृष्टि करते हैं॥ १९॥

हे देवि ! वसन्त ऋतुमें खिली हुई लताओंसे मण्डित, नाना कमलोंसे सुशोभित एवं हंसोंकी मण्डलीसे अलंकृत सरोवरके भीतर, जहाँका जल मलयानिलसे आन्दोलित हो रहा है, [उसमें] सखियोंके साथ क्रीडा करती हुई आपका जो पुरुष ध्यान करता है, उसकी ज्वर-रोगजनित पीड़ा दूर हो जाती है॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित आनन्दलहरी सम्पूर्ण हुई॥

मैं प्रातःकाल श्रीललितादेवीके उस मनोहर मुखकमलका स्मरण करता हूँ, जिनके बिम्बसमान रक्तवर्ण अधर, विशाल मौक्तिक

आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं
मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलभालदेशम्॥ १ ॥
प्रातर्भजामि ललिताभुजकल्पवल्लीं
रक्ताङ्गुलीयलसदङ्गुलिपल्लवाढ्याम्।
माणिक्यहेमवलयाङ्गदशोभमानां
पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषुसृणीदधानाम् ॥ २ ॥
प्रातर्नमामि ललिताचरणारविन्दं
भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम्।
पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयं
पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम् ॥ ३ ॥
प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं
त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम्।

(मोतीके बुलाक)-से सुशोभित नासिका और कर्णपर्यन्त फैले हुए विस्तीर्ण नयन हैं, जो मणिमय कुण्डल और मन्द मुसकानसे युक्त हैं तथा जिनका ललाट कस्तूरिकातिलकसे सुशोभित है॥ १ ॥

मैं श्रीललितादेवीकी भुजारूपिणी कल्पलताका प्रातःकाल स्मरण करता हूँ, जो लाल अँगूठीसे सुशोभित सुकोमल अंगुलिरूप पल्लवोंवाली तथा रत्नखचित सुवर्णकंकण और अंगदादिसे भूषित है एवं जिसने पुण्ड्र-ईंखके धनुष, पुष्पमय बाण और अंकुश धारण किये हैं॥ २॥

मैं श्रीललितादेवीके चरणकमलोंको, जो भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले और संसारसागरके लिये सुदृढ़ जहाजरूप हैं तथा कमलासन श्रीब्रह्माजी आदि देवेश्वरोंसे पूजित और पद्म, अंकुश, ध्वज एवं सुदर्शनादि मंगलमय चिह्नोंसे युक्त हैं, प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ ३ ॥

मैं प्रातःकाल परमकल्याणरूपिणी श्रीललिता भवानीकी स्तुति करता हूँ, जिनका वैभव वेदान्तवेद्य है, जो करुणामयी होनेसे

विश्वस्य सृष्टिविलयस्थितिहेतुभूतां
विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसातिदूराम् ॥ ४ ॥
प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम
कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति
वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति ॥ ५ ॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः
सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना
विद्यां श्रियं विमलसौख्यमनन्तकीर्तिम् ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं ललितापञ्चकं सम्पूर्णम् ॥

शुद्धस्वरूपा हैं, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लयकी मुख्य हेतु हैं, विद्याकी अधिष्ठात्री देवी हैं तथा वेद, वाणी और मनकी गतिसे अति दूर हैं ॥ ४ ॥

हे ललिते! मैं तेरे पुण्यनाम कामेश्वरी, कमला, महेश्वरी, शाम्भवी, जगज्जननी, परा, वाग्देवी तथा त्रिपुरेश्वरी आदिका प्रातःकाल अपनी वाणीद्वारा उच्चारण करता हूँ ॥ ५ ॥

माता ललिताके अति सौभाग्यप्रद और सुललित इन पाँच श्लोकोंको जो पुरुष प्रातःकाल पढ़ता है, उसे शीघ्र ही प्रसन्न होकर ललितादेवी विद्या, धन, निर्मल सुख और अनन्त कीर्ति देती हैं ॥ ६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यकृत ललितापंचक सम्पूर्ण हुआ ॥

१२—मीनाक्षीपञ्चरत्नम्

उद्यद्भानुसहस्रकोटिसदृशां केयूरहारोज्ज्वलां
विम्बोष्ठीं स्मितदन्तपङ्क्तिरुचिरां पीताम्बरालङ्कृताम्।
विष्णुब्रह्मसुरेन्द्रसेवितपदां तत्त्वस्वरूपां शिवां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्॥ १॥
मुक्ताहारलसत्किरीटरुचिरां पूर्णेन्दुवक्त्रप्रभां
शिञ्जन्नूपुरकिङ्किणीमणिधरां पद्मप्रभाभासुराम्।
सर्वाभीष्टफलप्रदां गिरिसुतां वाणीरमासेवितां। मीनाक्षीं०॥ २॥
श्रीविद्यां शिववामभागनिलयां ह्रीङ्कारमन्त्रोज्ज्वलां
श्रीचक्राङ्कितबिन्दुमध्यवसतिं श्रीमत्सभानायिकाम्।

जो उदय होते हुए सहस्रकोटि सूर्योंके सदृश आभावाली हैं, केयूर और हार आदि आभूषणोंसे भव्य प्रतीत होती हैं, बिम्बाफलके समान अरुण ओठोंवाली हैं, मधुर मुसकानयुक्त दन्तावलिसे जो सुन्दरी मालूम होती हैं तथा पीताम्बरसे अलंकृता हैं; ब्रह्मा, विष्णु आदि देवनायकोंसे सेवित चरणोंवाली उन तत्त्वस्वरूपिणी कल्याणकारिणी करुणावरुणालया श्रीमीनाक्षीदेवीका मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ॥ १॥

जो मोतीकी लड़ियोंसे सुशोभित मुकुट धारण किये सुन्दर मालूम होती हैं, जिनके मुखकी प्रभा पूर्णचन्द्रके समान है, जो झनकारते हुए नूपुर (पायजेब), किंकिणी (करधनी) तथा अनेकों मणियाँ धारण किये हुए हैं, कमलकी-सी आभासे भासित होनेवाली, सबको अभीष्ट फल देनेवाली, सरस्वती और लक्ष्मी आदिसे सेविता उन गिरिराजनन्दिनी करुणावरुणालया श्रीमीनाक्षीदेवीका मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ॥ २॥

जो श्रीविद्या हैं, भगवान् शंकरके वामभागमें विराजमान हैं, 'ह्रीं' बीजमन्त्रसे सुशोभिता हैं, श्रीचक्रांकित बिन्दुके मध्यमें निवास करती

श्रीमत्षण्मुखविघ्नराजजननीं श्रीमज्जगन्मोहिनीं। मीनाक्षीं० ॥ ३ ॥

श्रीमत्सुन्दरनायिकां भयहरां ज्ञानप्रदां निर्मलां
श्यामाभां कमलासनार्चितपदां नारायणस्यानुजाम्।
वीणावेणुमृदङ्गवाद्यरसिकां नानाविधामम्बिकां। मीनाक्षीं० ॥ ४ ॥

नानायोगिमुनीन्द्रहृत्सुवसतिं नानार्थसिद्धिप्रदां
नानापुष्पविराजिताङ्घ्रियुगलां नारायणेनार्चिताम्।
नादब्रह्ममयीं परात्परतरां नानार्थतत्त्वात्मिकां। मीनाक्षीं० ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं मीनाक्षीपञ्चरत्नं सम्पूर्णम् ॥

हैं तथा देवसभाकी अधिनेत्री हैं, उन श्रीस्वामी कार्तिकेय और गणेशजीकी माता जगन्मोहिनी करुणावरुणालया श्रीमीनाक्षीदेवीका मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ॥ ३ ॥

जो अति सुन्दर स्वामिनी हैं, भयहारिणी हैं, ज्ञानप्रदायिनी हैं, निर्मला और श्यामला हैं, कमलासन श्रीब्रह्माजीद्वारा जिनके चरणकमल पूजे गये हैं तथा श्रीनारायण (कृष्णचन्द्र)-की जो अनुजा (छोटी बहन) हैं; वीणा, वेणु, मृदंगादि वाद्योंकी रसिका उन विचित्र लीलाविहारिणी करुणावरुणालया श्रीमीनाक्षीदेवीका मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ॥ ४ ॥

जो अनेकों योगिजन और मुनीश्वरोंके हृदयमें निवास करनेवाली तथा नाना प्रकारके पदार्थोंकी प्राप्ति करानेवाली हैं, जिनके चरणयुगल विचित्र पुष्पोंसे सुशोभित हो रहे हैं, जो श्रीनारायणसे पूजिता हैं तथा जो नादब्रह्ममयी, परेसे भी परे और नाना पदार्थोंकी तत्त्वस्वरूपा हैं, उन करुणावरुणालया श्रीमीनाक्षीदेवीका मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ॥ ५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यकृत मीनाक्षीपंचरत्न सम्पूर्ण हुआ॥

१३—भवान्यष्टकम्

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥ १॥
भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः।
कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाहं। गतिस्त्वं०॥ २॥
न जानामि दानं न च ध्यानयोगं
न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्रमन्त्रम्।
न जानामि पूजां न च न्यासयोगं। गतिस्त्वं०॥ ३॥
न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं
न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित्।

हे भवानि! पिता, माता, भाई, दाता, पुत्र, पुत्री, भृत्य, स्वामी, स्त्री, विद्या और वृत्ति—इनमेंसे कोई भी मेरा नहीं है, हे देवि! अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ १॥

मैं अपार भवसागरमें पड़ा हुआ हूँ, महान् दुःखोंसे भयभीत हूँ; कामी, लोभी, मतवाला तथा संसारके घृणित बन्धनोंमें बँधा हुआ हूँ, हे भवानि! अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ २॥

हे भवानि! मैं न तो दान देना जानता हूँ और न ध्यानमार्गका ही मुझे पता है, तन्त्र और स्तोत्र-मन्त्रोंका भी मुझे ज्ञान नहीं है, पूजा तथा न्यास आदिकी क्रियाओंसे तो मैं एकदम कोरा हूँ, अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ३॥

न मैं पुण्य जानता हूँ न तीर्थ, न मुक्तिका पता है न लयका।

न जानामि भक्तिं व्रतं वापि मातर्गतिस्त्वं० ॥ ४ ॥

कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः
कुलाचारहीनः कदाचारलीनः।
कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबन्धः सदाहं। गतिस्त्वं० ॥ ५ ॥

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित्।
न जानामि चान्यत् सदाहं शरण्ये। गतिस्त्वं० ॥ ६ ॥

विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले चानले पर्वते शत्रुमध्ये।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि। गतिस्त्वं० ॥ ७ ॥

हे मातः! भक्ति और व्रत भी मुझे ज्ञात नहीं है, हे भवानि! अब केवल तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ४॥

मैं कुकर्मी, बुरी संगतिमें रहनेवाला, दुर्बुद्धि, दुष्टदास, कुलोचित सदाचारसे हीन, दुराचारपरायण, कुत्सित दृष्टि रखनेवाला और सदा दुर्वचन बोलनेवाला हूँ, हे भवानि! मुझ अधमकी अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ५॥

मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य किसी भी देवताको नहीं जानता, हे शरण देनेवाली भवानि! अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ६॥

हे शरण्ये! तुम विवाद, विषाद, प्रमाद, परदेश, जल, अनल, पर्वत, वन तथा शत्रुओंके मध्यमें सदा ही मेरी रक्षा करो, हे भवानि! अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ७॥

अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो
महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाहं । गतिस्त्वं० ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं भवान्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥

१४—तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्

[योगनिद्रास्तुतिः]

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥ २ ॥

हे भवानि! मैं सदासे ही अनाथ, दरिद्र, जरा-जीर्ण, रोगी, अत्यन्त दुर्बल, दीन, गूँगा, विपद्ग्रस्त और नष्टप्राय हूँ, अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो ॥ ८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यकृत भवान्यष्टक सम्पूर्ण हुआ ॥

जो इस विश्वकी अधीश्वरी, जगत्को धारण करनेवाली, संसारका पालन और संहार करनेवाली तथा तेजःस्वरूप भगवान् विष्णुकी अनुपम शक्ति हैं, उन्हीं भगवती निद्रादेवीकी भगवान् ब्रह्मा स्तुति करने लगे ॥ १ ॥

ब्रह्माजीने कहा—देवि! तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं जीवनदायिनी सुधा

अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा॥ ३॥
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥ ४॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये॥ ५॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी॥ ६॥

हो। नित्य अक्षर प्रणवमें अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राओंके रूपमें तुम्हीं स्थित हो तथा इन तीन मात्राओंके अतिरिक्त जो विन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेषरूपसे उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो। देवि! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो॥ २-३॥

देवि! तुम्हीं इस विश्व-ब्रह्माण्डको धारण करती हो। तुमसे ही इस जगत्‌की सृष्टि होती है। तुम्हींसे इसका पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्पके अन्तमें सबको अपना ग्रास बना लेती हो॥ ४॥

जगन्मयी देवि! इस जगत्‌की उत्पत्तिके समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालनकालमें स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्तके समय संहाररूप धारण करनेवाली हो॥ ५॥

तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहरूपा, महादेवी और महासुरी हो॥ ६॥

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा॥ ७ ॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च॥ ८ ॥
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा॥ ९ ॥
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी॥ १० ॥
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥ ११ ॥

तुम्हीं तीनों गुणोंको उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो। भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम्हीं हो॥ ७॥

तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ह्री और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो। लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो॥ ८॥

तुम खड्गधारिणी, शूलधारिणी, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शंख और धनुष धारण करनेवाली हो। बाण, भुशुण्डी और परिघ—ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं॥ ९॥

तुम सौम्य और सौम्यतर हो—इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो। पर और अपर—सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम्हीं हो॥ १०॥

सर्वस्वरूपे देवि! कहीं भी सत्-असत्‌रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो। ऐसी अवस्थामें तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है?॥ ११॥

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥ १२॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्॥ १३॥
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ॥ १४॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥ १५॥

॥ इति तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तं सम्पूर्णम्॥

जो इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान्‌को भी जब तुमने निद्राके अधीन कर दिया है, तब तुम्हारी स्तुति करनेमें यहाँ कौन समर्थ हो सकता है?॥ १२॥

मुझको, भगवान् शंकरको तथा भगवान् विष्णुको भी तुमने ही शरीर धारण कराया है; अतः तुम्हारी स्तुति करनेकी शक्ति किसमें है?॥ १३॥

देवि! तुम तो अपने इन उदार प्रभावोंसे ही प्रशंसित हो। ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इनको मोहमें डाल दो और जगदीश्वर भगवान् विष्णुको शीघ्र ही जगा दो। साथ ही इनके भीतर इन दोनों महान् असुरोंको मार डालनेकी बुद्धि उत्पन्न कर दो॥ १४-१५॥

॥ इस प्रकार तन्त्रोक्त रात्रिसूक्त सम्पूर्ण हुआ॥

१५—पार्वतीस्तुतिः

वीरक उवाच

नतसुरासुरमौलिमिलन्मणिप्रचयकान्तिकरालनखाङ्किते।
नगसुते शरणागतवत्सले तव नतोऽस्मि नतार्तिविनाशिनि॥ १॥
तपनमण्डलमण्डितकन्धरे पृथुसुवर्णसुवर्णनगद्युते।
विषभुजङ्गनिषङ्गविभूषिते गिरिसुते भवतीमहमाश्रये॥ २॥
जगति कः प्रणताभिमतं ददौ झटिति सिद्धनुते भवती यथा।
जगति कां च न वाञ्छति शङ्करो भुवनधृत्तनये भवतीं यथा॥ ३॥
विमलयोगविनिर्मितदुर्जयस्वतनुतुल्यमहेश्वरमण्डले।
विदलितान्धकबान्धवसंहतिः सुरवरैः प्रथमं त्वमभिष्टुता॥ ४॥

वीरकने कहा—गिरिराजकुमारी! आपके चरण-नख प्रणत हुए सुरों और असुरोंके मुकुटोंमें लगी हुई मणिसमूहोंकी उत्कट कान्तिसे सुशोभित होते रहते हैं। आप शरणागतवत्सला तथा प्रणतजनोंका कष्ट दूर करनेवाली हैं। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार कर रहा हूँ॥ १॥

गिरिनन्दिनि! आपके कन्धे सूर्यमण्डलके समान चमकते हुए सुशोभित हो रहे हैं। आपकी शरीरकान्ति प्रचुर सुवर्णसे परिपूर्ण सुमेरु गिरिकी तरह है। आप विषैले सर्परूपी तरकशसे विभूषित हैं, मैं आपका आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ २॥

सिद्धोंद्वारा नमस्कार की जानेवाली देवि! आपके समान जगत्में प्रणतजनोंके अभीष्टको तुरंत प्रदान करनेवाला दूसरा कौन है? गिरिजे! इस जगत्में भगवान् शंकर आपके समान किसी अन्यकी इच्छा नहीं करते॥ ३॥

आपने महेश्वरमण्डलको निर्मल योगबलसे निर्मित अपने शरीरके तुल्य दुर्जय बना दिया है। आप मारे गये अन्धकासुरके भाई-बन्धुओंका संहार करनेवाली हैं। सुरेश्वरोंने सर्वप्रथम आपकी स्तुति की है॥ ४॥

सितसटापटलोद्धतकन्धराभरमहामृगराजरथस्थिता ।
विकलशक्तिमुखानलपिङ्गलायतभुजौघविपिष्टमहासुरा ॥ ५ ॥
निगदिता भुवनैरिति चण्डिका जननि शुम्भनिशुम्भनिषूदनी ।
प्रणतचिन्तितदानवदानवप्रमथनैकरतिस्तरसा भुवि ॥ ६ ॥
वियति वायुपथे ज्वलनोज्ज्वलेऽवनितले तव देवि च यद्वपुः ।
तदजितेऽप्रतिमे प्रणमाम्यहं भुवनभाविनि ते भववल्लभे ॥ ७ ॥
जलधयो ललितोद्धतवीचयो हुतवहद्युतयश्च चराचरम् ।
फणसहस्त्रभृतश्च भुजङ्गमास्त्वदभिधास्यति मय्यभयङ्कराः ॥ ८ ॥

आप श्वेत वर्णकी जटा (केश)-समूहसे आच्छादित कन्धेवाले विशालकाय सिंहरूपी रथपर आरूढ़ होती हैं। आपने चमकती हुई शक्तिके मुखसे निकलनेवाली अग्निकी कान्तिसे पीली पड़नेवाली लम्बी भुजाओंसे प्रधान-प्रधान असुरोंको पीसकर चूर्ण कर दिया है ॥ ५ ॥

जननि! त्रिभुवनके प्राणी आपको शुम्भ-निशुम्भका संहार करनेवाली चण्डिका कहते हैं। एकमात्र आप इस भूतलपर विनम्रजनोंद्वारा चिन्तन किये गये प्रधान-प्रधान दानवोंका वेगपूर्वक मर्दन करनेमें उत्साह रखनेवाली हैं ॥ ६ ॥

देवि! आप अजेय, अनुपम, त्रिभुवनसुन्दरी और शिवजीकी प्राणप्रिया हैं, आपका जो शरीर आकाशमें, वायुके मार्गमें, अग्निकी भीषण ज्वालाओंमें तथा पृथ्वीतलपर भासमान है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ७ ॥

रुचिर एवं भीषण लहरोंसे युक्त महासागर, अग्निकी लपटें, चराचर जगत् तथा हजारों फण धारण करनेवाले बड़े-बड़े नाग—ये सभी आपका नाम लेनेवाले मेरे लिये भयंकर नहीं दीख पड़ते ॥ ८ ॥

भगवति स्थिरभक्तजनाश्रये प्रतिगतो भवतीचरणाश्रयम्।
करणजातमिहास्तु ममाचलं नुतिलवाप्तिफलाशयहेतुतः ॥ ९ ॥
प्रशममेहि ममात्मजवत्सले तव नमोऽस्तु जगत् त्रयसंश्रये।
त्वयि ममास्तु मतिः सततं शिवे शरणगोऽस्मि नतोऽस्मि नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमत्स्यमहापुराणे वीरककृता पार्वतीस्तुतिः सम्पूर्णा ॥

१६—पार्वतीस्तुतिः

ब्रह्मादय ऊचुः

त्वं माता जगतां पितापि च हरः सर्वे इमे बालका-
स्तस्मात्त्वच्छिशुभावतः सुरगणे नास्त्येव ते सम्भ्रमः।

अनन्य भक्तजनोंकी आश्रयभूता भगवति! मैं आपके चरणोंकी शरणमें आ पड़ा हूँ। आपके चरणोंमें प्रणत होनेसे प्राप्त हुए थोड़े-से फलके कारण मेरा इन्द्रियसमुदाय आपके चरणोंमें अटल स्थान प्राप्त करे ॥ ९ ॥

पुत्रवत्सले! मेरे लिये पूर्णरूपसे शान्त हो जाइये। त्रिलोकीकी आश्रयभूता देवि! आपको नमस्कार है। शिवे! मेरी बुद्धि निरन्तर आपके चिन्तनमें ही लगी रहे। मैं आपके शरणागत हूँ और चरणोंमें पड़ा हूँ। आपको नमस्कार है ॥ १० ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वीरककृत पार्वतीस्तुति सम्पूर्ण हुई ॥

ब्रह्मा आदि देवताओंने कहा—माता! शिवसुन्दरी! आप तीनों लोकोंकी माता हैं और शिवजी पिता हैं तथा ये सभी देवतागण आपके बालक हैं। अपनेको आपका शिशु माननेके कारण देवताओंको

मातस्त्वं शिवसुन्दरि त्रिजगतां लज्जास्वरूपा यत-
स्तस्मात्त्वं जय देवि रक्ष धरणीं गौरि प्रसीदस्व नः ॥ १ ॥
त्वमात्मा त्वं ब्रह्म त्रिगुणरहितं विश्वजननि
स्वयं भूत्वा योषित्पुरुषविषयाहो जगति च।
करोष्येवं क्रीडां स्वगुणवशतस्ते च जननीं
वदन्ति त्वां लोकाः स्मरहरवरस्वामिरमणीम् ॥ २ ॥
त्वं स्वेच्छावशतः कदा प्रतिभवस्यंशेन शम्भुः पुमा-
न्स्त्रीरूपेण शिवे स्वयं विहरसि त्रैलोक्यसम्मोहिनि।
सैव त्वं निजलीलया प्रतिभवन् कृष्णः कदाचित्पुमान्
शम्भुं सम्परिकल्प्य चात्ममहिषीं राधां रमस्यम्बिके ॥ ३ ॥

आपसे कोई भी भय नहीं है। देवि! आपकी जय हो। गौरि! आप तीनों लोकोंमें लज्जारूपसे व्याप्त हैं, अतः पृथ्वीकी रक्षा करें और हमलोगोंपर प्रसन्न हों ॥ १ ॥

विश्वजननी! आप सर्वात्मा हैं और आप तीनों गुणोंसे रहित ब्रह्म हैं। अहो, अपने गुणोंके वशीभूत होकर आप ही स्त्री तथा पुरुषका स्वरूप धारण करके संसारमें इस प्रकारकी क्रीडा करती हैं और लोग आप जगज्जननीको कामदेवके विनाशक परमेश्वर शिवकी रमणी कहते हैं ॥ २ ॥

तीनों लोकोंको सम्मोहित करनेवाली शिवे! आप अपनी इच्छाके अनुसार अपने अंशसे कभी पुरुषरूपमें शिव बन जाती हैं और स्वयं स्त्रीरूपमें विद्यमान रहकर उनके साथ विहार करती हैं। अम्बिके! वे ही आप अपनी लीलासे कभी पुरुषरूपमें कृष्णका रूप धारण कर लेती हैं और उनमें शिवकी परिभावना कर स्वयं कृष्णकी पटरानी राधा बनकर उनके साथ रमण करती हैं ॥ ३ ॥

प्रसीद मातर्देवेशि जगद्रक्षणकारिणि।
विरम त्वमिदानीं तु धरणीरक्षणाय वै॥ ४॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे ब्रह्माद्यैः कृता पार्वतीस्तुतिः सम्पूर्णा॥

१७—श्रीसीताजीकृत गौरीवन्दना

जय जय गिरिबरराज किसोरी।
जय महेस मुख चंद चकोरी॥
जय गजबदन षडानन माता।
जगत जननि दामिनि दुति गाता॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना।
अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना॥

जगत्की रक्षा करनेवाली देवेश्वरि! माता! प्रसन्न होइये और पृथ्वीकी रक्षाके लिये अब इस लीलाविलाससे विरत हो जाइये॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणमें ब्रह्मादि देवताओंद्वारा की गयी पार्वतीस्तुति सम्पूर्ण हुई॥

हे श्रेष्ठ पर्वतोंके राजा हिमाचलकी पुत्री पार्वती! आपकी जय हो, जय हो; हे महादेवजीके मुखरूपी चन्द्रमाकी [ओर टकटकी लगाकर देखनेवाली] चकोरी! आपकी जय हो; हे हाथीके मुखवाले गणेशजी और छः मुखवाले स्वामिकार्तिकजीकी माता! हे जगज्जननी! हे बिजलीकी-सी कान्तियुक्त शरीरवाली! आपकी जय हो!

आपका न आदि है, न मध्य है और न अन्त है। आपके असीम

भव भव बिभव पराभव कारिनि।
बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥
पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥
सेवत तोहि सुलभ फल चारी।
बरदायनी पुरारि पिआरी॥
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे।
सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥
मोर मनोरथु जानहु नीकें।
बसहु सदा उर पुर सबही कें॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं।
अस कहि चरन गहे बैदेहीं॥

प्रभावको वेद भी नहीं जानते। आप संसारका उद्भव, पालन और नाश करनेवाली हैं। विश्वको मोहित करनेवाली और स्वतन्त्ररूपसे विहार करनेवाली हैं।

पतिको इष्टदेव माननेवाली श्रेष्ठ नारियोंमें हे माता! आपकी प्रथम गणना है। आपकी अपार महिमाको हजारों सरस्वती और शेषजी भी नहीं कह सकते।

हे [भक्तोंको मुँहमाँगा] वर देनेवाली! हे त्रिपुरके शत्रु शिवजीकी प्रिय पत्नी! आपकी सेवा करनेसे चारों फल सुलभ हो जाते हैं। हे देवि! आपके चरणकमलोंकी पूजा करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी हो जाते हैं।

मेरे मनोरथको आप भलीभाँति जानती हैं; क्योंकि आप सदा सबके हृदयरूपी नगरीमें निवास करती हैं। इसी कारण मैंने उसको प्रकट नहीं किया। ऐसा कहकर जानकीजीने उनके चरण पकड़ लिये।

बिनय प्रेम बस भई भवानी।
खसी माल मूरति मुसुकानी॥
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ।
बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी।
पूजिहि मन कामना तुम्हारी॥
नारद बचन सदा सुचि साचा।
सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा॥
मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥

गिरिजाजी सीताजीके विनय और प्रेमके वशमें हो गयीं। उन [-के गले]-की माला खिसक पड़ी और मूर्ति मुसकरायी। सीताजीने आदरपूर्वक उस प्रसाद (माला)-को सिरपर धारण किया। गौरीजीका हृदय हर्षसे भर गया और वे बोलीं—

हे सीता! हमारी सच्ची आसीस सुनो, तुम्हारी मनःकामना पूरी होगी। नारदजीका वचन सदा पवित्र (संशय, भ्रम आदि दोषोंसे रहित) और सत्य है। जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही वर तुमको मिलेगा।

जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही स्वभावसे ही सुन्दर साँवला वर (श्रीरामचन्द्रजी) तुमको मिलेगा। वह दयाका खजाना और सुजान (सर्वज्ञ) है, तुम्हारे शील और स्नेहको जानता है। इस प्रकार

एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥
जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥

(श्रीरामचरितमानस)

१८—दशमयीबालात्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रम्

श्रीकाली बगलामुखी च ललिता धूम्रावती भैरवी
मातङ्गी भुवनेश्वरी च कमला श्रीवज्रवैरोचनी।
तारा पूर्वमहापदेन कथिता विद्या स्वयं शम्भुना
लीलारूपमयी च देशदशधा बाला तु मां पातु सा॥ १॥

श्रीगौरीजीका आशीर्वाद सुनकर जानकीजीसमेत सब सखियाँ हृदयमें हर्षित हुईं। तुलसीदासजी कहते हैं—भवानीजीको बार-बार पूजकर सीताजी प्रसन्न मनसे राजमहलको लौट चलीं।

गौरीजीको अनुकूल जानकर सीताजीके हृदयको जो हर्ष हुआ वह कहा नहीं जा सकता। सुन्दर मंगलोंके मूल उनके बायें अंग फड़कने लगे।

प्रारम्भसे ही सर्वोत्कृष्ट पद धारण करनेवाले स्वयं भगवान् शिवके द्वारा श्रीकाली, बगलामुखी, ललिता, धूम्रावती, भैरवी, मातंगी, भुवनेश्वरी, कमला, श्रीवज्रवैरोचनी तथा तारा—इन दस प्रकारके अपने ही अंशोंके रूपमें कही गयी लीलारूपमयी वे दस महाविद्यास्वरूपिणी भगवती बाला मेरी रक्षा करें॥ १॥

श्यामां श्यामघनावभासरुचिरां नीलालकालङ्कृतां
बिम्बोष्ठीं बलिशत्रुवन्दितपदां बालार्ककोटिप्रभाम्।
त्रासत्राणकृपाणमुण्डदधतीं भक्ताय दानोद्यतां
वन्दे सङ्कटनाशिनीं भगवतीं बालां स्वयं कालिकाम्॥ २॥
ब्रह्मास्त्रां सुमुखीं बकारविभवां बालां बलाकीनिभां
हस्तन्यस्तसमस्तवैरिरसनामन्ये दधानां गदाम्।
पीतां भूषणगन्धमाल्यरुचिरां पीताम्बराङ्गां वरां
वन्दे सङ्कटनाशिनीं भगवतीं बालां च बगलामुखीम्॥ ३॥
बालार्कश्रुतिभास्करां त्रिनयनां मन्दस्मितां सन्मुखीं
वामे पाशधनुर्धरां सुविभवां बाणं तथा दक्षिणे।

जो श्यामवर्णके विग्रहवाली हैं, जो श्याम मेघकी आभाके समान परम सुन्दर लगती हैं, जो नीले वर्णके घुँघराले केशोंसे अलंकृत हैं, बिम्बाफलके समान जिनके ओष्ठ हैं, बलिशत्रु इन्द्र जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, जो करोड़ों बालसूर्यकी प्रभासे सम्पन्न हैं, भयसे रक्षाके लिये जो कृपाण तथा मुण्ड धारण किये रहती हैं, जो भक्तोंको वर प्रदान करने-हेतु सदा तत्पर रहती हैं, उन संकटनाशिनी साक्षात् कालिकास्वरूपिणी भगवती बालाकी मैं वन्दना करता हूँ॥ २॥

ब्रह्मास्त्र धारण करनेवाली, सुन्दर मुखमण्डलवाली, बकारबीज वैभवसे सम्पन्न, बलाकीके सदृश धवल स्वरूपवाली, एक हाथसे समस्त शत्रुओंकी जिह्वाओंको पकड़े रहनेवाली तथा दूसरे हाथमें गदा धारण किये रहनेवाली, पीले वर्णके आभूषण-गन्ध तथा माला धारण करनेसे परम सुन्दर प्रतीत होनेवाली, पीताम्बरसे सुशोभित अंगोंवाली तथा उत्तम चरित्रवाली उन संकटनाशिनी बगलामुखीस्वरूपिणी भगवती बालाकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ३॥

कानोंमें बाल-सूर्यके समान प्रदीप्त आभूषण धारण करनेसे जाज्वल्यमान

पारावारविहारिणीं परमयीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे सङ्कटनाशिनीं भगवतीं बालां स्वयं षोडशीम्॥ ४॥
दीर्घां दीर्घकुचामुदग्रदशनां दुष्टच्छिदां देवतां
क्रव्यादां कुटिलेक्षणां च कुटिलां काकध्वजां क्षुत्कृशाम्।
देवीं सूर्पकरां मलीनवसनां तां पिप्पलादार्चितां
बालां सङ्कटनाशिनीं भगवतीं ध्यायामि धूमावतीम्॥ ५॥
उद्यत्कोटिदिवाकरप्रतिभटां बालार्कभाकर्पटां
मालापुस्तकपाशमङ्कुशधरां दैत्येन्द्रमुण्डस्रजाम्।

प्रतीत होनेवाली, तीन नेत्रोंसे सुशोभित, मन्द मुस्कानवाली, सुन्दर मुखमण्डलवाली, बायें हाथोंमें पाश तथा धनुष और दाहिने हाथोंमें बाण धारण करनेवाली, परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न, सुधासिन्धुमें विहार करनेवाली, पराशक्तिस्वरूपिणी तथा कमलके आसनपर विराजमान उन संकटनाशिनी साक्षात् षोडशीस्वरूपिणी भगवती बालाकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ४॥

दीर्घ विग्रहवाली, विशाल पयोधरोंसे सम्पन्न, उभरी हुई दंतपंक्तिसे युक्त, दुष्टोंका संहार करनेवाली, देवतास्वरूपिणी, मांसका आहार करनेवाली, कुटिल नेत्रोंवाली, कुटिल स्वभाववाली, काक-ध्वजासे सुशोभित [रथपर विराजमान], भूखके कारण दुर्बल विग्रहवाली, देवीस्वरूपा, हाथमें सूप धारण करनेवाली, मलिन वस्त्र धारण करनेवाली तथा पिप्पलाद ऋषिसे पूजित उन संकटनाशिनी धूमावतीस्वरूपिणी भगवती बालाका मैं ध्यान करता हूँ॥ ५॥

उगते हुए करोड़ों सूर्योंकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाली, बाल-सूर्यकी प्रभाके समान अरुण वस्त्र धारण करनेवाली, अपने हाथोंमें माला-

पीनोत्तुङ्गपयोधरां त्रिनयनां ब्रह्मादिभिः संस्तुतां
बालां सङ्कटनाशिनीं भगवतीं श्रीभैरवीं धीमहि॥ ६॥
वीणावादनतत्परां त्रिनयनां मन्दस्मितां सन्मुखीं
वामे पाशधनुर्धरां तु निकरे बाणं तथा दक्षिणे।
पारावारविहारिणीं परमयीं ब्रह्मासने संस्थितां
वन्दे सङ्कटनाशिनीं भगवतीं मातङ्गिनीं बालिकाम्॥ ७॥
उद्यत्सूर्यनिभां च इन्दुमुकुटामिन्दीवरे संस्थितां
हस्ते चारुवराभयं च दधतीं पाशं तथा चाङ्कुशम्।
चित्रालङ्कृतमस्तकां त्रिनयनां ब्रह्मादिभिः सेवितां
वन्दे सङ्कटनाशिनीं च भुवनेशीमादिबालां भजे॥ ८॥

पुस्तक-पाश और अंकुश धारण करनेवाली, दैत्यराजके मुण्डकी माला धारण करनेवाली, विशाल तथा उन्नत पयोधरोंवाली, तीन नेत्रोंवाली तथा ब्रह्मा आदि देवताओंसे सम्यक् स्तुत होनेवाली उन संकटनाशिनी श्रीभैरवीस्वरूपिणी भगवती बालाका मैं ध्यान करता हूँ॥ ६॥

वीणा बजानेमें तल्लीन, तीन नेत्रोंसे सुशोभित, मन्द मुसकानसे युक्त, सामनेकी ओर मुख करके विराजमान, बायें हाथोंमें पाश तथा धनुष और दाहिने हाथोंमें बाण धारण करनेवाली, चैतन्यसागरमें विहार करनेवाली तथा ब्रह्मासनपर विराजनेवाली परमयी उन संकटनाशिनी मातंगिनीस्वरूपिणी भगवती बालाकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ७॥

उगते हुए सूर्यके सदृश प्रभावाली, चन्द्र-मुकुटसे शोभा पानेवाली, रक्तकमलके आसनपर विराजमान, हाथोंमें सुन्दर वर तथा अभय मुद्रा और पाश तथा अंकुश धारण करनेवाली, चित्रोंसे अलंकृत मस्तकवाली, तीन नेत्रोंवाली, ब्रह्मा आदि देवताओंसे सुसेवित उन संकटनाशिनी भुवनेशीस्वरूपिणी भगवती आदिबालाका मैं भजन करता हूँ॥ ८॥

देवीं काञ्चनसंनिभां त्रिनयनां फुल्लारविन्दस्थितां
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलाम्।
प्रालेयाचलसंनिभैश्च करिभिराषिञ्च्यमानां सदा
बालां सङ्कटनाशिनीं भगवतीं लक्ष्मीं भजे चेन्दिराम्॥ ९ ॥
सच्छिन्नां स्वशिरोविकीर्णकुटिलां वामे करे बिभ्रतीं
तृप्तास्यस्वशरीरजैश्च रुधिरैः सन्तर्पयन्तीं सखीम्।
सद्भक्ताय वरप्रदाननिरतां प्रेतासनाध्यासिनीं
बालां सङ्कटनाशिनीं भगवतीं श्रीछिन्नमस्तां भजे॥ १० ॥

सुवर्णके समान जिनकी कान्ति है, जो तीन नेत्रोंसे सुशोभित हो रही हैं, जो विकसित कमलके आसनपर स्थित हैं, जिन्होंने अपने हाथोंमें वर-अभय तथा कमलद्वय धारण कर रखा है, मस्तकपर किरीट धारण करनेसे जो प्रकाशमान हैं तथा हिमालयके सदृश [चार श्वेतवर्णके] हाथियोंके द्वारा [अपनी शुण्डोंसे उठाये गये स्वर्ण-कलशोंसे] जो निरन्तर अभिषिक्त हो रही हैं, उन संकटनाशिनी इन्दिरासंज्ञक लक्ष्मीस्वरूपिणी भगवती बालाकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ९॥

पूर्णरूपसे कटे मस्तकवाली, अपने कटे सिरके कारण कुटिल प्रतीत होनेवाली, कटे सिरको अपने बायें हाथमें धारण करनेवाली, तृप्त मुखमण्डलवाली, अपने शरीरसे निकले रक्तसे अपनी सखीको संतृप्त करनेवाली, सद्भक्तोंको वरदान देनेमें तत्पर रहनेवाली और प्रेतासनपर विराजमान रहनेवाली उन संकटनाशिनी छिन्नमस्तास्वरूपिणी भगवती बालाकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १०॥

उग्रामेकजटामनन्तसुखदां दूर्वादलाभामजां
कर्त्रीखड्गकपालनीलकमलान् हस्तैर्वहन्तीं शिवाम्।
कण्ठे मुण्डस्त्रजां करालवदनां कञ्जासने संस्थितां
वन्दे सङ्कटनाशिनीं भगवतीं बालां स्वयं तारिणीम्॥ ११॥

मुखे श्रीमातङ्गी तदनुकिलतारा च नयने
तदन्तरगा काली भृकुटिसदने भैरवि परा।
कटौ छिन्ना धूमावती जय कुचेन्दौ कमलजा
पदांशे ब्रह्मास्त्रा जयति किल बाला दशमयी॥ १२॥

जो अत्यन्त उग्र स्वभाववाली हैं, जो एक जटावाली हैं, जो परम सुखदायिनी हैं, दूर्वादलकी आभाके समान जिनका वर्ण है, जो जन्मरहित हैं, जिन्होंने अपने हाथोंमें कैंची-खड्ग-कपाल और नीलकमल धारण कर रखा है, जो कल्याणमयी हैं, जिनके गलेमें मुण्डमाला सुशोभित हो रही है, जिनका मुखमण्डल भयंकर है तथा जो कमलके आसनपर विराजमान हैं, उन संकट-नाशिनी साक्षात् तारास्वरूपिणी भगवती बालाकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ११॥

जिनके मुखमें श्रीमातंगी, उसके बाद नेत्रमें भगवती तारा, उसके भीतर स्थित रहनेवाली काली, भृकुटिदेशमें पराम्बा भैरवी, कटि-प्रदेशमें छिन्नमस्ता और धूमावती, चन्द्रसदृश आभावाले वक्ष-देशमें भगवती कमला और पदभागमें भगवती ब्रह्मास्त्रा विराजमान हैं; ऐसी उन दशविद्यास्वरूपिणी भगवती बालाकी बार-बार जय हो॥ १२॥

विराजन् मन्दारद्रुमकुसुमहारस्तनतटी
परित्रासत्राणास्फटिकगुटिकापुस्तकवरा ।
गले रेखास्तिस्रो गमकगतिगीतैकनिपुणा
सदा पीता हाला जयति किल बाला दशमयी ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमेरुतन्त्रे दशमयीबालात्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१९—देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः ।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥ १ ॥

जिनका वक्षःस्थल मन्दारवृक्षके पुष्पोंके हारसे सुशोभित हो रहा है; जो अपने हाथोंमें महान् भयसे रक्षा करनेवाली अभय मुद्रा, स्फटिककी गुटिका, पुस्तक तथा वर मुद्रा धारण किये हुई हैं, जिनके गलेमें तीन रेखाएँ सुशोभित हैं, जो गमक-गतिसे युक्त गीत गानेमें परम निपुणा हैं और सदा मधुपानमें निरत रहती हैं; उन दशविद्यास्वरूपिणी भगवती बालाकी जय हो ॥ १३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमेरुतन्त्रमें दशमयीबालात्रिपुरसुन्दरीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

माँ! मैं न मन्त्र जानता हूँ, न यन्त्र; अहो! मुझे स्तुतिका भी ज्ञान नहीं है। न आवाहनका पता है, न ध्यानका। स्तोत्र और कथाकी भी जानकारी नहीं है। न तो तुम्हारी मुद्राएँ जानता हूँ और न मुझे व्याकुल होकर विलाप करना ही आता है; परंतु एक बात जानता हूँ, केवल तुम्हारा अनुसरण—तुम्हारे पीछे चलना। जो कि सब क्लेशोंको—समस्त दुःख-विपत्तियोंको हर लेनेवाला है ॥ १ ॥

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ २॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ ३॥
जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।

सबका उद्धार करनेवाली कल्याणमयी माता! मैं पूजाकी विधि नहीं जानता, मेरे पास धनका भी अभाव है, मैं स्वभावसे भी आलसी हूँ तथा मुझसे ठीक-ठीक पूजाका सम्पादन हो भी नहीं सकता; इन सब कारणोंसे तुम्हारे चरणोंकी सेवामें जो त्रुटि हो गयी है, उसे क्षमा करना; क्योंकि कुपुत्रका होना सम्भव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ २॥

माँ! इस पृथ्वीपर तुम्हारे सीधे-सादे पुत्र तो बहुत-से हैं, किंतु उन सबमें मैं ही अत्यन्त चपल तुम्हारा बालक हूँ; मेरे-जैसा चंचल कोई विरला ही होगा। शिवे! मेरा जो यह त्याग हुआ है, यह तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है; क्योंकि संसारमें कुपुत्रका होना सम्भव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ ३॥

जगदम्ब! मातः! मैंने तुम्हारे चरणोंकी सेवा कभी नहीं की, देवि! तुम्हें अधिक धन भी समर्पित नहीं किया; तथापि मुझ-जैसे अधमपर जो

तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ ४॥
परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥ ५॥
श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः।

तुम अनुपम स्नेह करती हो, इसका कारण यही है कि संसारमें कुपुत्र पैदा हो सकता है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ ४॥

गणेशजीको जन्म देनेवाली माता पार्वती! [अन्य देवताओंकी आराधना करते समय] मुझे नाना प्रकारकी सेवाओंमें व्यग्र रहना पड़ता था, इसलिये पचासी वर्षसे अधिक अवस्था बीत जानेपर मैंने देवताओंको छोड़ दिया है, अब उनकी सेवा-पूजा मुझसे नहीं हो पाती; अतएव उनसे कुछ भी सहायता मिलनेकी आशा नहीं है। इस समय यदि तुम्हारी कृपा नहीं होगी तो मैं अवलम्बरहित होकर किसकी शरणमें जाऊँगा॥ ५॥

माता अपर्णा! तुम्हारे मन्त्रका एक अक्षर भी कानमें पड़ जाय तो उसका फल यह होता है कि मूर्ख चाण्डाल भी मधुपाकके समान मधुर वाणीका उच्चारण करनेवाला उत्तम वक्ता हो जाता है, दीन मनुष्य भी करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओंसे सम्पन्न हो चिरकालतक निर्भय विहार करता

तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ॥ ६॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्॥ ७॥

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥ ८॥

रहता है। जब मन्त्रके एक अक्षरके श्रवणका ऐसा फल है तो जो लोग विधिपूर्वक जपमें लगे रहते हैं, उनके जपसे प्राप्त होनेवाला उत्तम फल कैसा होगा ? इसको कौन मनुष्य जान सकता है॥ ६॥

भवानी! जो अपने अंगोंमें चिताकी राख—भभूत लपेटे रहते हैं, जिनका विष ही भोजन है, जो दिगम्बरधारी (नग्न रहनेवाले) हैं, मस्तकपर जटा और कण्ठमें नागराज वासुकिको हारके रूपमें धारण करते हैं तथा जिनके हाथमें कपाल (भिक्षापात्र) शोभा पाता है, ऐसे भूतनाथ पशुपति भी जो एकमात्र 'जगदीश' की पदवी धारण करते हैं, इसका क्या कारण है? यह महत्त्व उन्हें कैसे मिला; यह केवल तुम्हारे पाणिग्रहणकी परिपाटीका फल है; तुम्हारे साथ विवाह होनेसे ही उनका महत्त्व बढ़ गया॥ ७॥

मुखमें चन्द्रमाकी शोभा धारण करनेवाली माँ! मुझे मोक्षकी इच्छा नहीं है, संसारके वैभवकी भी अभिलाषा नहीं है; न विज्ञानकी अपेक्षा है, न सुखकी आकांक्षा; अतः तुमसे मेरी यही याचना है कि मेरा जन्म 'मृडानी, रुद्राणी, शिव, शिव, भवानी'—इन नामोंका जप करते हुए बीते॥ ८॥

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव॥ ९ ॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति॥ १०॥
जगदम्ब विचित्रमत्र किं
परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।

माँ श्यामा! नाना प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंसे कभी विधिपूर्वक तुम्हारी आराधना मुझसे न हो सकी। सदा कठोर भावका चिन्तन करनेवाली मेरी वाणीने कौन-सा अपराध नहीं किया है ! फिर भी तुम स्वयं ही प्रयत्न करके मुझ अनाथपर जो किंचित् कृपादृष्टि रखती हो, माँ ! यह तुम्हारे ही योग्य है। तुम्हारी-जैसी दयामयी माता ही मेरे-जैसे कुपुत्रको भी आश्रय दे सकती है॥ ९ ॥

माता दुर्गे! करुणासिन्धु महेश्वरी! मैं विपत्तियोंमें फँसकर आज जो तुम्हारा स्मरण करता हूँ [पहले कभी नहीं करता रहा], इसे मेरी शठता न मान लेना; क्योंकि भूख-प्याससे पीड़ित बालक माताका ही स्मरण करते हैं॥ १०॥

जगदम्ब! मुझपर जो तुम्हारी पूर्ण कृपा बनी हुई है, इसमें

अपराधपरम्परापरं
न हि माता समुपेक्षते सुतम्॥ ११॥
मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु॥ १२॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

२०—देवीस्तोत्रम्

श्रीभगवानुवाच

नमो देव्यै प्रकृत्यै च विधात्र्यै सततं नमः।
कल्याण्यै कामदायै च वृद्ध्यै सिद्ध्यै नमो नमः॥ १॥
सच्चिदानन्दरूपिण्यै संसारारणये नमः।
पञ्चकृत्यविधात्र्यै ते भुवनेश्यै नमो नमः॥ २॥

आश्चर्यकी कौन-सी बात है, पुत्र अपराध-पर-अपराध क्यों न करता जाता हो, फिर भी माता उसकी उपेक्षा नहीं करती॥ ११॥

महादेवि! मेरे समान कोई पातकी नहीं है और तुम्हारे समान दूसरी कोई पापहारिणी नहीं है; ऐसा जानकर जो उचित जान पड़े, वह करो॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

भगवान् विष्णुने कहा—प्रकृति एवं विधात्री देवीको मेरा निरन्तर नमस्कार है। कल्याणी, कामदा, वृद्धि तथा सिद्धि देवीको बार-बार नमस्कार है। सच्चिदानन्दरूपिणी तथा संसारकी योनिस्वरूपा देवीको नमस्कार है। आप पंचकृत्य* विधात्री तथा श्रीभुवनेश्वरीको बार-बार नमस्कार है॥ १-२॥

---

* पंचकृत्य—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह।

सर्वाधिष्ठानरूपायै कूटस्थायै नमो नमः।
अर्धमात्रार्थभूतायै हृल्लेखायै नमो नमः॥ ३॥
ज्ञातं मयाऽखिलमिदं त्वयि सन्निविष्टं
त्वत्तोऽस्य सम्भवलयावपि मातरद्य।
शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा
ज्ञाताऽधुना सकललोकमयीति नूनम्॥ ४॥
विस्तार्य सर्वमखिलं सदसद्विकारं
सन्दर्शयस्यविकलं पुरुषाय काले।
तत्त्वैश्च षोडशभिरेव च सप्तभिश्च
भासीन्द्रजालमिव नः किल रञ्जनाय॥ ५॥

समस्त संसारकी एकमात्र अधिष्ठात्री तथा कूटस्थरूपा देवीको बार-बार नमस्कार है। ब्रह्मानन्दमयी अर्धमात्रात्मिका एवं हृल्लेखा-रूपिणी देवीको बार-बार नमस्कार है॥ ३॥

हे जननि! मैंने जान लिया कि यह समस्त विश्व आपमें समाहित है तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी सृष्टि एवं संहार भी आप ही करती हैं। इस ब्रह्माण्डके निर्माणमें आपकी विस्तृत प्रभाववाली शक्ति ही मुख्य हेतु है, अतः मुझे अब ज्ञात हो गया है कि आप ही सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त हैं॥ ४॥

इस सत् एवं असत् रूप सम्पूर्ण जगत्का विस्तार करके उस चिद्ब्रह्म पुरुषके समक्ष यथासमय आप इसे समग्ररूपसे प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार अपनी प्रसन्नताके लिये सोलह तथा अन्य सात तत्त्वोंके साथ आपकी क्रीडा हमें इन्द्रजालके समान मनोरंजनकारिणी प्रतीत होती है॥ ५॥

न त्वामृते किमपि वस्तुगतं विभाति
व्याप्यैव सर्वमखिलं त्वमवस्थिताऽसि।
शक्तिं विना व्यवहृतो पुरुषोऽप्यशक्तो
बम्भण्यते जननि बुद्धिमता जनेन॥ ६॥
प्रीणासि विश्वमखिलं सततं प्रभावैः
स्वैस्तेजसा च सकलं प्रकटीकरोषि।
अस्त्येव देवि तरसा किल कल्पकाले
को वेद देवि चरितं तव वैभवस्य॥ ७॥
त्राता वयं जननि ते मधुकैटभाभ्यां
लोकाश्च ते सुविततः खलु दर्शिता वै।
नीताः सुखस्य भवने परमां च कोटिं
यद्दर्शनं तव भवानि महाप्रभावम्॥ ८॥

हे जननि! आपसे रहित यहाँ कोई भी वस्तु दिखायी नहीं देती; आप ही समस्त जगत्‌को व्याप्त करके स्थित रहती हैं। बुद्धिमान् पुरुषोंका कथन है कि आपकी शक्तिके बिना वह परमपुरुष भी कुछ भी करनेमें असमर्थ है॥ ६॥

हे माता! आप अपने कृपाप्रभावसे सारे संसारका सदा कल्याण करती हैं। हे देवि! आप ही अपने तेजसे सृष्टिकालमें सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करती हैं तथा प्रलयकालमें इसका शीघ्र ही संहार कर डालती हैं। हे देवि! आपके वैभवके लीला-चरित्रको भलीभाँति जाननेमें कौन समर्थ है?॥ ७॥

हे जननि! मधु-कैटभ नामक दोनों दानवोंसे आपने हमारी रक्षा की है, आपने ही हमलोगोंको अपने अनेक विस्तृत लोक दिखाये तथा अपने-अपने भवनमें हमें परमानन्दका अनुभव कराया; हे भवानि! यह आपके दर्शनका ही महान् प्रभाव है॥ ८॥

नाहं भवो न च विरिञ्चि विवेद मातः
कोऽन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाव्यम्।
कानीह सन्ति भुवनानि महाप्रभावे
ह्यस्मिन्भवानि रचिते रचनाकलापे॥ ९ ॥
अस्माभिरत्र भुवने हरिरन्य एव
दृष्टः शिवः कमलजः प्रथितप्रभावः।
अन्येषु देवि भुवनेषु न सन्ति किं ते
किं विद्म देवि विततं तव सुप्रभावम्॥ १०॥
याचेऽम्ब तेऽङ्घ्रिकमलं प्रणिपत्य कामं
चित्ते सदा वसतु रूपमिदं तवैतत्।
नामापि वक्त्रकुहरे सततं तवैव
संदर्शनं तव पदाम्बुजयोः सदैव॥ ११॥

हे माता! जब मैं (विष्णु), शिव तथा ब्रह्मा भी आपके अपूर्व चरित्रको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, तब अन्य कोई कैसे जान सकेगा? हे महिमामयी भवानि! आपके रचे हुए इस सृष्टिप्रपंचमें न जाने कितने लोक भरे पड़े हैं॥ ९॥

हमलोगोंने आपके इस लोकमें अद्‌भुत प्रभाववाले दूसरे विष्णु, शिव तथा ब्रह्माको देखा है। हे देवि! क्या वे देवता अन्यान्य लोकोंमें नहीं होंगे? हमलोग आपकी इस अद्‌भुत एवं व्यापक महिमाको कैसे जान सकते हैं?॥ १०॥

हे जगदम्बा! मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवाकर यही वरदान माँगता हूँ कि आपका यह दिव्य स्वरूप मेरे हृदयमें सदा विराजमान रहे, मेरे मुखरूपी गुहासे निरन्तर आपका ही नाम निकले और मुझे सदैव आपके चरणकमलोंके दर्शन होते रहें॥ ११॥

भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयं
त्वां स्वामिनीति मनसा ननु चिन्तयामि।
एषाऽऽवयोरविरता किल देवि भूया-
द्व्याप्तिः सदैव जननीसुतयोरिवार्ये॥ १२॥

त्वं वेत्सि सर्वमखिलं भुवनप्रपञ्चं
सर्वज्ञता परिसमाप्तिनितान्तभूमिः।
किं पामरेण जगदम्ब निवेदनीयं
यद्युक्तमाचर भवानि तवेङ्गितं स्यात्॥ १३॥

ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरुमापतिश्च
संहारकारक इयं तु जने प्रसिद्धिः।
किं सत्यमेतदपि देवि तवेच्छया वै
कर्तुं क्षमा वयमजे तव शक्तियुक्ताः॥ १४॥

हे माता! आपकी यह भावना मेरे प्रति सर्वदा बनी रहे कि यह मेरा सेवक है और मैं भी सर्वथा आपको मनसे अपनी स्वामिनी समझता रहूँ। हे आर्ये! इस प्रकार मेरा और आपका माता-पुत्रके रूपमें सम्बन्ध नित्य बना रहे॥ १२॥

हे जगदम्बिके! आप समस्त ब्रह्माण्डप्रपंचको पूर्णरूपसे जानती हैं; क्योंकि जहाँ सर्वज्ञताकी समाप्ति होती है, उसकी अन्तिम सीमा आप ही हैं। हे भवानी! मैं पामर जीव कह ही क्या सकता हूँ? आपको जो उचित लगे, आप वह करें; क्योंकि सब कुछ तो आपहीके संकेतपर होता है॥ १३॥

जगत्में ऐसी प्रसिद्धि है कि ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं, किंतु हे देवि! क्या यह बात सत्य है? हे अजे! सत्य तो यह है कि आपकी इच्छासे तथा आपसे शक्ति प्राप्तकर हम अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ हो पाते हैं॥ १४॥

धात्री धराधरसुते न जगद् बिभर्ति
आधारशक्तिरखिलं तव वै बिभर्ति।
सूर्योऽपि भाति वरदे प्रभया युतस्ते
त्वं सर्वमेतदखिलं विरजा विभासि॥ १५॥
ब्रह्माऽहमीश्वरवरः किल ते प्रभावा-
त्सर्वे वयं जनियुता न यदा तु नित्याः।
केऽन्ये सुराः शतमखप्रमुखाश्च नित्या
नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा॥ १६॥
त्वं चेद्भवानि दयसे पुरुषं पुराणं
जानेऽहमद्य तव सन्निधिगः सदैव।
नोचेदहं विभुरनादिरनीह ईशो
विश्वात्मधीरिति तमःप्रकृतिः सदैव॥ १७॥

हे गिरिजे! यह पृथ्वी इस जगत्‌को धारण नहीं करती है अपितु आपकी आधारशक्ति ही इस समस्त जगत्‌को धारण करती है। हे वरदे! भगवान् सूर्य भी आपके ही आलोकसे युक्त होकर प्रकाशमान हैं, इस प्रकार आप विरजारूपसे इस सम्पूर्ण जगत्‌के रूपमें सुशोभित हो रही हैं॥ १५॥

ब्रह्मा, मैं (विष्णु) तथा श्रेष्ठ शंकर—हम सब निश्चय ही आपके प्रभावसे उत्पन्न होते हैं। जब हम नित्य नहीं हैं तो फिर इन्द्र आदि प्रमुख देवता कैसे नित्य हो सकते हैं? सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की जननी तथा सनातन प्रकृतिरूपा आप ही नित्य हैं॥ १६॥

हे भवानी! आपकी सन्निधिमें आनेपर आज मुझे ज्ञात हो गया कि आप मुझ पुराणपुरुषपर सर्वदा दयाभाव बनाये रखती हैं; अन्यथा मैं अपनेको सर्वव्यापी, आदिरहित, निष्काम, ईश्वर तथा विश्वात्मा बुद्धिवाला मान बैठता और सदाके लिये तमोगुणी प्रकृतिवाला हो जाता॥ १७॥

विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां
शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव।
त्वं कीर्तिकान्तिकमलामलतुष्टिरूपा
मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके॥ १८॥
गायत्र्यसि प्रथमवेदकला त्वमेव
स्वाहा स्वधा भगवती सगुणार्धमात्रा।
आम्नाय एव विहितो निगमो भवत्या
सञ्जीवनाय सततं सुरपूर्वजानाम्॥ १९॥
मोक्षार्थमेव रचयस्यखिलं प्रपञ्चं
तेषां गताः खलु यतो ननु जीवभावम्।
अंशा अनादिनिधनस्य किलानघस्य
पूर्णार्णवस्य वितता हि यथा तरङ्गाः॥ २०॥

आप निश्चय ही सदासे बुद्धिमान् पुरुषोंकी विद्या तथा शक्तिशाली पुरुषोंकी शक्ति हैं। आप कीर्ति, कान्ति, लक्ष्मी तथा निर्मल तुष्टि-स्वरूपा हैं और इस मनुष्यलोकमें आप ही मोक्ष प्रदान करनेवाली विरक्तिस्वरूपा हैं॥ १८॥

आप ही वेदोंकी प्रथम कला गायत्री हैं। आप ही स्वाहा, स्वधा, सगुणा तथा अर्धमात्रा भगवती हैं। आपने ही देवताओं और पूर्वजोंके संरक्षणके लिये आगम तथा निगमका विधान किया है॥ १९॥

जिस प्रकार पूर्ण महासमुद्रकी विस्तृत तरंगें उस समुद्रका ही अंश होती हैं, उसी प्रकार आदि-अन्तसे हीन निष्कलंक ब्रह्मके अंश ही जीवभावको प्राप्त होते हैं; उन्हें मोक्ष प्राप्त करानेके उद्देश्यसे ही आपने सम्पूर्ण जगत्-प्रपंचका निर्माण किया है॥ २०॥

जीवो यदा तु परिवेत्ति तवैव कृत्यं
त्वं संहरस्यखिलमेतदिति प्रसिद्धम्।
नाट्यं नटेन रचितं वितथेऽन्तरङ्गे
कार्ये कृते विरमसे प्रथितप्रभावा॥ २१॥
त्राता त्वमेव मम मोहमयाद्भवाब्धे-
स्त्वामम्बिके सततमेमि महार्तिदे च।
रागादिभिर्विरचिते वितथे किलान्ते
मामेव पाहि बहुदुःखकरे च काले॥ २२॥
नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव।
सदा ज्ञानप्रकाशं मे देहि सर्वार्थदे शिवे॥ २३॥

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विष्णुना कृतं देवीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

सम्पूर्ण विश्वप्रपंच आपका ही कृत्य है और आप ही उसका संहार भी करती हैं—इस प्रसिद्ध तथ्यको जब जीव जान लेता है तब उसके इस विवेकज्ञानको देखकर व्यापक प्रभाववाली आप उसी प्रकार उपशमको प्राप्त होती हैं, जिस प्रकार अपने द्वारा रचित मिथ्या किंतु चमत्कारपूर्ण नाट्यपर नट संतोष प्राप्त करता है॥ २१॥

हे अम्बिके! आप ही इस मोहमय भवसागरसे मेरी रक्षा कर सकती हैं। राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंसे उत्पन्न अत्यन्त कष्टदायक तथा महान् दुःखप्रद मिथ्यारूप अन्तकालमें मेरी रक्षा कीजियेगा, मैं सदा आपकी शरणमें हूँ॥ २२॥

हे देवि! आपको नमस्कार है। हे महाविद्ये! मैं आपके चरणोंमें बार-बार नमन करता हूँ। हे सर्वार्थदायिनी शिवे! आप मुझे सदा ज्ञानरूपी प्रकाश प्रदान कीजिये॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणके तृतीयस्कन्धमें वर्णित विष्णुकृत देवीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

२१—देवीस्तुति

जय जय जगजननि देवि सुर-नर-मुनि-असुर-सेवि,
भुक्ति-मुक्ति-दायिनी, भय-हरणि कालिका।
मंगल-मुद-सिद्धि-सदनि, पर्वशर्वरीश-वदनि,
ताप-तिमिर-तरुण-तरणि-किरणमालिका ॥ १ ॥
वर्म, चर्म कर कृपाण, शूल-शेल-धनुषबाण,
धरणि, दलनि दानव-दल, रण-करालिका।
पूतना-पिशाच-प्रेत-डाकिनि-शाकिनि-समेत,
भूत-ग्रह-बेताल-खग-मृगालि-जालिका ॥ २ ॥
जय महेश-भामिनी, अनेक-रूप-नामिनी,
समस्त-लोक-स्वामिनी, हिमशैल-बालिका।

हे जगत्की माता! हे देवि!! तुम्हारी जय हो, जय हो। देवता, मनुष्य, मुनि और असुर सभी तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम भोग और मोक्ष दोनोंको ही देनेवाली हो। भक्तोंका भय दूर करनेके लिये तुम कालिका हो। कल्याण, सुख और सिद्धियोंकी स्थान हो। तुम्हारा सुन्दर मुख पूर्णिमाके चन्द्रके सदृश है। तुम आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये मध्याह्नके तरुण सूर्यकी किरणमाला हो॥ १॥

तुम्हारे शरीरपर कवच है। तुम हाथोंमें ढाल-तलवार, त्रिशूल, साँगी और धनुष-बाण लिये हो। दानवोंके दलका संहार करनेवाली हो, रणमें विकरालरूप धारण कर लेती हो। तुम पूतना, पिशाच, प्रेत और डाकिनी-शाकिनियोंके सहित भूत, ग्रह और बेतालरूपी पक्षी और मृगोंके समूहको पकड़नेके लिये जालरूप हो॥ २॥

हे शिवे! तुम्हारी जय हो। तुम्हारे अनेक रूप और नाम हैं। तुम

रघुपति-पद परम प्रेम, तुलसी यह अचल नेम,
देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रणत-पालिका॥ ३॥
(विनय-पत्रिका)

२२—भवानीस्तुति

दुसह दोष-दुख, दलनि,
करु देवि दाया।
विश्व-मूलाऽसि, जन-सानुकूलाऽसि,
कर शूलधारिणि महामूलमाया॥ १॥
तडित गर्भाङ्ग सर्वाङ्ग सुन्दर लसत,
दिव्य पट भव्य भूषण विराजैं।

समस्त संसारकी स्वामिनी और हिमाचलकी कन्या हो। हे शरणागतकी रक्षा करनेवाली! मैं तुलसीदास श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें परम प्रेम और अचल नेम चाहता हूँ, सो प्रसन्न होकर मुझे दो और मेरी रक्षा करो॥ ३॥

हे देवि! तुम दुःसह दोष और दुःखोंको दमन करनेवाली हो, मुझपर दया करो। तुम विश्व-ब्रह्माण्डकी मूल (उत्पत्ति-स्थान) हो, भक्तोंपर सदा अनुकूल रहती हो, दुष्टदलनके लिये हाथमें त्रिशूल धारण किये हो और सृष्टिकी उत्पत्ति करनेवाली मूल (अव्याकृत) प्रकृति हो॥ १॥

तुम्हारे सुन्दर शरीरके समस्त अंगोंमें बिजली-सी चमक रही है, उनपर दिव्य वस्त्र और सुन्दर आभूषण शोभित हो रहे हैं।

बालमृग-मंजु खञ्जन-विलोचनि,
चन्द्रवदनि लखि कोटि रतिमार लाजैं॥ २॥
रूप-सुख-शील-सीमाऽसि, भीमाऽसि,
रामाऽसि, वामाऽसि वर बुद्धि बानी।
छमुख-हेरंब-अंबासि, जगदंबिके,
शंभु-जायासि जय जय भवानी॥ ३॥
चंड-भुजदंड-खंडनि, बिहंडनि महिष
मुंड-मद-भंग कर अंग तोरे।
शुंभ-निःशुंभ कुम्भीश रण-केशरिणि,
क्रोध-वारीश अरि-वृन्द बोरे॥ ४॥

तुम्हारे नेत्र मृगछौने और खंजनके नेत्रोंके समान सुन्दर हैं, मुख चन्द्रमाके समान है, तुम्हें देखकर करोड़ों रति और कामदेव लज्जित होते हैं॥ २॥

तुम रूप, सुख और शीलकी सीमा हो; दुष्टोंके लिये तुम भयानक रूप धारण करनेवाली हो। तुम्हीं लक्ष्मी, तुम्हीं पार्वती और तुम्हीं श्रेष्ठ बुद्धिवाली सरस्वती हो। हे जगज्जननि! तुम स्वामिकार्तिकेय और गणेशजीकी माता हो और शिवजीकी गृहिणी हो; हे भवानी! तुम्हारी जय हो, जय हो॥ ३॥

तुम चण्ड दानवके भुजदण्डोंका खण्डन करनेवाली और महिषासुरको मारनेवाली हो, मुण्ड दानवके घमण्डका नाश कर तुम्हींने उसके अंग-प्रत्यंग तोड़े हैं। शुम्भ-निशुम्भरूपी मतवाले हाथियोंके लिये तुम रणमें सिंहिनी हो। तुमने अपने क्रोधरूपी समुद्रमें शत्रुओंके दल-के-दल डुबो दिये हैं॥ ४॥

निगम-आगम-अगम गुर्वि! तव गुन-
कथन, उर्विधर करत जेहि सहसजीहा।
देहि मा, मोहि पन प्रेम यह नेम निज,
राम घनश्याम तुलसी पपीहा॥ ५॥

(विनय-पत्रिका)

वेद, शास्त्र और सहस्त्र जीभवाले शेषजी तुम्हारा गुणगान करते हैं; परंतु उसका पार पाना उनके लिये बड़ा कठिन है। हे माता! मुझ तुलसीदासको श्रीरामजीमें वैसा ही प्रण, प्रेम और नेम दो, जैसा चातकका श्याम मेघमें होता है॥ ५॥

नवदुर्गा

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः।

प्रथम नाम शैलपुत्री है। दूसरी मूर्तिका नाम ब्रह्मचारिणी है। तीसरा स्वरूप चन्द्रघण्टाके नामसे प्रसिद्ध है। चौथी मूर्तिको कूष्माण्डा कहते हैं। पाँचवीं दुर्गाका नाम स्कन्दमाता है। देवीके छठे रूपको कात्यायनी कहते हैं। सातवाँ कालरात्रि और आठवाँ स्वरूप महागौरीके नामसे प्रसिद्ध है। नवीं दुर्गाका नाम सिद्धिदात्री है।

कालीस्तोत्रम्

२३—भद्रकालीस्तुतिः

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

नमामि त्वां विश्वकर्त्रीं परेशीं
नित्यामाद्यां सत्यविज्ञानरूपाम्।
वाचातीतां निर्गुणां चातिसूक्ष्मां
ज्ञानातीतां शुद्धविज्ञानगम्याम्॥ १॥

पूर्णां शुद्धां विश्वरूपां सुरूपां
देवीं वन्द्यां विश्ववन्द्यामपि त्वाम्।
सर्वान्तःस्थामुत्तमस्थानसंस्था-
मीडे कालीं विश्वसम्पालयित्रीम्॥ २॥

मायातीतां मायिनीं वापि मायां
भीमां श्यामां भीमनेत्रां सुरेशीम्।

ब्रह्मा और विष्णु बोले—सर्वसृष्टिकारिणी, परमेश्वरी, सत्यविज्ञान-रूपा, नित्या, आद्याशक्ति! आपको हम प्रणाम करते हैं। आप वाणीसे परे हैं, निर्गुण और अति सूक्ष्म हैं, ज्ञानसे परे और शुद्ध विज्ञानसे प्राप्य हैं॥ १॥

आप पूर्णा, शुद्धा, विश्वरूपा, सुरूपा, वन्दनीया तथा विश्ववन्द्या हैं। आप सबके अन्तःकरणमें वास करती हैं एवं सारे संसारका पालन करती हैं। दिव्य स्थाननिवासिनी आप भगवती महाकालीको हमारा प्रणाम है॥ २॥

महामायास्वरूपा आप मायामयी तथा मायासे अतीत हैं; आप

विद्यां सिद्धां सर्वभूताशयस्था-
मीडे कालीं विश्वसंहारकर्त्रीम्॥ ३ ॥
नो ते रूपं वेत्ति शीलं न धाम
नो वा ध्यानं नापि मन्त्रं महेशि।
सत्तारूपे त्वां प्रपद्ये शरण्ये
विश्वाराध्ये सर्वलोकैकहेतुम्॥ ४ ॥
द्यौस्ते शीर्षं नाभिदेशो नभश्च
चक्षूंषि ते चन्द्रसूर्यानलास्ते।
उन्मेषास्ते सुप्रबोधो दिवा च
रात्रिर्मातश्चक्षुषोस्ते निमेषम्॥ ५ ॥
वाक्यं देवा भूमिरेषा नितम्बं
पादौ गुल्फं जानुजङ्घस्त्वधस्ते।

भीषण, श्यामवर्णवाली, भयंकर नेत्रोंवाली परमेश्वरी हैं। आप सिद्धियोंसे सम्पन्न, विद्यास्वरूपा, समस्त प्राणियोंके हृदयप्रदेशमें निवास करनेवाली तथा सृष्टिका संहार करनेवाली हैं, आप महाकालीको हमारा नमस्कार है॥ ३ ॥

महेश्वरी! हम आपके रूप, शील, दिव्य धाम, ध्यान अथवा मन्त्रको नहीं जानते। शरण्ये! विश्वाराध्ये! हम सारी सृष्टिकी कारणभूता और सत्तास्वरूपा आपकी शरणमें हैं॥ ४॥

मातः! द्युलोक आपका सिर है, नभोमण्डल आपका नाभिप्रदेश है। चन्द्र, सूर्य और अग्नि आपके त्रिनेत्र हैं, आपका जगना ही सृष्टिके लिये दिन और जागरणका हेतु है और आपका आँखें मूँद लेना ही सृष्टिके लिये रात्रि है॥ ५॥

देवता आपकी वाणी हैं, यह पृथ्वी आपका नितम्बप्रदेश तथा पाताल आदि नीचेके भाग आपके जङ्घा, जानु, गुल्फ और चरण

प्रीतिर्धर्मोऽधर्मकार्यं हि कोपः
सृष्टिर्बोधः संहृतिस्ते तु निद्रा ॥ ६ ॥
अग्निर्जिह्वा ब्राह्मणास्ते मुखाब्जं
संध्ये द्वे ते भ्रूयुगं विश्वमूर्तिः ।
श्वासो वायुर्बाहवो लोकपालाः
क्रीडा सृष्टिः संस्थितिः संहृतिस्ते ॥ ७ ॥
एवंभूतां देवि विश्वात्मिकां त्वां
कालीं वन्दे ब्रह्मविद्यास्वरूपाम् ।
मातः पूर्णे ब्रह्मविज्ञानगम्ये
दुर्गेऽपारे साररूपे प्रसीद ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे ब्रह्मविष्णुकृता भद्रकालीस्तुतिः सम्पूर्णा ॥

हैं। धर्म आपकी प्रसन्नता और अधर्मकार्य आपके कोपके लिये है। आपका जागरण ही इस संसारकी सृष्टि है और आपकी निद्रा ही इसका प्रलय है ॥ ६ ॥

अग्नि आपकी जिह्वा है, ब्राह्मण आपके मुखकमल हैं। दोनों संध्याएँ आपकी दोनों भ्रूकुटियाँ हैं, आप विश्वरूपा हैं, वायु आपका श्वास है, लोकपाल आपके बाहु हैं और इस संसारकी सृष्टि, स्थिति तथा संहार आपकी लीला है ॥ ७ ॥

पूर्णे! ऐसी सर्वस्वरूपा आप महाकालीको हमारा प्रणाम है। आप ब्रह्मविद्यास्वरूपा हैं। ब्रह्मविज्ञानसे ही आपकी प्राप्ति सम्भव है। सर्वसाररूपा, अनन्तस्वरूपिणी माता दुर्गे! आप हमपर प्रसन्न हों ॥ ८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत ब्रह्मा और विष्णुद्वारा की गयी भद्रकालीस्तुति सम्पूर्ण हुई ॥

२४—श्रीकालिकाष्टकम्

ध्यानम्

गलद्रक्तमुण्डावलीकण्ठमाला
महाघोररावा सुदंष्ट्रा कराला।
विवस्त्रा श्मशानालया मुक्तकेशी
महाकालकामाकुला कालिकेयम्॥ १॥
भुजे वामयुग्मे शिरोऽसिं दधाना
वरं दक्षयुग्मेऽभयं वै तथैव।
सुमध्याऽपि तुङ्गस्तनाभारनम्रा
लसद्रक्तसृक्कद्वया सुस्मितास्या॥ २॥
शवद्वन्द्वकर्णावतंसा सुकेशी
लसत्प्रेतपाणिं प्रयुक्तैककाञ्ची।

ध्यान

ये भगवती कालिका गलेमें रक्त टपकते हुए मुण्डसमूहोंकी माला पहने हुए हैं, ये अत्यन्त घोर शब्द कर रही हैं, इनकी सुन्दर दाढ़ें हैं तथा स्वरूप भयानक है, ये वस्त्ररहित हैं, ये श्मशानमें निवास करती हैं, इनके केश बिखरे हुए हैं और ये महाकालके साथ कामलीलामें निरत हैं॥ १॥

ये अपने दोनों बाँयें हाथोंमें नरमुण्ड और खड्ग लिये हुई हैं तथा अपने दोनों दाहिने हाथोंमें वर और अभयमुद्रा धारण किये हुई हैं। ये सुन्दर कटिप्रदेशवाली हैं, ये उन्नत स्तनोंके भारसे झुकी हुई-सी हैं, इनके ओष्ठ-द्वयका प्रान्त भाग रक्तसे सुशोभित है और इनका मुख-मण्डल मधुर मुस्कानसे युक्त है॥ २॥

इनके दोनों कानोंमें दो शवरूपी आभूषण हैं, ये सुन्दर केशवाली हैं, शवोंके हाथोंसे बनी सुशोभित करधनी ये पहने हुई हैं,

शवाकारमञ्चाधिरूढा शिवाभि-
श्चतुर्दिक्षुशब्दायमानाऽभिरेजे ॥ ३ ॥

स्तुतिः

विरञ्च्यादिदेवास्त्रयस्ते गुणांस्त्रीन्
समाराध्य कालीं प्रधाना बभूवुः।
अनादिं सुरादिं मखादिं भवादिं
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥ ४ ॥
जगन्मोहनीयं तु वाग्वादिनीयं
सुहृत्पोषिणीशत्रुसंहारणीयम् ।
वचस्तम्भनीयं किमुच्चाटनीयं
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥ ५ ॥
इयं स्वर्गदात्री पुनः कल्पवल्ली
मनोजांस्तु कामान् यथार्थं प्रकुर्यात्।

शवरूपी मंचपर ये आसीन हैं और चारों दिशाओंमें भयानक शब्द करती हुई सियारिनोंसे घिरी हुई सुशोभित हैं ॥ ३ ॥

स्तुति

ब्रह्मा आदि तीनों देवता आपके तीनों गुणोंका आश्रय लेकर तथा आप भगवती कालीकी ही आराधना कर प्रधान हुए हैं। आपका स्वरूप आदिरहित है, देवताओंमें अग्रगण्य है, प्रधान यज्ञस्वरूप है और विश्वका मूलभूत है; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते ॥ ४ ॥

आपका यह स्वरूप सारे विश्वको मुग्ध करनेवाला है, वाणीद्वारा स्तुति किये जानेयोग्य है, यह सुहृदोंका पालन करनेवाला है, शत्रुओंका विनाशक है, वाणीका स्तम्भन करनेवाला है और उच्चाटन करनेवाला है; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते ॥ ५ ॥

ये स्वर्गको देनेवाली हैं और कल्पलताके समान हैं। ये भक्तोंके मनमें उत्पन्न होनेवाली कामनाओंको यथार्थरूपमें पूर्ण करती हैं।

तथा ते कृतार्था भवन्तीति नित्यं
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥ ६ ॥
सुरापानमत्ता सुभक्तानुरक्ता
लसत्पूतचित्ते सदाविर्भवत्ते।
जपध्यानपूजासुधाधौतपङ्का
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥ ७ ॥
चिदानन्दकन्दं हसन् मन्दमन्दं
शरच्चन्द्रकोटिप्रभापुञ्जबिम्बम् ।
मुनीनां कवीनां हृदि द्योतयन्तं
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥ ८ ॥
महामेघकाली सुरक्तापि शुभ्रा
कदाचिद् विचित्राकृतिर्योगमाया।

और वे सदाके लिये कृतार्थ हो जाते हैं; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते ॥ ६ ॥

आप सुरापानसे मत्त रहती हैं और अपने भक्तोंपर सदा स्नेह रखती हैं। भक्तोंके मनोहर तथा पवित्र हृदयमें ही सदा आपका आविर्भाव होता है। जप, ध्यान तथा पूजारूपी अमृतसे आप भक्तोंके अज्ञानरूपी पंकको धो डालनेवाली हैं; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते ॥ ७ ॥

आपका स्वरूप चिदानन्दघन, मन्द-मन्द मुसकानसे सम्पन्न, शरत्कालीन करोड़ों चन्द्रमाके प्रभासमूहके प्रतिबिम्ब-सदृश और मुनियों तथा कवियोंके हृदयको प्रकाशित करनेवाला है; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते ॥ ८ ॥

आप प्रलयकालीन घटाओंके समान कृष्णवर्णा हैं, आप कभी रक्तवर्णवाली तथा कभी उज्ज्वलवर्णवाली भी हैं। आप विचित्र आकृतिवाली तथा

न बाला न वृद्धा न कामातुरापि
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः॥ ९ ॥
क्षमस्वापराधं महागुप्तभावं
मया लोकमध्ये प्रकाशीकृतं यत्।
तव ध्यानपूतेन चापल्यभावात्
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः॥ १० ॥

फलश्रुतिः

यदि ध्यानयुक्तं पठेद् यो मनुष्य-
स्तदा सर्वलोके विशालो भवेच्च।
गृहे चाष्टसिद्धिर्मृते चापि मुक्तिः
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीकालिकाष्टकं सम्पूर्णम्॥

योगमायास्वरूपिणी हैं। आप न बाला, न वृद्धा और न कामातुरा युवती ही हैं; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते॥ ९॥

आपके ध्यानसे पवित्र होकर चंचलतावश इस अत्यन्त गुप्तभावको जो मैंने संसारमें प्रकट कर दिया है, मेरे इस अपराधको आप क्षमा करें; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते॥ १०॥

फलश्रुति

यदि कोई मनुष्य ध्यानयुक्त होकर इसका पाठ करता है, तो वह सारे लोकोंमें महान् हो जाता है। उसे अपने घरमें आठों सिद्धियाँ प्राप्त रहती हैं और मरनेपर मुक्ति भी प्राप्त हो जाती है; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीकालिकाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

सरस्वतीस्तोत्राणि

२५—श्रीसरस्वतीस्तोत्रम्

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥ १॥

आशासु राशीभवदङ्गवल्ली-
भासैव दासीकृतदुग्धसिन्धुम्।
मन्दस्मितैर्निन्दितशारदेन्दुं
वन्देऽरविन्दासनसुन्दरि त्वाम्॥ २॥

शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे।
सर्वदा सर्वदास्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात्॥ ३॥

जो कुन्दके फूल, चन्द्रमा, बर्फ और हारके समान श्वेत हैं; जो शुभ्र वस्त्र धारण करती हैं; जिनके हाथ उत्तम वीणासे सुशोभित हैं; जो श्वेत कमलासनपर बैठती हैं; ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव जिनकी सदा स्तुति करते हैं और जो सब प्रकारकी जड़ता हर लेती हैं, वे भगवती सरस्वती मेरा पालन करें॥ १॥

हे कमलपर बैठनेवाली सुन्दरी सरस्वति! तुम सब दिशाओंमें पुंजीभूत हुई अपनी देहलताकी आभासे ही क्षीर-समुद्रको दास बनानेवाली और मन्द मुसकानसे शरद् ऋतुके चन्द्रमाको तिरस्कृत करनेवाली हो, तुमको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २॥

शरत्कालमें उत्पन्न कमलके समान मुखवाली और सब मनोरथोंको देनेवाली शारदा सब सम्पत्तियोंके साथ मेरे मुखमें सदा निवास करें॥ ३॥

सरस्वतीं च तां नौमि वागधिष्ठातृदेवताम्।
देवत्वं प्रतिपद्यन्ते यदनुग्रहतो जनाः॥ ४॥
पातु नो निकषग्रावा मतिहेम्नः सरस्वती।
प्राज्ञेतरपरिच्छेदं वचसैव करोति या॥ ५॥
शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥ ६॥
वीणाधरे विपुलमङ्गलदानशीले
भक्तार्तिनाशिनि विरञ्चिहरीशवन्द्ये।

वाणीकी अधिष्ठात्री उन देवी सरस्वतीको प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपासे मनुष्य देवता बन जाता है॥ ४॥

बुद्धिरूपी सोनेके लिये कसौटीके समान सरस्वतीजी, जो केवल वचनसे ही विद्वान् और मूर्खोंकी परीक्षा कर देती हैं; हमलोगोंका पालन करें॥ ५॥

जिनका रूप श्वेत है, जो ब्रह्मविचारकी परम तत्त्व हैं, जो सब संसारमें फैल रही हैं, जो हाथोंमें वीणा और पुस्तक धारण किये रहती हैं, अभय देती हैं, मूर्खतारूपी अन्धकारको दूर करती हैं, हाथमें स्फटिकमणिकी माला लिये रहती हैं, कमलके आसनपर विराजमान होती हैं और बुद्धि देनेवाली हैं, उन आद्या परमेश्वरी भगवती सरस्वतीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ६॥

हे वीणा धारण करनेवाली, अपार मंगल देनेवाली, भक्तोंके दुःख छुड़ानेवाली, ब्रह्मा, विष्णु और शिवसे वन्दित होनेवाली,

कीर्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे महार्हे
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम्॥ ७॥
श्वेताब्जपूर्णविमलासनसंस्थिते हे
श्वेताम्बरावृतमनोहरमञ्जुगात्रे।
उद्यन्मनोज्ञसितपङ्कजमञ्जुलास्ये
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम्॥ ८॥
मातस्त्वदीयपदपङ्कजभक्तियुक्ता
ये त्वां भजन्ति निखिलानपरान्विहाय।
ते निर्जरत्वमिह यान्ति कलेवरेण
भूवह्निवायुगगनाम्बुविनिर्मितेन॥ ९॥
मोहान्धकारभरिते हृदये मदीये
मातः सदैव कुरु वासमुदारभावे।

कीर्ति तथा मनोरथ देनेवाली, पूज्यवरा और विद्या देनेवाली सरस्वति! तुमको नित्य प्रणाम करता हूँ॥ ७॥

हे श्वेत कमलोंसे भरे हुए निर्मल आसनपर विराजनेवाली, श्वेत वस्त्रोंसे ढके सुन्दर शरीरवाली, खिले हुए सुन्दर श्वेत कमलके समान मंजुल मुखवाली और विद्या देनेवाली सरस्वति! तुमको नित्य प्रणाम करता हूँ॥ ८॥

हे मातः! जो (मनुष्य) तुम्हारे चरणकमलोंमें भक्ति रखकर और सब देवताओंको छोड़कर तुम्हारा भजन करते हैं; वे पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश और जल—इन पाँच तत्त्वोंके बने शरीरसे ही देवता बन जाते हैं॥ ९॥

हे उदार बुद्धिवाली माँ! मोहरूपी अन्धकारसे भरे मेरे हृदयमें

स्वीयाखिलावयवनिर्मलसुप्रभाभिः
　　शीघ्रं विनाशय मनोगतमन्धकारम् ॥ १० ॥
ब्रह्मा जगत् सृजति पालयतीन्दिरेशः
　　शम्भुर्विनाशयति देवि तव प्रभावैः ।
न स्यात्कृपा यदि तव प्रकटप्रभावे
　　न स्युः कथञ्चिदपि ते निजकार्यदक्षाः ॥ ११ ॥
लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः ।
एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति ॥ १२ ॥
सरस्वत्यै नमो नित्यं भद्रकाल्यै नमो नमः ।
वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च ॥ १३ ॥
सरस्वति महाभागे विद्ये कमललोचने ।
विद्यारूपे विशालाक्षि विद्यां देहि नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥

सदा निवास करो और अपने सब अंगोंकी निर्मल कान्तिसे मेरे मनके अन्धकारका शीघ्र नाश करो ॥ १० ॥

हे देवि! तुम्हारे ही प्रभावसे ब्रह्मा जगत्को बनाते हैं, विष्णु पालते हैं और शिव विनाश करते हैं; हे प्रकटप्रभावशाली! यदि इन तीनोंपर तुम्हारी कृपा न हो, तो वे किसी प्रकार अपना काम नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

हे सरस्वति! लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा, धृति—इन आठ मूर्तियोंसे मेरी रक्षा करो ॥ १२ ॥

सरस्वतीको नित्य नमस्कार है, भद्रकालीको नमस्कार है और वेद, वेदान्त, वेदांग तथा विद्याओंके स्थानोंको प्रणाम है ॥ १३ ॥

हे महाभाग्यवती ज्ञानस्वरूपा कमलके समान विशाल नेत्रवाली, ज्ञानदात्री सरस्वति! मुझको विद्या दो, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि॥ १५॥

॥ इति श्रीसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

२६—श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रम्

ध्यानम्

दोर्भिर्युक्ताश्चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना
हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण।
या सा कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकमणिनिभा भासमाना समाना
सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना॥ १॥
आरूढा श्वेतहंसे भ्रमति च गगने दक्षिणे चाक्षसूत्रं
वामे हस्ते च दिव्याम्बरकनकमयं पुस्तकं ज्ञानगम्या।

हे देवि! जो अक्षर, पद अथवा मात्रा छूट गयी हो, उसके लिये क्षमा करो और हे परमेश्वरि! प्रसन्न रहो॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीसरस्वतीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

ध्यान

जो चार हाथोंसे सुशोभित हैं और उन हाथोंमें स्फटिकमणिकी बनी हुई अक्षमाला, श्वेत कमल, शुक और पुस्तक धारण किये हुई हैं। जो कुन्द, चन्द्रमा, शंख और स्फटिकमणिके सदृश देदीप्यमान होती हुई इनके समान उज्ज्वलवर्णा हैं, वे ही ये वाग्देवता सरस्वती परम प्रसन्न होकर सर्वदा मेरे मुखमें निवास करें॥ १॥

जो श्वेत हंसपर सवार होकर आकाशमें विचरण करती हैं, जिनके दाहिने हाथमें अक्षमाला और बायें हाथमें दिव्य स्वर्णमय वस्त्रसे आवेष्टित

सा वीणां वादयन्ती स्वकरकरजपैः शास्त्रविज्ञानशब्दैः
क्रीडन्ती दिव्यरूपा करकमलधरा भारती सुप्रसन्ना॥ २॥
श्वेतपद्मासना देवी श्वेतगन्धानुलेपना।
अर्चिता मुनिभिः सर्वैर्ऋषिभिः स्तूयते सदा॥ ३॥
एवं ध्यात्वा सदा देवीं वाञ्छितं लभते नरः॥ ४॥

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रमन्त्रस्य मार्कण्डेय ऋषिः, स्रग्धरा अनुष्टुप् छन्दः, मम वाग्विलाससिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः।

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।

पुस्तक शोभित है, जो ज्ञानगम्या हैं, जो वीणा बजाती हुई और अपने हाथकी करमालासे शास्त्रोक्त बीजमन्त्रोंका जप करती हुई क्रीडारत हैं, जिनका दिव्य रूप है तथा जो हाथमें कमल धारण करती हैं, वे सरस्वती देवी मुझपर प्रसन्न हों॥ २॥

जो भगवती श्वेत कमलपर आसीन हैं, जिनके शरीरमें श्वेत चन्दनका अनुलेप है, मुनिगण जिनकी अर्चना करते हैं तथा सभी ऋषि सदा जिनका स्तवन करते हैं—इस प्रकार सदा देवीका ध्यान करके मनुष्य मनोवांछित फल प्राप्त कर लेता है॥ ३-४॥

विनियोग—इस श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रमन्त्रके मार्कण्डेय ऋषि हैं, स्रग्धरा अनुष्टुप् छन्द है, अपनी वाक्-शक्तिकी सिद्धिके लिये पाठमें विनियोग होता है।

जिनका रूप श्वेत है, जो ब्रह्मविचारकी परम तत्त्व हैं, आदि शक्ति हैं, सब संसारमें व्याप्त हैं, हाथोंमें वीणा और पुस्तक धारण किये रहती हैं, भक्तोंको अभय देती हैं, मूर्खतारूपी अन्धकारको दूर करती हैं,

हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥ १॥
या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥ २॥
ह्रीं ह्रीं हृद्यैकबीजे शशिरुचिकमले कल्पविस्पष्टशोभे
भव्ये भव्यानुकूले कुमतिवनदवे विश्ववन्द्याङ्घ्रिपद्मे।
पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणतजनमनोमोदसम्पादयित्रि
प्रोत्फुल्लज्ञानकूटे हरिनिजदयिते देवि संसारसारे॥ ३॥

हाथमें स्फटिक-मणिकी माला लिये रहती हैं, कमलके आसनपर विराजमान हैं और बुद्धि देनेवाली हैं, उन परमेश्वरी भगवती सरस्वतीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

जो कुन्दके फूल, चन्द्रमा, हिम और हारके समान श्वेत हैं; जो शुभ्र वस्त्र धारण करती हैं; जिनके हाथ उत्तम वीणासे सुशोभित हैं; जो श्वेत कमलासनपर बैठती हैं; ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव जिनकी सदा स्तुति करते हैं और जो सब प्रकारकी जड़ताका हरण कर लेती हैं, वे भगवती सरस्वती मेरी रक्षा करें॥ २॥

'ह्रीं ह्रीं'—इस एकमात्र मनोहर बीजमन्त्रवाली, चन्द्रमाकी कान्तिवाले श्वेत कमलके समान विग्रहवाली, प्रत्येक कल्पमें व्यक्तरूपसे सुशोभित होनेवाली, भव्य स्वरूपवाली, प्रिय तथा अनुकूल स्वभाववाली, कुबुद्धिरूपी वनको दग्ध करनेके लिये दावानलस्वरूपिणी, सम्पूर्ण जगत्के द्वारा वन्दित-चरणकमलवाली, कमलारूपा, कमलके आसनपर विराजमान रहनेवाली, शरणागतजनोंके मनको आह्लादित करनेवाली, महान् ज्ञानकी शिखरस्वरूपिणी, भार्यारूपमें भगवान् विष्णुकी आत्मशक्तिके रूपमें प्रतिष्ठित तथा संसारकी तत्त्वस्वरूपिणी हे देवि! (मैं आपकी स्तुति और वन्दना करता हूँ।) ॥ ३॥

ऐं ऐं ऐं दृष्टमन्त्रे कमलभवमुखाम्भोजभूते स्वरूपे
रूपारूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकारे।
न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदितविभवे नापि विज्ञानतत्त्वे
विश्वे विश्वान्तरात्मे सुरवरनमिते निष्कले नित्यशुद्धे॥ ४॥
ह्रीं ह्रीं ह्रीं जाप्यतुष्टे हिमरुचिमुकुटे वल्लकीव्यग्रहस्ते
मातर्मातर्नमस्ते दह दह जडतां देहि बुद्धिं प्रशस्ताम्।
विद्ये वेदान्तवेद्ये परिणतपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे
मार्गातीतस्वरूपे भव मम वरदा शारदे शुभ्रहारे॥ ५॥

ऐं ऐं ऐं—इस बीजमन्त्रसे दृष्टिगत होनेवाली, पद्मयोनि ब्रह्माजीके मुखकमलसे उत्पन्न, अपने ही स्वरूपमें स्थित, मूर्त तथा अमूर्तरूपमें प्रकाशित होनेवाली, सम्पूर्ण गुणोंसे समन्वित, निर्गुण, निर्विकार, न तो स्थूल रूपवाली और न ही सूक्ष्म रूपवाली, अविदित ऐश्वर्यवाली, विज्ञानतत्त्वसे भी परे, विश्वरूपिणी, विश्वकी अन्तरात्मास्वरूपा, श्रेष्ठ देवताओंके द्वारा वन्दित, निष्कल तथा नित्यशुद्धस्वरूपिणी! (हे देवि! मैं आपकी स्तुति और वन्दना करता हूँ।) ॥ ४॥

ह्रीं ह्रीं ह्रीं—इस बीजमन्त्रके जपसे प्रसन्न होनेवाली, हिमकी कान्तिवाले मुकुटसे सुशोभित तथा वीणाके वादनमें व्यग्रहस्तवाली हे मातः! आपको नमस्कार है; मेरी मूर्खताको पूर्णरूपसे जला दीजिये और हे जननि! मुझे उत्तम बुद्धि प्रदान कीजिये। विद्यास्वरूपिणी, वेदान्तके द्वारा जाननेयोग्य, अधीत विद्याको दृढ़ता प्रदान करनेवाली, मोक्ष देनेवाली, मोक्षकी साधनभूता, मार्गातीतस्वरूपा तथा धवलहारसे सुशोभित हे शारदे! आप मेरे लिये वरदायिनी होवें॥ ५॥

धीं धीं धीं धारणाख्ये धृतिमतिनतिभिर्नामभिः कीर्तनीये
नित्येऽनित्ये निमित्ते मुनिगणनमिते नूतने वै पुराणे।
पुण्ये पुण्यप्रवाहे हरिहरनमिते नित्यशुद्धे सुवर्णे
मातर्मात्रार्धतत्त्वे मतिमतिमतिदे माधवप्रीतिमोदे॥ ६॥
ह्रूं ह्रूं ह्रूं स्वस्वरूपे दह दह दुरितं पुस्तकव्यग्रहस्ते
संतुष्टाकारचित्ते स्मितमुखि सुभगे जृम्भिणि स्तम्भविद्ये।
मोहे मुग्धप्रवाहे कुरु मम विमतिध्वान्तविध्वंसमीडे
गीर्गौर्वाग्भारति त्वं कविवररसनासिद्धिदे सिद्धिसाध्ये॥ ७॥

धीं धीं धीं—इस बीजमन्त्रकी धारणास्वरूपा; धृति, मति, नति आदि नामोंसे पुकारी जानेवाली, नित्यानित्यस्वरूपिणी, जगत्‌की निमित्तकारणभूता, नवीना एवं सनातनी, पुण्यमयी, पुण्यका विस्तार करनेवाली, विष्णु तथा शिवसे नमस्कृत, नित्यशुद्धस्वरूपिणी, सुन्दर वर्णवाली, अर्धमात्रातत्त्वस्वरूपा, विशेषरूपसे सूक्ष्म बुद्धि प्रदान करनेवाली, भगवान् विष्णुके प्रति अनन्य प्रेम रखनेवालोंको आनन्द प्रदान करनेवाली हे मातः! (मुझे बुद्धि प्रदान कीजिये।)॥ ६॥

ह्रूं ह्रूं ह्रूं—इस बीजमन्त्रकी आत्मस्वरूपिणी, [हे सरस्वति!] मेरे पापोंको पूर्णरूपसे भस्म कर दीजिये। पुस्तकसे सुशोभित हाथवाली, प्रसन्नविग्रहा तथा सन्तुष्टचित्ता, मुस्कानयुक्त मुखमण्डलवाली, सौभाग्यशालिनी, जृम्भास्वरूपिणी, स्तम्भनविद्यास्वरूपा, मोहस्वरूपिणी तथा मुग्धप्रवाहवाली [हे देवि!] आप मेरे कुबुद्धिरूपी अन्धकारका नाश कर दीजिये। गीः, गौः, वाक् तथा भारती—इन नामोंसे सम्बोधित होनेवाली, श्रेष्ठ कवियोंकी वाणीको सिद्धि प्रदान करनेवाली तथा सिद्धियोंको सफल बना देनेवाली हे देवि! (मैं आपकी स्तुति करता हूँ)॥ ७॥

स्तौमि त्वां त्वां च वन्दे मम खलु रसनां नो कदाचित्त्यजेथा
मा मे बुद्धिर्विरुद्धा भवतु न च मनो देवि मे यातु पापम्।
मा मे दुःखं कदाचित् क्वचिदपि विषयेऽप्यस्तु मे नाकुलत्वं
शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्माऽस्तु कुण्ठा कदापि॥ ८॥
इत्येतैः श्लोकमुख्यैः प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रो
वाणी वाचस्पतेरप्यविदितविभवो वाक्पटुर्मुक्तकण्ठः।
स स्यादिष्टार्थलाभैः सुतमिव सततं पाति तं सा च देवी
सौभाग्यं तस्य लोके प्रभवति कविता विघ्नमस्तं प्रयाति॥ ९॥
निर्विघ्नं तस्य विद्या प्रभवति सततं चाश्रुतग्रन्थबोधः
कीर्तिस्त्रैलोक्यमध्ये निवसति वदने शारदा तस्य साक्षात्।

हे देवि! मैं आपकी स्तुति तथा आपकी वन्दना करता हूँ, आप कभी भी मेरी वाणीका त्याग न करें, मेरी बुद्धि [धर्मके] विरुद्ध न हो, मेरा मन पापकर्मोंकी ओर प्रवृत्त न हो, मुझे कभी भी कहीं भी दुःख न हो, विषयोंमें मेरी थोड़ी भी आसक्ति न हो; शास्त्रमें, तत्त्वनिरूपणमें और कवित्वमें मेरी बुद्धि सदा विकसित होती रहे और उसमें कभी भी कुण्ठा न आने पाये॥ ८॥

जो मनुष्य भक्तिके साथ विनम्र होकर प्रतिदिन उषाकालमें इन उत्तम श्लोकोंसे सरस्वतीकी स्तुति करता है, वह बृहस्पतिके भी द्वारा अज्ञात वाग्वैभवसे सम्पन्न, वाक्पटु तथा मुक्तकण्ठ हो जाता है। वे भगवती सरस्वती अभीष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिके द्वारा पुत्रकी भाँति निरन्तर उसकी रक्षा करती हैं, संसारमें उसके सौभाग्यका उदय हो जाता है और उसकी काव्य-रचनाकी बाधाएँ समाप्त हो जाती हैं। वाग्देवता शारदाकी महती कृपासे उस मनुष्यकी विद्या निर्बाधरूपसे निरन्तर बढ़ती रहती है, उसे अश्रुत ग्रन्थोंका भी अवबोध हो जाता

दीर्घायुर्लोकपूज्यः सकलगुणनिधिः संततं राजमान्यो
वाग्देव्याः सम्प्रसादात् त्रिजगति विजयी जायते सत्सभासु॥ १०॥
ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यां निरामिषः।
सारस्वतो जनः पाठात् सकृदिष्टार्थलाभवान्॥ ११॥
पक्षद्वये त्रयोदश्यामेकविंशतिसंख्यया।
अविच्छिन्नः पठेद्धीमान् ध्यात्वा देवीं सरस्वतीम्॥ १२॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सुभगो लोकविश्रुतः।
वाञ्छितं फलमाप्नोति लोकेऽस्मिन् नात्र संशयः॥ १३॥

है, तीनों लोकोंमें उसकी कीर्ति फैल जाती है और साक्षात् सरस्वती उसके मुखमें वास करती हैं। वह दीर्घायु, लोकपूज्य, समस्त गुणोंकी खान, राजाओंके लिये सम्माननीय और त्रिलोकीके अन्दर विद्वानोंकी सभाओंमें सदा विजयी होता है॥ ९-१०॥

त्रयोदशीके दिन ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए निरामिष-भोजी होकर, नियमपूर्वक मौन रहकर सरस्वतीका भक्त इस स्तोत्रके एक बार पाठ कर लेनेमात्रसे अपने अभीष्ट अर्थको प्राप्त कर लेता है॥ ११॥

बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि [महीनेके] दोनों पक्षोंमें [पड़नेवाली] त्रयोदशी तिथिको सरस्वतीदेवीका ध्यान करके अनवरत इक्कीस बार [इस स्तोत्रका] पाठ करे। ऐसा व्यक्ति समस्त पापोंसे मुक्त, सौभाग्यशाली और लोकमें विख्यात हो जाता है, वह इस संसारमें वांछित फल प्राप्त करता है, इसमें संदेह नहीं है॥ १२-१३॥

ब्रह्मणेति स्वयं प्रोक्तं सरस्वत्याः स्तवं शुभम्।
प्रयत्नेन पठेन्नित्यं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १४॥

॥ इति श्रीमद्ब्रह्मणा विरचितं श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

२७—नीलसरस्वतीस्तोत्रम्

घोररूपे महारावे सर्वशत्रुभयङ्करि।
भक्तेभ्यो वरदे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ १॥
ॐ सुरासुरार्चिते देवि सिद्धगन्धर्वसेविते।
जाड्यपापहरे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ २॥
जटाजूटसमायुक्ते लोलजिह्वान्तकारिणि।
द्रुतबुद्धिकरे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ ३॥

स्वयं ब्रह्माजीके द्वारा कहे गये इस कल्याणकारी सरस्वतीस्तोत्रका पाठ प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये, ऐसा करनेसे वह मनुष्य अमृतत्व प्राप्त कर लेता है॥ १४॥

॥ श्रीमद्ब्रह्माजीद्वारा विरचित श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

भयानक रूपवाली, घोर निनाद करनेवाली, सभी शत्रुओंको भयभीत करनेवाली तथा भक्तोंको वर प्रदान करनेवाली हे देवि! आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ १॥

देव तथा दानवोंके द्वारा पूजित, सिद्धों तथा गन्धर्वोंके द्वारा सेवित और जड़ता तथा पापको हरनेवाली हे देवि! आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ २॥

जटाजूटसे सुशोभित, चंचल जिह्वाको अंदरकी ओर करनेवाली, बुद्धिको तीक्ष्ण बनानेवाली हे देवि! आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ३॥

सौम्यक्रोधधरे रूपे चण्डरूपे नमोऽस्तु ते।
सृष्टिरूपे नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम्॥ ४॥
जडानां जडतां हन्ति भक्तानां भक्तवत्सला।
मूढतां हर मे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ ५॥
वं हूं हूं कामये देवि बलिहोमप्रिये नमः।
उग्रतारे नमो नित्यं त्राहि मां शरणागतम्॥ ६॥
बुद्धिं देहि यशो देहि कवित्वं देहि देहि मे।
मूढत्वं च हरेद्देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ ७॥
इन्द्रादिविलसद्द्वन्द्ववन्दिते करुणामयि।
तारे ताराधिनाथास्ये त्राहि मां शरणागतम्॥ ८॥

सौम्य क्रोध धारण करनेवाली, उत्तम विग्रहवाली, प्रचण्ड स्वरूपवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। हे सृष्टिस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है; मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ४॥

आप मूर्खोंकी मूर्खताका नाश करती हैं और भक्तोंके लिये भक्तवत्सला हैं। हे देवि! आप मेरी मूढ़ताको हरें और मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ५॥

वं हूं हूं बीजमन्त्रस्वरूपिणी हे देवि! मैं आपके दर्शनकी कामना करता हूँ। बलि तथा होमसे प्रसन्न होनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। उग्र आपदाओंसे तारनेवाली हे उग्रतारे! आपको नित्य नमस्कार है; आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ६॥

हे देवि! आप मुझे बुद्धि दें, कीर्ति दें, कवित्वशक्ति दें और मेरी मूढताका नाश करें। आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ७॥

इन्द्र आदिके द्वारा वन्दित शोभायुक्तचरणयुगलवाली, करुणासे परिपूर्ण, चन्द्रमाके समान मुखमण्डलवाली और जगत्को तारनेवाली हे भगवती तारा! आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ८॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां यः पठेन्नरः।
षण्मासैः सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ९ ॥
मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी लभते धनम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कव्याकरणादिकम्॥ १० ॥
इदं स्तोत्रं पठेद्यस्तु सततं श्रद्धयाऽन्वितः।
तस्य शत्रुः क्षयं याति महाप्रज्ञा प्रजायते॥ ११ ॥
पीडायां वापि संग्रामे जाड्ये दाने तथा भये।
य इदं पठति स्तोत्रं शुभं तस्य न संशयः॥ १२ ॥
इति प्रणम्य स्तुत्वा च योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्॥ १३ ॥

॥ इति नीलसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

जो मनुष्य अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी तिथिको इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह छः महीनेमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसमें संदेह नहीं करना चाहिये॥ ९॥

इसका पाठ करनेसे मोक्षकी कामना करनेवाला मोक्ष प्राप्त कर लेता है, धन चाहनेवाला धन पा जाता है और विद्या चाहनेवाला विद्या तथा तर्क-व्याकरण आदिका ज्ञान प्राप्त कर लेता है॥ १०॥

जो मनुष्य भक्तिपरायण होकर सतत इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके शत्रुका नाश हो जाता है और उसमें महान् बुद्धिका उदय हो जाता है॥ ११॥

जो व्यक्ति विपत्तिमें, संग्राममें, मूर्खत्वकी दशामें, दानके समय तथा भयकी स्थितिमें इस स्तोत्रको पढ़ता है, उसका कल्याण हो जाता है; इसमें संदेह नहीं है। इस प्रकार स्तुति करनेके अनन्तर देवीको प्रणाम करके उन्हें योनिमुद्रा दिखानी चाहिये॥ १२-१३॥

॥ इस प्रकार नीलसरस्वतीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

लक्ष्मीस्तोत्राणि

२८—श्रीकनकधारास्तोत्रम्

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम्।
अङ्गीकृताखिलविभूतिरपाङ्गलीला
माङ्गल्यदास्तु मम मङ्गलदेवतायाः॥ १॥

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः
प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि।
माला दृशोर्मधुकरीव महोत्पले या
सा मे श्रियं दिशतु सागरसम्भवायाः॥ २॥

जैसे भ्रमरी अधखिले कुसुमोंसे अलंकृत तमालतरुका आश्रय लेती है, उसी प्रकार जो श्रीहरिके रोमांचसे सुशोभित श्रीअंगोंपर निरन्तर पड़ती रहती है तथा जिसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्यका निवास है, वह सम्पूर्ण मंगलोंकी अधिष्ठात्री देवी भगवती महालक्ष्मीकी कटाक्षलीला मेरे लिये मंगलदायिनी हो॥ १॥

जैसे भ्रमरी महान् कमलदलपर आती-जाती या मँडराती रहती है, उसी प्रकार जो मुरशत्रु श्रीहरिके मुखारविन्दकी ओर बारंबार प्रेमपूर्वक जाती और लज्जाके कारण लौट आती है, वह समुद्रकन्या लक्ष्मीकी मनोहर मुग्ध दृष्टिमाला मुझे धन-सम्पत्ति प्रदान करे॥ २॥

विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्ष-
मानन्दहेतुरधिकं मुरविद्विषोऽपि।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्ध-
मिन्दीवरोदरसहोदरमिन्दिरायाः ॥ ३ ॥
आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्द-
मानन्दकन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम् ।
आकेकरस्थितकनीनिकपक्ष्मनेत्रं
भूत्यै भवेन्मम भुजङ्गशयाङ्गनायाः ॥ ४ ॥
बाह्वन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या
हारावलीव हरिनीलमयी विभाति।

जो सम्पूर्ण देवताओंके अधिपति इन्द्रके पदका वैभव-विलास देनेमें समर्थ है, मुरारि श्रीहरिको भी अधिकाधिक आनन्द प्रदान करनेवाली है तथा जो नीलकमलके भीतरी भागके समान मनोहर जान पड़ती है, वह लक्ष्मीजीके अधखुले नयनोंकी दृष्टि क्षणभरके लिये मुझपर भी थोड़ी-सी अवश्य पड़े॥ ३॥

शेषशायी भगवान् विष्णुकी धर्मपत्नी श्रीलक्ष्मीजीका वह नेत्र हमें ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला हो, जिसकी पुतली तथा बरौनियाँ अनंगके वशीभूत (प्रेमपरवश) हो अधखुले, किंतु साथ ही निर्निमेष नयनोंसे देखनेवाले आनन्दकन्द श्रीमुकुन्दको अपने निकट पाकर कुछ तिरछी हो जाती हैं॥ ४॥

जो भगवान् मधुसूदनके कौस्तुभमणिमण्डित वक्षःस्थलमें इन्द्रनीलमयी

कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला
कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥ ५ ॥
कालाम्बुदालिललितोरसि कैटभारे-
र्धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव।
मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्ति-
र्भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः ॥ ६ ॥
प्राप्तं पदं प्रथमतः किल यत्प्रभावान्
माङ्गल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन।
मय्यापतेत्तदिह मन्थरमीक्षणार्धं
मन्दालसं च मकरालयकन्यकायाः ॥ ७ ॥
दद्याद् दयानुपवनो द्रविणाम्बुधारा-
मस्मिन्नकिञ्चनविहङ्गशिशौ विषण्णे।

हारावली-सी सुशोभित होती है तथा उनके भी मनमें काम (प्रेम)-का संचार करनेवाली है, वह कमलकुंजवासिनी कमलाकी कटाक्षमाला मेरा कल्याण करे॥ ५॥

जैसे मेघोंकी घटामें बिज़ली चमकती है, उसी प्रकार जो कैटभशत्रु श्रीविष्णुके काली मेघमालाके समान श्यामसुन्दर वक्षःस्थलपर प्रकाशित होती हैं, जिन्होंने अपने आविर्भावसे भृगुवंशको आनन्दित किया है तथा जो समस्त लोकोंकी जननी हैं, उन भगवती लक्ष्मीकी पूजनीया मूर्ति मुझे कल्याण प्रदान करे॥ ६॥

समुद्रकन्या कमलाकी वह मन्द, अलस, मन्थर और अर्धोन्मीलित दृष्टि, जिसके प्रभावसे कामदेवने मंगलमय भगवान् मधुसूदनके हृदयमें प्रथम बार स्थान प्राप्त किया था, यहाँ मुझपर पड़े॥ ७॥

भगवान् नारायणकी प्रेयसी लक्ष्मीका नेत्ररूपी मेघ दयारूपी

दुष्कर्मघर्ममपनीय चिराय दूरं
नारायणप्रणयिनीनयनाम्बुवाहः ॥ ८ ॥
इष्टा विशिष्टमतयोऽपि यया दयार्द्र-
दृष्ट्या त्रिविष्टपपदं सुलभं लभन्ते।
दृष्टिः प्रहृष्टकमलोदरदीप्तिरिष्टां
पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्करविष्टरायाः॥ ९ ॥
गीर्देवतेति गरुडध्वजसुन्दरीति
शाकम्भरीति शशिशेखरवल्लभेति।
सृष्टिस्थितिप्रलयकेलिषु संस्थितायै
तस्यै नमस्त्रिभुवनैकगुरोस्तरुण्यै॥ १० ॥

अनुकूल पवनसे प्रेरित हो दुष्कर्मरूपी घामको चिरकालके लिये दूर हटाकर विषादमें पड़े हुए मुझ दीनरूपी चातकपोतपर धनरूपी जलधाराकी वृष्टि करे॥ ८॥

विशिष्ट बुद्धिवाले मनुष्य जिनके प्रीतिपात्र होकर उनकी दयादृष्टिके प्रभावसे स्वर्गपदको सहज ही प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं पद्मासना पद्माकी वह विकसित कमल-गर्भके समान कान्तिमती दृष्टि मुझे मनोवांछित पुष्टि प्रदान करे॥ ९॥

जो सृष्टि-लीलाके समय वाग्देवता (ब्रह्मशक्ति)-के रूपमें स्थित होती हैं, पालन-लीला करते समय भगवान् गरुडध्वजकी सुन्दरी पत्नी लक्ष्मी (या वैष्णवी शक्ति)-के रूपमें विराजमान होती हैं तथा प्रलय-लीलाके कालमें शाकम्भरी (भगवती दुर्गा) अथवा चन्द्रशेखरवल्लभा पार्वती (रुद्रशक्ति)-के रूपमें अवस्थित होती हैं, उन त्रिभुवनके एकमात्र गुरु भगवान् नारायणकी नित्ययौवना प्रेयसी श्रीलक्ष्मीजीको नमस्कार है॥ १०॥

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै
रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणार्णवायै।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै
पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै॥ ११॥
नमोऽस्तु नालीकनिभाननायै
नमोऽस्तु दुग्धोदधिजन्मभूत्यै।
नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै
नमोऽस्तु नारायणवल्लभायै॥ १२॥
सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदानविभवानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये॥ १३॥

मातः! शुभ कर्मोंका फल देनेवाली श्रुतिके रूपमें आपको प्रणाम है। रमणीय गुणोंकी सिन्धुरूप रतिके रूपमें आपको नमस्कार है। कमलवनमें निवास करनेवाली शक्तिस्वरूपा लक्ष्मीको नमस्कार है तथा पुरुषोत्तमप्रिया पुष्टिको नमस्कार है॥ ११॥

कमलवदना कमलाको नमस्कार है। क्षीरसिन्धुसम्भूता श्रीदेवीको नमस्कार है। चन्द्रमा और सुधाकी सगी बहिनको नमस्कार है। भगवान् नारायणकी वल्लभाको नमस्कार है॥ १२॥

कमलसदृश नेत्रोंवाली माननीया माँ! आपके चरणोंमें की हुई वन्दना सम्पत्ति प्रदान करनेवाली, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको आनन्द देनेवाली, साम्राज्य देनेमें समर्थ और सारे पापोंको हर लेनेके लिये सर्वथा उद्यत है। वह सदा मुझे ही अवलम्बन करे (मुझे ही आपकी चरणवन्दनाका शुभ अवसर सदा प्राप्त होता रहे।)॥ १३॥

यत्कटाक्षसमुपासनाविधिः
सेवकस्य सकलार्थसम्पदः।
संतनोति वचनाङ्गमानसै-
स्त्वां मुरारिहृदयेश्वरीं भजे॥ १४॥
सरसिजनिलये सरोजहस्ते
धवलतमांशुकगन्धमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम्॥ १५॥
दिग्घस्तिभिः कनककुम्भमुखावसृष्ट-
स्वर्वाहिनीविमलचारुजलप्लुताङ्गीम्।

जिनके कृपाकटाक्षके लिये की हुई उपासना उपासकके लिये सम्पूर्ण मनोरथों और सम्पत्तियोंका विस्तार करती है, श्रीहरिकी हृदयेश्वरी उन्हीं आप लक्ष्मीदेवीका मैं मन, वाणी और शरीरसे भजन करता हूँ॥ १४॥

भगवति हरिप्रिये! तुम कमलवनमें निवास करनेवाली हो, तुम्हारे हाथोंमें लीलाकमल सुशोभित है। तुम अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र, गन्ध और माला आदिसे शोभा पा रही हो। तुम्हारी झाँकी बड़ी मनोरम है। त्रिभुवनका ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली देवि! मुझपर प्रसन्न हो जाओ॥ १५॥

दिग्गजोंद्वारा सुवर्णकलशके मुखसे गिराये गये आकाशगंगाके निर्मल एवं मनोहर जलसे जिनके श्रीअंगोंका अभिषेक (स्नानकार्य)

प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष-
लोकाधिनाथगृहिणीममृताब्धिपुत्रीम् ॥ १६ ॥
कमले कमलाक्षवल्लभे
त्वं करुणापूरतरङ्गितैरपाङ्गैः।
अवलोकय मामकिञ्चनानां
प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ॥ १७ ॥
स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं
त्रयीमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम्।
गुणाधिका गुरुतरभाग्यभागिनो
भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कनकधारास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

सम्पादित होता है, सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर भगवान् विष्णुकी गृहिणी और क्षीरसागरकी पुत्री उन जगज्जननी लक्ष्मीको मैं प्रातःकाल प्रणाम करता हूँ॥ १६ ॥

कमलनयन केशवकी कमनीय कामिनी कमले! मैं अकिंचन (दीनहीन) मनुष्योंमें अग्रगण्य हूँ, अतएव तुम्हारी कृपाका स्वाभाविक पात्र हूँ। तुम उमड़ती हुई करुणाकी बाढ़की तरल तरंगोंके समान कटाक्षोंद्वारा मेरी ओर देखो॥ १७ ॥

जो लोग इन स्तुतियोंद्वारा प्रतिदिन वेदत्रयीस्वरूपा त्रिभुवनजननी भगवती लक्ष्मीकी स्तुति करते हैं, वे इस भूतलपर महान् गुणवान् और अत्यन्त सौभाग्यशाली होते हैं तथा विद्वान् पुरुष भी उनके मनोभावको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं॥ १८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित कनकधारास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

२९—कल्याणवृष्टिस्तोत्रम्*

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभि-

लक्ष्मीस्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभिः ।

सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले

नाकारि किं मनसि भक्तिमतां जनानाम्॥ १ ॥

एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते

त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थगिते च नेत्रे।

सांनिध्यमुद्यदरुणायतसोदरस्य

त्वद्विग्रहस्य सुधया परयाप्लुतस्य॥ २ ॥

अम्ब! अमृतसे परिपूर्ण कल्याणकी वर्षा करनेवाली एवं लक्ष्मीको स्वयं वरण करनेवाली मंगलमयी दीपमालाकी भाँति आपकी सेवाओंने आपके चरणकमलोंमें भक्तिभाव रखनेवाले मनुष्योंके मनमें क्या नहीं कर दिया? अर्थात् उनके समस्त मनोरथोंको पूर्ण कर दिया॥ १ ॥

जननि! मेरी तो बस यही स्पृहा है कि परमोत्कृष्ट सुधासे परिप्लुत तथा उदीयमान अरुणवर्ण सूर्यकी समता करनेवाले आपके अरुण श्रीविग्रहके संनिकट पहुँचकर आपकी वन्दनाओंके समय मेरे नेत्र अश्रुजलसे परिपूर्ण हो जायँ॥ २ ॥

---

* कल्याणवृष्टिस्तोत्र या षोडशीकल्याणस्तोत्र भगवान् शंकराचार्यद्वारा विरचित है। षोडशी श्रीविद्याके मूलमन्त्रके प्रत्येक अक्षरपर आधृत इसमें सोलह श्लोक हैं। मन्त्रज्ञ इसका प्रतिदिन पाठ करें तो उनका परम कल्याण अवश्यम्भावी है। साधकोंके लिये इसका अर्थ भी दिया जा रहा है।

ईशित्वभावकलुषाः कति नाम सन्ति
ब्रह्मादयः प्रतियुगं प्रलयाभिभूताः।
एकः स एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते
यः पादयोस्तव सकृत् प्रणतिं करोति॥ ३॥

लब्ध्वा सकृत् त्रिपुरसुन्दरि तावकीनं
कारुण्यकन्दलितकान्तिभरं कटाक्षम्।
कन्दर्पभावसुभगास्त्वयि भक्तिभाजः
सम्मोहयन्ति तरुणीर्भुवनत्रयेषु॥ ४॥

ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति वेदा
मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे।
यत्संस्मृतौ यमभटादिभयं विहाय
दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपालैः॥ ५॥

माँ! प्रभुत्वभावसे कलुषित ब्रह्मा आदि कितने देवता हो चुके हैं जो प्रत्येक युगमें प्रलयसे अभिभूत (विनष्ट) हो गये हैं, किंतु एक वही व्यक्ति स्थिरसिद्धियुक्त विद्यमान रहता है, जो एक बार आपके चरणोंमें प्रणाम कर लेता है॥ ३॥

त्रिपुरसुन्दरि! आपमें भक्तिभाव रखनेवाले भक्तजन एक बार भी आपके करुणासे अंकुरित सुशोभन कटाक्षको पाकर कामदेवसदृश सौन्दर्यशाली हो जाते हैं और त्रिभुवनमें युवतियोंको सम्मोहित कर लेते हैं॥ ४॥

त्रिकोणमें निवास करनेवाली एवं तीन नेत्रोंसे सुशोभित माता त्रिपुरसुन्दरि! वेद 'ह्रीं'कारको ही आपका नाम बतलाते हैं। वह नाम जिनके संस्मरणमें आ गया, वे भक्तजन यमदूतोंके भयको त्यागकर लोकपालोंके साथ नन्दनवनमें क्रीडा करते हैं॥ ५॥

हन्तुः पुरामधिगलं परिपूर्यमाणः
क्रूरः कथं नु भविता गरलस्य वेगः।
आश्वासनाय किल मातरिदं तवार्धं
देहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य॥ ६॥

सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते
देवि त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयोः प्रणामः।
किं च स्फुरन्मुकुटमुज्ज्वलमातपत्रं
द्वे चामरे च वसुधां महतीं ददाति॥ ७॥

कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु
कारुण्यवारिधिभिरम्ब भवत्कटाक्षैः।
आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथं
त्वय्येव भक्तिभरितं त्वयि दत्तदृष्टिम्॥ ८॥

माता! निरन्तर अमृतसे परिप्लुत होनेके कारण शीतल बने हुए आपके शरीरका यह अर्धभाग जिनके साथ संलग्न था, उन त्रिपुरहन्ता शंकरजीके गलेमें भरा हुआ हलाहल विषका वेग उनके लिये अनिष्टकारक कैसे होता?॥ ६॥

देवि! आपके चरणकमलोंमें किया हुआ प्रणाम सर्वज्ञता और सभामें वाक्-चातुर्य तो उत्पन्न करता ही है, साथ ही उद्भासित मुकुट, श्वेत छत्र, दो चामर और विशाल पृथ्वीका साम्राज्य भी प्रदान करता है॥ ७॥

माँ त्रिपुरसुन्दरि! मैं आपकी ही भक्तिसे परिपूर्ण हूँ और आपकी ओर ही दृष्टि लगाये हुए हूँ, अतः आप मुझ अनाथकी ओर मनोरथोंको पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षसदृश एवं करुणासागरस्वरूप अपने कटाक्षोंसे देख तो लें॥ ८॥

हन्तेतरेष्वपि मनांसि निधाय चान्ये
भक्तिं वहन्ति किल पामरदैवतेषु।
त्वामेव देवि मनसा वचसा स्मरामि
त्वामेव नौमि शरणं जगति त्वमेव॥ ९ ॥
लक्ष्येषु सत्स्वपि तवाक्षिविलोकनाना-
मालोकय त्रिपुरसुन्दरि मां कथंचित्।
नूनं मयापि सदृशं करुणैकपात्रं
जातो जनिष्यति जनो न च जायते च॥ १० ॥
ह्रीं ह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां जनानां
किं नाम दुर्लभमिह त्रिपुराधिवासे।
मालाकिरीटमदवारणमाननीयां-
स्तान् सेवते मधुमती स्वयमेव लक्ष्मीः॥ ११ ॥

देवि! खेद है कि अन्यान्य जन आपके अतिरिक्त अन्य साधारण देवताओंमें भी मन लगाकर उनकी भक्ति करते हैं, किंतु मैं मन और वचनसे आपका ही स्मरण करता हूँ, आपको ही प्रणाम करता हूँ; क्योंकि जगत्में आप ही शरणदात्री हैं॥ ९॥

त्रिपुरसुन्दरि! यद्यपि आपके नेत्रोंके लिये देखनेके बहुत-से लक्ष्य वर्तमान हैं, तथापि किसी प्रकार आप मेरी ओर दृष्टि डाल दें; क्योंकि निश्चय ही मेरे समान करुणाका पात्र न कोई पैदा हुआ है, न हो रहा है और न पैदा होगा॥ १०॥

त्रिपुरमें निवास करनेवाली माँ! 'ह्रीं, ह्रीं'—इस प्रकार (आपके बीजमन्त्रका) प्रतिदिन जप करनेवाले मनुष्योंके लिये इस जगत्में क्या दुर्लभ है? माला, किरीट और उन्मत्त गजराजसे युक्त उन माननीयोंकी तो स्वयं मधुमती लक्ष्मी ही सेवा करती हैं॥ ११॥

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदानकुशलानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरितौघहरोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम्॥ १२॥
कल्पोपसंहरणकल्पितताण्डवस्य
देवस्य खण्डपरशोः परमेश्वरस्य।
पाशाङ्कुशैक्षवशरासनपुष्पबाणा
सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका॥ १३॥
लग्नं सदा भवतु मातरिदं तवार्धं
तेजः परं बहुलकुङ्कुमपङ्कशोणम्।
भास्वत्किरीटममृतांशुकलावतंसं
मध्ये त्रिकोणमुदितं परमामृतार्द्रम्॥ १४॥

कमलनयनि! आपकी वन्दनाएँ सम्पत्ति प्रदान करनेवाली, समस्त इन्द्रियोंको आनन्दित करनेवाली, साम्राज्य प्रदान करनेमें कुशल और पापसमूहको नष्ट करनेमें उद्यत रहनेवाली हैं, मातः! वे निरन्तर मुझे ही प्राप्त हों, दूसरेको नहीं॥ १२॥

कल्पके उपसंहारके समय ताण्डव नृत्य करनेवाले खण्डपरशु देवाधिदेव परमेश्वर शंकरके लिये पाश, अंकुश, ईखका धनुष और पुष्पबाणको धारण करनेवाली आपकी वह एकमात्र मूर्ति साक्षीरूपसे सुशोभित होती है॥ १३॥

मातः! आपका यह अर्धांग जो परम तेजोमय, अत्यधिक कुंकुमपंकसे युक्त होनेके कारण अरुण, चमकदार किरीटसे सुशोभित, चन्द्रकलासे विभूषित, अमृतसे परमार्द्र और त्रिकोणके मध्यमें प्रकट है, सदा शिवजीसे संलग्न रहे॥ १४॥

ह्लींकारमेव तव धाम तदेव रूपं
त्वन्नाम सुन्दरि सरोजनिवासमूले।
त्वत्तेजसा परिणतं वियदादिभूतं
सौख्यं तनोति सरसीरुहसम्भवादेः॥ १५॥

ह्लींकारत्रयसम्पुटेन महता मन्त्रेण संदीपितं
स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित्।
तस्य क्षोणिभुजो भवन्ति वशगा लक्ष्मीश्चिरस्थायिनी
वाणी निर्मलसूक्तिभारभरिता जागर्ति दीर्घं वयः॥ १६॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कल्याणवृष्टिस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

कमलपर निवास करनेवाली सुन्दरि! 'ह्लीं' कार ही आपका धाम है, वही आपका रूप है, वही आपका नाम है और वही आपके तेजसे उत्पन्न हुए आकाशादिसे क्रमशः परिणत—जगत्का आदिकारण है, जो ब्रह्मा, विष्णु आदिकी रचित-पालित वस्तु बनकर परम सुख देता है॥ १५॥

मातः! जो मन्त्रज्ञ तीन 'ह्लीं' कारसे सम्पुटित महान् मन्त्रसे संदीपित इस स्तोत्रका प्रतिदिन आपके समक्ष जप करता है, राजालोग उसके वशीभूत हो जाते हैं, उसकी लक्ष्मी चिरस्थायिनी हो जाती है, उसकी वाणी निर्मल सूक्तियोंसे परिपूर्ण हो जाती है और वह दीर्घायु हो जाता है॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित कल्याणवृष्टिस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

३०—श्रीलक्ष्मीस्तोत्रम्

सिंहासनगतः शक्रस्सम्प्राप्य त्रिदिवं पुनः।
देवराज्ये स्थितो देवीं तुष्टावाब्जकरां ततः॥ १॥

इन्द्र उवाच

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्जसम्भवाम्।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम्॥ २॥
पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम्॥ ३॥
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी।
सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती॥ ४॥

इन्द्रने स्वर्गलोकमें जाकर फिरसे देवराज्यपर अधिकार पाया और राजसिंहासनपर आरूढ़ हो पद्महस्ता श्रीलक्ष्मीजीकी इस प्रकार स्तुति की—॥ १॥

इन्द्र बोले—सम्पूर्ण लोकोंकी जननी, विकसित कमलके सदृश नेत्रोंवाली, भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान कमलोद्भवा श्रीलक्ष्मीदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २॥

कमल ही जिनका निवासस्थान है, कमल ही जिनके करकमलोंमें सुशोभित है तथा कमलदलके समान ही जिनके नेत्र हैं, उन कमलमुखी कमलनाभप्रिया श्रीकमलादेवीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ३॥

हे देवि! तुम सिद्धि हो, स्वधा हो, स्वाहा हो, सुधा हो और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली हो तथा तुम ही सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, विभूति, मेधा, श्रद्धा और सरस्वती हो॥ ४॥

यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने।
आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी॥ ५॥
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च।
सौम्यासौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैतद्देवि पूरितम्॥ ६॥
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः॥ ७॥
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम्।
विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम्॥ ८॥
दाराः पुत्रास्तथागारसुहृद्धान्यधनादिकम्।
भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम्॥ ९॥

हे शोभने! यज्ञविद्या (कर्मकाण्ड), महाविद्या (उपासना) और गुह्यविद्या (इन्द्रजाल) तुम्हीं हो तथा हे देवि! तुम्हीं मुक्ति-फल-दायिनी आत्मविद्या हो॥ ५॥

हे देवि! आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), वेदत्रयी, वार्ता (शिल्प-वाणिज्यादि) और दण्डनीति (राजनीति) भी तुम्हीं हो। तुम्हींने अपने शान्त और उग्ररूपोंसे इस समस्त संसारको व्याप्त कर रखा है॥ ६॥

हे देवि! तुम्हारे बिना और ऐसी कौन स्त्री है जो देवदेव भगवान् गदाधरके योगिजनचिन्तित सर्वयज्ञमय शरीरका आश्रय पा सके॥ ७॥

हे देवि! तुम्हारे छोड़ देनेपर सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्टप्राय हो गयी थी, अब तुम्हींने उसे पुनः जीवनदान दिया है॥ ८॥

हे महाभागे! स्त्री, पुत्र, गृह, धन, धान्य तथा सुहृद्—ये सब सदा आपहीके दृष्टिपातसे मनुष्योंको मिलते हैं॥ ९॥

शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम्।
देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम्॥ १०॥
त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम्॥ ११॥
मा नः कोशं तथा गोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम्।
मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि॥ १२॥
मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गं मा पशून्मा विभूषणम्।
त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये॥ १३॥
सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः।
त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले॥ १४॥

हे देवि! तुम्हारी कृपादृष्टिके पात्र पुरुषोंके लिये शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रुपक्षका नाश और सुख आदि कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं॥ १०॥

तुम सम्पूर्ण लोकोंकी माता हो और देवदेव भगवान् हरि पिता हैं। हे मातः! तुमसे और श्रीविष्णुभगवान्‌से यह सकल चराचर जगत् व्याप्त है॥ ११॥

हे सर्वपावनि मातेश्वरि! हमारे कोश (खजाना), गोष्ठ (पशुशाला), गृह, भोग-सामग्री, शरीर और स्त्री आदिको आप कभी न त्यागें अर्थात् इनमें भरपूर रहें॥ १२॥

अयि विष्णुवक्षःस्थलनिवासिनि! हमारे पुत्र, सुहृद्, पशु और भूषण आदिको आप कभी न छोड़ें॥ १३॥

हे अमले! जिन मनुष्योंको तुम छोड़ देती हो उन्हें सत्त्व (मानसिक बल), सत्य, शौच और शील आदि गुण भी शीघ्र ही त्याग देते हैं॥ १४॥

त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि॥ १५॥
स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः॥ १६॥
सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः।
पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे॥ १७॥
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणाञ्जिह्वापि वेधसः।
प्रसीद देवि पद्माक्षि मास्मांस्त्याक्षीः कदाचन॥ १८॥

श्रीपराशर उवाच

एवं श्रीः संस्तुता सम्यक् प्राह देवी शतक्रतुम्।
शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वभूतस्थिता द्विज॥ १९॥

तुम्हारी कृपादृष्टि होनेपर तो गुणहीन पुरुष भी शीघ्र ही शील आदि सम्पूर्ण गुण और कुलीनता तथा ऐश्वर्य आदिसे सम्पन्न हो जाते हैं॥ १५॥

हे देवि! जिसपर तुम्हारी कृपादृष्टि है वही प्रशंसनीय है, वही गुणी है, वही धन्यभाग्य है, वही कुलीन और बुद्धिमान् है तथा वही शूरवीर और पराक्रमी है॥ १६॥

हे विष्णुप्रिये! हे जगज्जननि! तुम जिससे विमुख हो, उसके तो शील आदि सभी गुण तुरंत अवगुणरूप हो जाते हैं॥ १७॥

हे देवि! तुम्हारे गुणोंका वर्णन करनेमें तो श्रीब्रह्माजीकी रसना भी समर्थ नहीं है। [फिर मैं क्या कर सकता हूँ?] अतः हे कमलनयने! अब मुझपर प्रसन्न होओ और मुझे कभी न छोड़ो॥ १८॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! इस प्रकार सम्यक् स्तुति किये जानेपर सर्वभूतस्थिता श्रीलक्ष्मीजी सब देवताओंके सुनते हुए इन्द्रसे इस प्रकार बोलीं—॥ १९॥

श्रीरुवाच

परितुष्टास्मि देवेश स्तोत्रेणानेन ते हरे।
वरं वृणीष्व यस्त्विष्टो वरदाहं तवागता॥ २०॥

इन्द्र उवाच

वरदा यदि मे देवि वरार्हो यदि वाप्यहम्।
त्रैलोक्यं न त्वया त्याज्यमेष मेऽस्तु वरः परः॥ २१॥
स्तोत्रेण यस्तथैतेन त्वां स्तोष्यत्यब्धिसम्भवे।
स त्वया न परित्याज्यो द्वितीयोऽस्तु वरो मम॥ २२॥

श्रीरुवाच

त्रैलोक्यं त्रिदशश्रेष्ठ न सन्त्यक्ष्यामि वासव।
दत्तो वरो मया यस्ते स्तोत्राराधनतुष्टया॥ २३॥

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—हे देवेश्वर इन्द्र! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे अति प्रसन्न हूँ, तुमको जो अभीष्ट हो, वही वर माँग लो। मैं तुम्हें वर देनेके लिये ही यहाँ आयी हूँ॥ २०॥

इन्द्र बोले—हे देवि! यदि आप वर देना चाहती हैं और मैं भी यदि वर पानेयोग्य हूँ तो मुझको पहला वर तो यही दीजिये कि आप इस त्रिलोकीका कभी त्याग न करें॥ २१॥

और हे समुद्रसम्भवे! दूसरा वर मुझे यह दीजिये कि जो कोई आपकी इस स्तोत्रसे स्तुति करे, उसे आप कभी न त्यागें॥ २२॥

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—हे देवश्रेष्ठ इन्द्र! मैं अब इस त्रिलोकीको कभी न छोड़ूँगी। तुम्हारे स्तोत्रसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें यह वर देती हूँ॥ २३॥

यश्च सायं तथा प्रातः स्तोत्रेणानेन मानवः।
मां स्तोष्यति न तस्याहं भविष्यामि पराङ्मुखी॥ २४॥

॥ इति श्रीविष्णुमहापुराणे श्रीलक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

३१—महालक्ष्म्यष्टकम्

इन्द्र उवाच

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते।
शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ १॥
नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयङ्करि।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ २॥
सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ३॥

जो कोई मनुष्य प्रातःकाल और सायंकालके समय इस स्तोत्रसे मेरी स्तुति करेगा, उससे भी मैं कभी विमुख न होऊँगी॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीविष्णुमहापुराणमें श्रीलक्ष्मीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

इन्द्र बोले—श्रीपीठपर स्थित और देवताओंसे पूजित होनेवाली हे महामाये! तुम्हें नमस्कार है। हाथमें शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाली हे महालक्ष्मि! तुम्हें प्रणाम है॥ १॥

गरुड़पर आरूढ़ हो कोलासुरको भय देनेवाली और समस्त पापोंको हरनेवाली हे भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें प्रणाम है॥ २॥

सब कुछ जाननेवाली, सबको वर देनेवाली, समस्त दुष्टोंको भय देनेवाली और सबके दुःखोंको दूर करनेवाली हे देवि महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है॥ ३॥

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ४॥
आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्तिमहेश्वरि।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ५॥
स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्तिमहोदरे।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ६॥
पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ७॥
श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभूषिते।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ८॥

सिद्धि, बुद्धि, भोग और मोक्ष देनेवाली हे मन्त्रपूत भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें सदा प्रणाम है॥ ४॥

हे देवि! हे आदि-अन्तरहित आदिशक्ते! हे महेश्वरि! हे योगसे प्रकट हुई भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है॥ ५॥

हे देवि! तुम स्थूल, सूक्ष्म एवं महारौद्ररूपिणी हो, महाशक्ति हो, महोदरा हो और बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली हो। हे देवि महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है॥ ६॥

हे कमलके आसनपर विराजमान परब्रह्मस्वरूपिणी देवि! हे परमेश्वरि! हे जगदम्ब! हे महालक्ष्मि! तुम्हें मेरा प्रणाम है॥ ७॥

हे देवि! तुम श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली और नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषिता हो। सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त एवं अखिल लोकको जन्म देनेवाली हो। हे महालक्ष्मि! तुम्हें मेरा प्रणाम है॥ ८॥

महालक्ष्म्यष्टकं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिमान्नरः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यं प्राप्नोति सर्वदा॥ ९ ॥
एककाले पठेन्नित्यं महापापविनाशनम्।
द्विकालं यः पठेन्नित्यं धनधान्यसमन्वितः॥ १० ॥
त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम्।
महालक्ष्मीर्भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा॥ ११ ॥

॥ इति इन्द्रकृतं महालक्ष्म्यष्टकं सम्पूर्णम्॥

३२—महालक्ष्मीस्तुतिः

अगस्तिरुवाच

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि
श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि विश्वमातः।

जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर इस महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्रका सदा पाठ करता है, वह सारी सिद्धियों और राज्यवैभवको प्राप्त कर सकता है॥ ९॥

जो प्रतिदिन एक समय पाठ करता है, उसके बड़े-बड़े पापोंका नाश हो जाता है। जो प्रतिदिन दो समय पाठ करता है, वह धन-धान्यसे सम्पन्न होता है॥ १०॥

जो प्रतिदिन तीनों कालोंमें पाठ करता है, उसके महान् शत्रुओंका नाश हो जाता है और उसके ऊपर कल्याणकारिणी वरदायिनी महालक्ष्मी सदा ही प्रसन्न होती हैं॥ ११॥

॥ इस प्रकार इन्द्रकृत महालक्ष्म्यष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

अगस्त्यजी बोले—कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली मातः कमले! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप भगवान् विष्णुके हृदयकमलमें

क्षीरोदजे कमलकोमलगर्भगौरि
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥ १॥
त्वं श्रीरुपेन्द्रसदने मदनैकमात-
र्ज्योत्स्नासि चन्द्रमसि चन्द्रमनोहरास्ये।
सूर्ये प्रभासि च जगत्त्रितये प्रभासि
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥ २॥
त्वं जातवेदसि सदा दहनात्मशक्ति-
र्वेधास्त्वया जगदिदं विविधं विदध्यात्।
विश्वम्भरोऽपि बिभृयादखिलं भवत्या
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥ ३॥

निवास करनेवाली तथा सम्पूर्ण विश्वकी जननी हैं। कमलके कोमल गर्भके सदृश गौर वर्णवाली क्षीरसागरकी पुत्री महालक्ष्मि! आप अपनी शरणमें आये हुए प्रणतजनोंका पालन करनेवाली हैं। आप सदा मुझपर प्रसन्न हों॥ १॥

मदन (प्रद्युम्न)-की एकमात्र जननी रुक्मिणीरूपधारिणी मातः! आप भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें 'श्री' नामसे प्रसिद्ध हैं। चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली देवि! आप ही चन्द्रमामें चाँदनी हैं, सूर्यमें प्रभा हैं और तीनों लोकोंमें आप ही प्रभासित होती हैं। प्रणतजनोंको आश्रय देनेवाली माता लक्ष्मि! आप सदा मुझपर प्रसन्न हों॥ २॥

आप ही अग्निमें दाहिका शक्ति हैं। ब्रह्माजी आपकी ही सहायतासे विविध प्रकारके जगत्की रचना करते हैं। सम्पूर्ण विश्वका भरण-पोषण करनेवाले भगवान् विष्णु भी आपके ही भरोसे सबका पालन करते हैं। शरणमें आकर चरणमें मस्तक झुकानेवाले पुरुषोंकी निरन्तर रक्षा करनेवाली माता महालक्ष्मि! आप मुझपर प्रसन्न हों॥ ३॥

त्वत्त्यक्तमेतदमले हरते हरोऽपि
त्वं पासि हंसि विदधासि परावरासि।
ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥ ४॥
शूरः स एव स गुणी स बुधः स धन्यो
मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः।
एकः शुचिः स हि पुमान् सकलेऽपि लोके
यत्रापतेत्तव शुभे करुणाकटाक्षः॥ ५॥
यस्मिन्वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे
स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽन्ने।
रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धरायां
सश्रीकमेव सकले तदिहास्ति नान्यत्॥ ६॥

निर्मल स्वरूपवाली देवि! जिनको आपने त्याग दिया है, उन्हींका भगवान् रुद्र संहार करते हैं। वास्तवमें आप ही जगत्का पालन, संहार और सृष्टि करनेवाली हैं। आप ही कार्य-कारणरूप जगत् हैं। निर्मलस्वरूपा लक्ष्मि! आपको प्राप्त करके ही भगवान् श्रीहरि सबके पूज्य बन गये। माँ! आप प्रणतजनोंका सदैव पालन करनेवाली हैं, मुझपर प्रसन्न हों॥ ४॥

शुभे! जिस पुरुषपर आपका करुणापूर्ण कटाक्षपात होता है, संसारमें एकमात्र वही शूरवीर, गुणवान्, विद्वान्, धन्य, मान्य, कुलीन, शीलवान्, अनेक कलाओंका ज्ञाता और परम पवित्र माना जाता है॥ ५॥

देवि! आप जिस किसी पुरुष, हाथी, घोड़ा, स्त्रैण, तृण, सरोवर, देवमन्दिर, गृह, अन्न, रत्न, पशु-पक्षी, शय्या अथवा भूमिमें क्षणभर भी निवास करती हैं, समस्त संसारमें केवल वही शोभासम्पन्न होता है, दूसरा नहीं॥ ६॥

त्वत्स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत
त्वत्त्यक्तमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मि।
त्वन्नाम यत्र च सुमङ्गलमेव तत्र
श्रीविष्णुपत्नि कमले कमलालयेऽपि॥ ७ ॥
लक्ष्मीं श्रियं च कमलां कमलालयां च
पद्मां रमां नलिनयुग्मकरां च मां च।
क्षीरोदजाममृतकुम्भकरामिरां च
विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क्व दुःखम्॥ ८ ॥
ये पठिष्यन्ति च स्तोत्रं त्वद्भक्त्या मत्कृतं सदा।
तेषां कदाचित् संतापो माऽस्तु माऽस्तु दरिद्रता॥ ९ ॥
माऽस्तु चेष्टवियोगश्च माऽस्तु सम्पत्तिसंक्षयः।
सर्वत्र विजयश्चाऽस्तु विच्छेदो माऽस्तु सन्ततेः॥ १० ॥

हे श्रीविष्णुपत्नि! हे कमले! हे कमलालये! हे माता लक्ष्मि! आपने जिसका स्पर्श किया है, वह पवित्र हो जाता है और आपने जिसे त्याग दिया है, वही सब इस जगत्में अपवित्र है। जहाँ आपका नाम है, वहीं उत्तम मंगल है॥ ७॥

जो लक्ष्मी, श्री, कमला, कमलालया, पद्मा, रमा, नलिनयुग्मकरा (दोनों हाथोंमें कमल धारण करनेवाली), मा, क्षीरोदजा, अमृतकुम्भकरा (हाथोंमें अमृतका कलश धारण करनेवाली), इरा और विष्णुप्रिया—इन नामोंका सदा जप करते हैं, उनके लिये कहीं दुःख नहीं है॥ ८॥

[इस स्तुतिसे प्रसन्न हो देवीके द्वारा वर माँगनेके लिये कहनेपर अगस्ति मुनि बोले—हे देवि!] मेरे द्वारा की गयी इस स्तुतिका जो भक्तिपूर्वक पाठ करेंगे, उन्हें कभी संताप न हो और न कभी दरिद्रता हो, अपने इष्टसे कभी उनका वियोग न हो और न कभी धनका नाश ही हो। उन्हें सर्वत्र विजय प्राप्त हो और उनकी संतानका कभी उच्छेद न हो॥ ९-१०॥

श्रीरुवाच

एवमस्तु मुने सर्वं यत्त्वया परिभाषितम्।
एतत् स्तोत्रस्य पठनं मम सांनिध्यकारणम्॥ ११॥

॥ इति श्रीस्कन्दमहापुराणे काशीखण्डे अगस्तिकृता महालक्ष्मीस्तुतिः सम्पूर्णा॥

३३—श्रीसूक्तम्

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १॥
तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥ २॥

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—हे मुने! जैसा आपने कहा है, वैसा ही होगा। इस स्तोत्रका पाठ मेरी संनिधि प्राप्त करानेवाला है॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके काशीखण्डमें अगस्तिकृत महालक्ष्मीस्तुति सम्पूर्ण हुई॥

हे जातवेदा (सर्वज्ञ) अग्निदेव! सुवर्णके-से रंगवाली, किंचित् हरितवर्णविशिष्टा, सोने और चाँदीके हार पहननेवाली, चन्द्रवत् प्रसन्नकान्ति, स्वर्णमयी लक्ष्मीदेवीको मेरे लिये आवाहन करो॥ १॥

अग्ने! उन लक्ष्मीदेवीको, जिनका कभी विनाश नहीं होता तथा जिनके आगमनसे मैं सोना, गौ, घोड़े तथा पुत्रादिको प्राप्त करूँगा, मेरे लिये आवाहन करो॥ २॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥ ३॥
कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां
ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां
तामिहोप ह्वये श्रियम्॥ ४॥
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये
अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥ ५॥

जिन देवीके आगे घोड़े तथा उनके पीछे रथ रहते हैं तथा जो हस्तिनादको सुनकर प्रमुदित होती हैं, उन्हीं श्रीदेवीका मैं आवाहन करता हूँ; लक्ष्मीदेवी मुझे प्राप्त हों॥ ३॥

जो साक्षात् ब्रह्मरूपा, मन्द-मन्द मुसकरानेवाली, सोनेके आवरणसे आवृत, दयार्द्र, तेजोमयी, पूर्णकामा, भक्तानुग्रहकारिणी, कमलके आसनपर विराजमान तथा पद्मवर्णा हैं, उन लक्ष्मीदेवीका मैं यहाँ आवाहन करता हूँ॥ ४॥

मैं चन्द्रके समान शुभ्र कान्तिवाली, सुन्दर द्युतिशालिनी, यशसे दीप्तिमती, स्वर्गलोकमें देवगणोंके द्वारा पूजिता, उदारशीला, पद्महस्ता लक्ष्मीदेवीकी शरण ग्रहण करता हूँ। मेरा दारिद्र्य दूर हो जाय। मैं आपको शरण्यके रूपमें वरण करता हूँ॥ ५॥

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो
वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु
या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥ ६॥
उपैतु मां देवसखः
कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन्
कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥ ७॥
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥ ८॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥ ९॥

हे सूर्यके समान प्रकाशस्वरूपे! तुम्हारे ही तपसे वृक्षोंमें श्रेष्ठ मंगलमय बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके फल हमारे बाहरी और भीतरी दारिद्र्यको दूर करें॥ ६॥

देवि! देवसखा कुबेर और उनके मित्र मणिभद्र तथा दक्ष-प्रजापतिकी कन्या कीर्ति मुझे प्राप्त हों अर्थात् मुझे धन और यशकी प्राप्ति हो। मैं इस राष्ट्रमें—देशमें उत्पन्न हुआ हूँ, मुझे कीर्ति और ऋद्धि प्रदान करें॥ ७॥

लक्ष्मीकी ज्येष्ठ बहिन अलक्ष्मी (दरिद्रताकी अधिष्ठात्री देवी)-का, जो क्षुधा और पिपासासे मलिन—क्षीणकाय रहती हैं, मैं नाश चाहता हूँ। देवि! मेरे घरसे सब प्रकारके दारिद्र्य और अमंगलको दूर करो॥ ८॥

जो दुराधर्षा तथा नित्यपुष्टा हैं तथा गोबरसे (पशुओंसे) युक्त गन्धगुणवती पृथिवी ही जिनका स्वरूप है, सब भूतोंकी स्वामिनी उन लक्ष्मीदेवीका मैं यहाँ—अपने घरमें आवाहन करता हूँ॥ ९॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥ १०॥
कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥ ११॥
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥ १२॥
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरणमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १३॥
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरणमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १४॥

मनकी कामनाओं और संकल्पकी सिद्धि एवं वाणीकी सत्यता मुझे प्राप्त हो; गौ आदि पशुओं एवं विभिन्न अन्नों—भोग्य पदार्थोंके रूपमें तथा यशके रूपमें श्रीदेवी हमारे यहाँ आगमन करें॥ १०॥

लक्ष्मीके पुत्र कर्दमकी हम संतान हैं। कर्दम ऋषि! आप हमारे यहाँ उत्पन्न हों तथा पद्मोंकी माला धारण करनेवाली माता लक्ष्मीदेवीको हमारे कुलमें स्थापित करें॥ ११॥

जल स्निग्ध पदार्थोंकी सृष्टि करे। लक्ष्मीपुत्र चिक्लीत! आप भी मेरे घरमें वास करें और माता लक्ष्मीदेवीका मेरे कुलमें निवास करायें॥ १२॥

अग्ने! आर्द्रस्वभावा, कमलहस्ता, पुष्टिरूपा, पीतवर्णा, पद्मोंकी माला धारण करनेवाली, चन्द्रमाके समान शुभ्र कान्तिसे युक्त, स्वर्णमयी लक्ष्मीदेवीका मेरे यहाँ आवाहन करें॥ १३॥

अग्ने! जो दुष्टोंका निग्रह करनेवाली होनेपर भी कोमल स्वभावकी हैं, जो मंगलदायिनी, अवलम्बन प्रदान करनेवाली यष्टिरूपा, सुन्दर वर्णवाली, सुवर्णमालाधारिणी, सूर्यस्वरूपा तथा हिरण्यमयी हैं, उन लक्ष्मीदेवीका मेरे लिये आवाहन करें॥ १४॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥ १५॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्॥ १६॥
पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।
विश्वप्रिये विष्णुमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सं नि धत्स्व॥ १७॥
पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षि पद्मसम्भवे।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम्॥ १८॥
अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे॥ १९॥

अग्ने! कभी नष्ट न होनेवाली उन लक्ष्मीदेवीका मेरे लिये आवाहन करें, जिनके आगमनसे बहुत-सा धन, गौएँ, दासियाँ, अश्व और पुत्रादिको हम प्राप्त करें॥ १५॥

जिसे लक्ष्मीकी कामना हो, वह प्रतिदिन पवित्र और संयमशील होकर अग्निमें घीकी आहुतियाँ दे तथा इन पंद्रह ऋचाओंवाले श्रीसूक्तका निरन्तर पाठ करे॥ १६॥

कमल-सदृश मुखवाली! कमल-दलपर अपने चरणकमल रखनेवाली! कमलमें प्रीति रखनेवाली! कमल-दलके समान विशाल नेत्रोंवाली! समग्र संसारके लिये प्रिय! भगवान् विष्णुके मनके अनुकूल आचरण करनेवाली! आप अपने चरणकमलको मेरे हृदयमें स्थापित करें॥ १७॥

कमलके समान मुखमण्डलवाली! कमलके समान ऊरुप्रदेशवाली! कमल-सदृश नेत्रोंवाली! कमलसे आविर्भूत होनेवाली! पद्माक्षि! आप उसी प्रकार मेरा पालन करें, जिससे मुझे सुख प्राप्त हो॥ १८॥

अश्वदायिनी, गोदायिनी, धनदायिनी, महाधनस्वरूपिणी हे देवि! मेरे पास [सदा] धन रहे, आप मुझे सभी अभिलषित वस्तुएँ प्रदान करें॥ १९॥

पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वाश्वतरी रथम्।
प्रजानां भवसि माता आयुष्मन्तं करोतु मे॥ २०॥
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणो धनमश्विना॥ २१॥
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः॥ २२॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्त्या श्रीसूक्तजापिनाम्॥ २३॥
सरसिजनिलये सरोजहस्ते
धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ।

आप प्राणियोंकी माता हैं। मेरे पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, हाथी, घोड़े, खच्चर तथा रथको दीर्घ आयुसे सम्पन्न करें॥ २०॥

अग्नि, वायु, सूर्य, वसुगण, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण तथा अश्विनीकुमार—ये सब वैभवस्वरूप हैं॥ २१॥

हे गरुड! आप सोमपान करें। वृत्रासुरके विनाशक इन्द्र सोमपान करें। वे गरुड तथा इन्द्र धनवान् सोमपान करनेकी इच्छावालेके सोमको मुझ सोमपानकी अभिलाषावालेको प्रदान करें॥ २२॥

भक्तिपूर्वक श्रीसूक्तका जप करनेवाले, पुण्यशाली लोगोंको न क्रोध होता है, न ईर्ष्या होती है, न लोभ ग्रसित कर सकता है और न उनकी बुद्धि दूषित ही होती है॥ २३॥

कमलवासिनी, हाथमें कमल धारण करनेवाली, अत्यन्त धवल

भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरि प्र सीद मह्यम्॥ २४॥
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम्॥ २५॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मीः प्र चोदयात्॥ २६॥
आनन्दः कर्दमः श्रीदश्चिक्लीत इति विश्रुताः।
ऋषयः श्रियः पुत्राश्च श्रीर्देवीर्देवता मताः॥ २७॥
ऋणरोगादिदारिद्र्यपापक्षुदपमृत्यवः।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा॥ २८॥

वस्त्र, गन्धानुलेप तथा पुष्पहारसे सुशोभित होनेवाली, भगवान् विष्णुकी प्रिया लावण्यमयी तथा त्रिलोकीको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हे भगवति! मुझपर प्रसन्न होइये॥ २४॥

भगवान् विष्णुकी भार्या, क्षमास्वरूपिणी, माधवी, माधवप्रिया, प्रियसखी, अच्युतवल्लभा, भूदेवी भगवती लक्ष्मीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २५॥

हम विष्णुपत्नी महालक्ष्मीको जानते हैं तथा उनका ध्यान करते हैं। वे लक्ष्मीजी [सन्मार्गपर चलनेहेतु] हमें प्रेरणा प्रदान करें॥ २६॥

पूर्व कल्पमें जो आनन्द, कर्दम, श्रीद और चिक्लीत नामक विख्यात चार ऋषि हुए थे। उसी नामसे दूसरे कल्पमें भी वे ही सब लक्ष्मीके पुत्र हुए; बादमें उन्हीं पुत्रोंसे महालक्ष्मी अतिप्रकाशमान शरीरवाली हुईं, उन्हीं महालक्ष्मीसे देवता भी अनुगृहीत हुए॥ २७॥

ऋण, रोग, दरिद्रता, पाप, क्षुधा, अपमृत्यु, भय, शोक तथा मानसिक ताप आदि—ये सभी मेरी बाधाएँ सदाके लिये नष्ट हो जायँ॥ २८॥

श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छोभमानं महीयते।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः॥ २९॥

॥ इति ऋक्परिशिष्टोक्तं श्रीसूक्तं सम्पूर्णम्॥

३४—लक्ष्मीस्तोत्रम्

इन्द्र उवाच

ॐ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः।
कृष्णप्रियायै सारायै पद्मायै च नमो नमः॥ १॥
पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः।
पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः॥ २॥

भगवती महालक्ष्मी [मानवके लिये] ओज, आयुष्य, आरोग्य, धन-धान्य, पशु, अनेक पुत्रोंकी प्राप्ति तथा सौ वर्षके दीर्घ जीवनका विधान करें और मानव इनसे मण्डित होकर प्रतिष्ठा प्राप्त करे॥ २९॥

॥ इस प्रकार ऋक्परिशिष्टमें कथित श्रीसूक्त सम्पूर्ण हुआ॥

देवराज इन्द्र बोले—भगवती कमलवासिनीको नमस्कार है। देवी नारायणीको बार-बार नमस्कार है। संसारकी सारभूता कृष्णप्रिया भगवती पद्माको अनेकशः नमस्कार है॥ १॥

कमलरत्नके समान नेत्रवाली कमलमुखी भगवती महालक्ष्मीको नमस्कार है। पद्मासना, पद्मिनी एवं वैष्णवी नामसे प्रसिद्ध भगवती महालक्ष्मीको बार-बार नमस्कार है॥ २॥

सर्वसम्पत्स्वरूपायै सर्वदात्र्यै नमो नमः।
सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः॥ ३॥
हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः।
कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः॥ ४॥
कृष्णशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने।
सम्पत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः॥ ५॥
शस्याधिष्ठातृदेव्यै च शस्यायै च नमो नमः।
नमो बुद्धिस्वरूपायै बुद्धिदायै नमो नमः॥ ६॥
वैकुण्ठे या महालक्ष्मीर्लक्ष्मीः क्षीरोदसागरे।
स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये॥ ७॥

सर्वसम्पत्स्वरूपिणी सर्वदात्री देवीको नमस्कार है। सुखदायिनी, मोक्षदायिनी और सिद्धिदायिनी देवीको बारम्बार नमस्कार है॥ ३॥

भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाली तथा हर्ष प्रदान करनेमें परम कुशल देवीको बार-बार नमस्कार है। भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर विराजमान एवं उनकी हृदयेश्वरी देवीको बारम्बार प्रणाम है॥ ४॥

रत्नपद्मे! शोभने! तुम श्रीकृष्णकी शोभास्वरूपा हो, सम्पूर्ण सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी एवं महादेवी हो; तुम्हें मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ॥ ५॥

शस्यकी अधिष्ठात्री देवी एवं शस्यस्वरूपा हो, तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। बुद्धिस्वरूपा एवं बुद्धिप्रदा भगवतीके लिये अनेकशः प्रणाम है॥ ६॥

देवि! तुम वैकुण्ठमें महालक्ष्मी, क्षीरसमुद्रमें लक्ष्मी, राजाओंके

गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता।
सुरभी सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी॥ ८ ॥
अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालये।
स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता॥ ९ ॥
त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा॥ १० ॥
क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा च शुभानना।
परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा॥ ११ ॥
यया विना जगत् सर्वं भस्मीभूतमसारकम्।
जीवन्मृतं च विश्वं च शवतुल्यं यया विना॥ १२ ॥

भवनमें राजलक्ष्मी, इन्द्रके स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, गृहस्थोंके घरमें गृहलक्ष्मी, प्रत्येक घरमें गृहदेवता, गोमाता सुरभि और यज्ञकी पत्नी दक्षिणाके रूपमें विराजमान रहती हो॥ ७-८॥

तुम देवताओंकी माता अदिति हो। कमलालयवासिनी कमला भी तुम्हीं हो। हव्य प्रदान करते समय 'स्वाहा' और कव्य प्रदान करनेके अवसरपर 'स्वधा' का जो उच्चारण होता है, वह तुम्हारा ही नाम है॥ ९॥

सबको धारण करनेवाली विष्णुस्वरूपा पृथ्वी तुम्हीं हो। भगवान् नारायणकी उपासनामें सदा तत्पर रहनेवाली देवि! तुम शुद्ध सत्त्वस्वरूपा हो॥ १०॥

तुममें क्रोध और हिंसाके लिये किंचिन्मात्र भी स्थान नहीं है। तुम्हें वरदा, शारदा, शुभा, परमार्थदा एवं हरिदास्यप्रदा कहते हैं॥ ११॥

तुम्हारे बिना सारा जगत् भस्मीभूत एवं निःसार है; जीते-जी ही मृतक है, शवके तुल्य है॥ १२॥

सर्वेषां च परा त्वं हि सर्वबान्धवरूपिणी।
यया विना न सम्भाष्यो बान्धवैर्बान्धवः सदा॥ १३॥
त्वया हीनो बन्धुहीनस्त्वया युक्तः सबान्धवः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी॥ १४॥
यथा माता स्तनन्धानां शिशूनां शैशवे सदा।
तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वरूपतः॥ १५॥
मातृहीनः स्तनत्यक्तः स चेज्जीवति दैवतः।
त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्॥ १६॥
सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके।
वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि॥ १७॥

तुम सम्पूर्ण प्राणियोंकी श्रेष्ठ माता हो। सबके बान्धवरूपमें तुम्हारा ही पधारना हुआ है। तुम्हारे बिना भाई भी भाई-बन्धुओंके लिये बात करनेयोग्य भी नहीं रहता है॥ १३॥

जो तुमसे हीन है, वह बन्धुजनोंसे हीन है तथा जो तुमसे युक्त है, वह बन्धुजनोंसे भी युक्त है। तुम्हारी ही कृपासे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं॥ १४॥

जिस प्रकार बचपनमें दुधमुँहे बच्चोंके लिये माता है, वैसे ही तुम अखिल जगत्की जननी होकर सबकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण किया करती हो॥ १५॥

स्तनपायी बालक माताके न रहनेपर भाग्यवश जी भी सकता है; परंतु तुम्हारे बिना कोई भी नहीं जी सकता। यह बिलकुल निश्चित है॥ १६॥

हे अम्बिके! सदा प्रसन्न रहना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। अतः मुझपर प्रसन्न हो जाओ। सनातनी! मेरा राज्य शत्रुओंके हाथमें चला गया है, तुम्हारी कृपासे वह मुझे पुनः प्राप्त हो जाय॥ १७॥

वयं यावत् त्वया हीना बन्धुहीनाश्च भिक्षुकाः।
सर्वसम्पद्विहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये॥ १८॥
राज्यं देहि श्रियं देहि बलं देहि सुरेश्वरि।
कीर्तिं देहि धनं देहि यशो मह्यं च देहि वै॥ १९॥
कामं देहि मतिं देहि भोगान् देहि हरिप्रिये।
ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्॥ २०॥
प्रभावं च प्रतापं च सर्वाधिकारमेव च।
जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च॥ २१॥

फलश्रुतिः

इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
कुबेरतुल्यः स भवेद् राजराजेश्वरो महान्॥

हरिप्रिये! मुझे जबतक तुम्हारा दर्शन नहीं मिला था, तभीतक मैं बन्धुहीन, भिक्षुक तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे शून्य था॥ १८॥

सुरेश्वरि! अब तो मुझे राज्य दो, श्री दो, बल दो, कीर्ति दो, धन दो और यश भी प्रदान करो॥ १९॥

हरिप्रिये! मनोवांछित वस्तुएँ दो, बुद्धि दो, भोग दो, ज्ञान दो, धर्म दो तथा सम्पूर्ण अभिलषित सौभाग्य दो॥ २०॥

इसके सिवा मुझे प्रभाव, प्रताप, सम्पूर्ण अधिकार, युद्धमें विजय, पराक्रम तथा परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति भी कराओ॥ २१॥

फलश्रुति

यह स्तोत्र महान् पवित्र है। इसका त्रिकाल पाठ करनेवाला

सिद्धस्तोत्रं यदि पठेत् सोऽपि कल्पतरुर्नरः।
पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥
सिद्धिस्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं च संयतः।
महासुखी च राजेन्द्रो भविष्यति न संशयः॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे इन्द्रकृतं लक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

बड़भागी पुरुष कुबेरके समान राजाधिराज हो सकता है। पाँच लाख जप करनेपर मनुष्योंके लिये यह स्तोत्र सिद्ध होता है। यदि इस सिद्धस्तोत्रका कोई निरन्तर एक महीनेतक पाठ करे तो वह महान् सुखी एवं राजेन्द्र हो जायगा—इसमें कोई संशय नहीं है।

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणमें इन्द्रकृत लक्ष्मीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा
करकमलधृतेष्टाभीतियुग्माम्बुजा च।
मणिकटकविचित्राऽऽलङ्कृताऽऽकल्पजालैः
सकलभुवनमाता संततं श्रीः श्रियै नः॥

अर्थात् हलके लाल (गुलाबी) रंगके कमलदलपर बैठी हुई, कमल-परागकी राशिके समान पीतवर्णवाली, चारों हाथोंमें क्रमशः वर-मुद्रा, अभय-मुद्रा और दो कमल-पुष्प धारण किये हुए, मणिमय कड़ोंसे विचित्र शोभा धारण करनेवाली और अलंकारसमूहोंसे अलंकृत, समस्त लोकोंकी जननी श्रीमहालक्ष्मीदेवी निरन्तर हमें श्रीसम्पन्न करें। [सौभाग्यलक्ष्मी-उपनिषद्]

सीतास्तोत्राणि

३५—श्रीजानकीस्तुतिः

जानकि त्वां नमस्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्॥
दारिद्र्यरणसंहर्त्रीं भक्तानामिष्टदायिनीम्।
विदेहराजतनयां राघवानन्दकारिणीम्॥
भूमेर्दुहितरं विद्यां नमामि प्रकृतिं शिवाम्।
पौलस्त्यैश्वर्यसंहर्त्रीं भक्ताभीष्टां सरस्वतीम्॥
पतिव्रताधुरीणां त्वां नमामि जनकात्मजाम्।
अनुग्रहपरामृद्धिमनघां हरिवल्लभाम्॥
आत्मविद्यां त्रयीरूपामुमारूपां नमाम्यहम्।
प्रसादाभिमुखीं लक्ष्मीं क्षीराब्धितनयां शुभाम्॥

[श्रीहनुमान्‌जी बोले—] जनकनन्दिनी! आपको नमस्कार करता हूँ। आप सब पापोंका नाश तथा दारिद्र्यका संहार करनेवाली हैं। भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाली भी आप ही हैं। राघवेन्द्र श्रीरामको आनन्द प्रदान करनेवाली विदेहराज जनककी लाड़ली श्रीकिशोरीजीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप पृथ्वीकी कन्या और विद्या (ज्ञान)-स्वरूपा हैं, कल्याणमयी प्रकृति भी आप ही हैं। रावणके ऐश्वर्यका संहार तथा भक्तोंके अभीष्टका दान करनेवाली सरस्वतीरूपा भगवती सीताको मैं नमस्कार करता हूँ। पतिव्रताओंमें अग्रगण्य आप श्रीजनकदुलारीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप सबपर अनुग्रह करनेवाली समृद्धि, पापरहित और विष्णुप्रिया लक्ष्मी हैं।

आप ही आत्मविद्या, वेदत्रयी तथा पार्वतीस्वरूपा हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप ही क्षीरसागरकी कन्या महालक्ष्मी हैं, जो

नमामि चन्द्रभगिनीं सीतां सर्वाङ्गसुन्दरीम्।
नमामि धर्मनिलयां करुणां वेदमातरम्॥
पद्मालयां पद्महस्तां विष्णुवक्षःस्थलालयाम्।
नमामि चन्द्रनिलयां सीतां चन्द्रनिभाननाम्॥
आह्लादरूपिणीं सिद्धिं शिवां शिवकरीं सतीम्।
नमामि विश्वजननीं रामचन्द्रेष्टवल्लभाम्।
सीतां सर्वानवद्याङ्गीं भजामि सततं हृदा॥

॥ इति श्रीस्कन्दमहापुराणे सेतुमाहात्म्ये श्रीजानकीस्तुतिः सम्पूर्णा॥

भक्तोंको कृपा-प्रसाद प्रदान करनेके लिये सदा उत्सुक रहती हैं। चन्द्रमाकी भगिनी (लक्ष्मीस्वरूपा) सर्वांगसुन्दरी सीताको मैं प्रणाम करता हूँ। धर्मकी आश्रयभूता करुणामयी वेदमाता गायत्रीस्वरूपिणी श्रीजानकीको मैं नमस्कार करता हूँ। आपका कमलमें निवास है, आप ही हाथमें कमल धारण करनेवाली तथा भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, चन्द्रमण्डलमें भी आपका निवास है, आप चन्द्रमुखी सीतादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। आप श्रीरघुनन्दनकी आह्लादमयी शक्ति हैं, कल्याणमयी सिद्धि हैं और भगवान् शिवकी अर्द्धांगिनी कल्याणकारिणी सती हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी परम प्रियतमा जगदम्बा जानकीको मैं प्रणाम करता हूँ। सर्वांगसुन्दरी सीताजीका मैं अपने हृदयमें निरन्तर चिन्तन करता हूँ।

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणान्तर्गत सेतुमाहात्म्यमें श्रीजानकीस्तुति सम्पूर्ण हुई॥

३६—श्रीसीता-स्तुति

कबहुँक अंब, अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ॥ १॥
दीन, सब अँगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥ २॥
बूझिहैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥ ३॥
जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ॥ ४॥

(विनय-पत्रिका)

हे माता! कभी अवसर हो तो कुछ करुणाकी बात छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी भी याद दिला देना, (इसीसे मेरा काम बन जायगा)॥ १॥

यों कहना कि एक अत्यन्त दीन, सर्व साधनोंसे हीन, मनमलीन, दुर्बल और पूरा पापी मनुष्य आपकी दासी (तुलसी)-का दास कहलाकर और आपका नाम ले-लेकर पेट भरता है॥ २॥

इसपर प्रभु कृपा करके पूछें कि वह कौन है, तो मेरा नाम और मेरी दशा उन्हें बता देना। कृपालु रामचन्द्रजीके इतना सुन लेनेसे ही मेरी सारी बिगड़ी बात बन जायगी॥ ३॥

हे जगज्जननी जानकीजी! यदि इस दासकी आपने इस प्रकार वचनोंसे ही सहायता कर दी तो यह तुलसीदास आपके स्वामीकी गुणावली गाकर भव-सागरसे तर जायगा॥ ४॥

३७—श्रीसीता-स्तुति

कबहुँ समय सुधि द्यायबी, मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं,
किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पानकी॥ १॥
सरल कहाई प्रकृति आपु जानिए करुना-निधानकी।
निजगुन, अरिकृत अनहितौ,
दास-दोष सुरति चित रहत न दिये दानकी॥ २॥
बानि बिसारनसील है मानद अमानकी।
तुलसीदास न बिसारिये, मन करम
बचन जाके, सपनेहुँ गति न आनकी॥ ३॥

(विनय-पत्रिका)

हे जानकी माता! कभी मौका पाकर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी याद दिला देना। मैं उन्हींका दास कहाता हूँ, उन्हींका नाम लेता हूँ, उन्हींके लिये पपीहेकी तरह प्रण किये बैठा हूँ, मुझे उनके स्वाती-जलरूपी प्रेमरसकी बड़ी प्यास लग रही है॥ १॥

यह तो आप जानती ही हैं कि करुणा-निधान रामजीका स्वभाव बड़ा सरल है, उन्हें अपना गुण, शत्रुद्वारा किया हुआ अनिष्ट, दासका अपराध और दिये हुए दानकी बात कभी याद ही नहीं रहती॥ २॥

उनकी आदत भूल जानेकी है, जिसका कहीं मान नहीं होता, उसको वह मान दिया करते हैं; पर वह भी भूल जाते हैं। हे माता! तुम उनसे कहना कि तुलसीदासको न भूलिये; क्योंकि उसे मन, वचन और कर्मसे स्वप्नमें भी किसी दूसरेका आश्रय नहीं है॥ ३॥

राधास्तोत्राणि

३८—राधाषोडशनामस्तोत्रम्

श्रीनारायण उवाच

राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी।
कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया कृष्णस्वरूपिणी॥ १॥
कृष्णवामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी।
कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी॥ २॥
चन्द्रावली चन्द्रकान्ता शरच्चन्द्रप्रभानना।
नामान्येतानि साराणि तेषामभ्यन्तराणि च॥ ३॥
राधेत्येवं च संसिद्धौ राकारो दानवाचकः।
स्वयं निर्वाणदात्री या सा राधा परिकीर्तिता॥ ४॥

श्रीनारायणने कहा—राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामांगसम्भूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकान्ता और शरच्चन्द्रप्रभानना—ये सारभूत सोलह नाम उन सहस्र नामोंके ही अन्तर्गत हैं॥ १—३॥

राधा शब्दमें 'धा' का अर्थ है संसिद्धि (निर्वाण) तथा 'रा' दानवाचक है। जो स्वयं निर्वाण (मोक्ष) प्रदान करनेवाली हैं; वे 'राधा' कही गयी हैं॥ ४॥

रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता।
रासे च वासो यस्याश्च तेन सा रासवासिनी॥ ५ ॥
सर्वासां रसिकानां च देवीनामीश्वरी परा।
प्रवदन्ति पुरा सन्तस्तेन तां रसिकेश्वरीम्॥ ६ ॥
प्राणाधिका प्रेयसी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
कृष्णप्राणाधिका सा च कृष्णेन परिकीर्तिता॥ ७ ॥
कृष्णस्यातिप्रिया कान्ता कृष्णो वास्याः प्रियः सदा।
सर्वैर्देवगणैरुक्ता तेन कृष्णप्रिया स्मृता॥ ८ ॥
कृष्णरूपं संनिधातुं या शक्ता चावलीलया।
सर्वांशैः कृष्णसदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी॥ ९ ॥
वामाङ्गार्धेन कृष्णस्य या सम्भूता परा सती।
कृष्णवामाङ्गसम्भूता तेन कृष्णेन कीर्तिता॥ १० ॥

रासेश्वरकी ये पत्नी हैं; इसलिये इनका नाम 'रासेश्वरी' है। उनका रासमण्डलमें निवास है; इससे वे 'रासवासिनी' कहलाती हैं॥ ५॥

वे समस्त रसिक देवियोंकी परमेश्वरी हैं; अतः पुरातन संत-महात्मा उन्हें 'रसिकेश्वरी' कहते हैं॥ ६॥

परमात्मा श्रीकृष्णके लिये वे प्राणोंसे भी अधिक प्रियतमा हैं; अतः साक्षात् श्रीकृष्णने ही उन्हें 'कृष्णप्राणाधिका' नाम दिया है॥ ७॥

वे श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्रिया कान्ता हैं अथवा श्रीकृष्ण ही सदा उन्हें प्रिय हैं, इसलिये समस्त देवताओंने उन्हें 'कृष्णप्रिया' कहा है॥ ८॥

वे श्रीकृष्णरूपको लीलापूर्वक निकट लानेमें समर्थ हैं तथा सभी अंशोंमें श्रीकृष्णके सदृश हैं; अतः 'कृष्णस्वरूपिणी' कही गयी हैं॥ ९॥

परम सती श्रीराधा श्रीकृष्णके आधे वामांगभागसे प्रकट हुई हैं; अतः श्रीकृष्णने स्वयं ही उन्हें 'कृष्णवामांगसम्भूता' कहा है॥ १०॥

परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती।
श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी॥ ११॥
कृषिर्मोक्षार्थवचनो न एवोत्कृष्टवाचकः।
आकारो दातृवचनस्तेन कृष्णा प्रकीर्तिता॥ १२॥
अस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेन वृन्दावनी स्मृता।
वृन्दावनस्याधिदेवी तेन वाथ प्रकीर्तिता॥ १३॥
सङ्घः सखीनां वृन्दः स्यादकारोऽप्यस्तिवाचकः।
सखिवृन्दोऽस्ति यस्याश्च सा वृन्दा परिकीर्तिता॥ १४॥
वृन्दावने विनोदश्च सोऽस्या ह्यस्ति च तत्र वै।
वेदा वदन्ति तां तेन वृन्दावनविनोदिनीम्॥ १५॥

सती श्रीराधा स्वयं परमानन्दकी मूर्तिमती राशि हैं; अतः श्रुतियोंने उन्हें 'परमानन्दरूपिणी' की संज्ञा दी है॥ ११॥

'कृष्' शब्द मोक्षका वाचक है, 'ण' उत्कृष्टताका बोधक है और 'आकार' दाताके अर्थमें आता है। वे उत्कृष्ट मोक्षकी दात्री हैं; इसलिये 'कृष्णा' कही गयी हैं॥ १२॥

वृन्दावन उन्हींका है; इसलिये वे 'वृन्दावनी' कही गयी हैं अथवा वृन्दावनकी अधिदेवी होनेके कारण उन्हें यह नाम प्राप्त हुआ है॥ १३॥

सखियोंके समुदायको 'वृन्द' कहते हैं और 'अकार' सत्ताका वाचक है। उनके समूह-की-समूह सखियाँ हैं; इसलिये वे 'वृन्दा' कही गयी हैं॥ १४॥

उन्हें सदा वृन्दावनमें विनोद प्राप्त होता है; अतः वेद उनको 'वृन्दावनविनोदिनी' कहते हैं॥ १५॥

नखचन्द्रावली वक्त्रचन्द्रोऽस्ति यत्र संततम्।
तेन चन्द्रावली सा च कृष्णेन परिकीर्तिता॥ १६॥
कान्तिरस्ति चन्द्रतुल्या सदा यस्या दिवानिशम्।
सा चन्द्रकान्ता हर्षेण हरिणा परिकीर्तिता॥ १७॥
शरच्चन्द्रप्रभा यस्याश्चाननेऽस्ति दिवानिशम्।
मुनिना कीर्तिता तेन शरच्चन्द्रप्रभानना॥ १८॥
इदं षोडशनामोक्तमर्थव्याख्यानसंयुतम्।
नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे।
ब्रह्मणा च पुरा दत्तं धर्माय जनकाय मे॥ १९॥
धर्मेण कृपया दत्तं मह्यमादित्यपर्वणि।
पुष्करे च महातीर्थे पुण्याहे देवसंसदि।
राधाप्रभावप्रस्तावे सुप्रसन्नेन चेतसा॥ २०॥

वे सदा मुखचन्द्र तथा नखचन्द्रकी अवली (पंक्ति)-से युक्त हैं; इस कारण श्रीकृष्णने उन्हें 'चन्द्रावली' नाम दिया है॥ १६॥

उनकी कान्ति दिन-रात सदा ही चन्द्रमाके तुल्य बनी रहती है; अत: श्रीहरि हर्षोल्लासके कारण उन्हें 'चन्द्रकान्ता' कहते हैं॥ १७॥

उनके मुखपर दिन-रात शरत्कालके चन्द्रमाकी-सी प्रभा फैली रहती है; इसलिये मुनिमण्डलीने उन्हें 'शरच्चन्द्रप्रभानना' कहा है॥ १८॥

यह अर्थ और व्याख्याओंसहित षोडश-नामावली कही गयी; जिसे नारायणने अपने नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माको दिया था। फिर ब्रह्माजीने पूर्वकालमें मेरे पिता धर्मदेवको इस नामावलीका उपदेश दिया और श्रीधर्मदेवने महातीर्थ पुष्करमें सूर्यग्रहणके पुण्य पर्वपर देवसभाके बीच मुझे कृपापूर्वक इन सोलह नामोंका उपदेश दिया था। श्रीराधाके प्रभावकी प्रस्तावना होनेपर बड़े प्रसन्नचित्तसे उन्होंने इन नामोंकी व्याख्या की थी॥ १९-२०॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं तुभ्यं दत्तं मया मुने।
निन्दकायावैष्णवाय न दातव्यं महामुने॥ २१॥
यावज्जीवमिदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
राधामाधवयोः पादपद्मे भक्तिर्भवेदिह॥ २२॥
अन्ते लभेत्तयोर्दास्यं शश्वत्सहचरो भवेत्।
अणिमादिकसिद्धिं च सम्प्राप्य नित्यविग्रहम्॥ २३॥
व्रतदानोपवासैश्च सर्वैर्नियमपूर्वकैः।
चतुर्णां चैव वेदानां पाठैः सर्वार्थसंयुतैः॥ २४॥
सर्वेषां यज्ञतीर्थानां करणैर्विधिबोधितैः।
प्रदक्षिणेन भूमेश्च कृत्स्नाया एव सप्तधा॥ २५॥

मुने! यह राधाका परम पुण्यमय स्तोत्र है, जिसे मैंने तुमको दिया। महामुने! जो वैष्णव न हो तथा वैष्णवोंका निन्दक हो, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये॥ २१॥

जो मनुष्य जीवनभर तीनों संध्याओंके समय इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसकी यहाँ राधा-माधवके चरणकमलोंमें भक्ति होती है॥ २२॥

अन्तमें वह उन दोनोंका दास्यभाव प्राप्त कर लेता है और दिव्य शरीर एवं अणिमा आदि सिद्धिको पाकर सदा उन प्रिया-प्रियतमके साथ विचरता है॥ २३॥

नियमपूर्वक किये गये सम्पूर्ण व्रत, दान और उपवाससे, चारों वेदोंके अर्थसहित पाठसे, समस्त यज्ञों और तीर्थोंके विधिबोधित अनुष्ठान तथा सेवनसे, सम्पूर्ण भूमिकी सात बार की गयी परिक्रमासे,

शरणागतरक्षायामज्ञानां ज्ञानदानतः।
देवानां वैष्णवानां च दर्शनेनापि यत् फलम्॥ २६॥
तदेव स्तोत्रपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम्।
स्तोत्रस्यास्य प्रभावेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ २७॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे श्रीनारायणकृतं राधाषोडशनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

३९—श्रीराधास्तोत्रम्

उद्धव उवाच

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम्।
यत्कीर्तिकीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम्॥ १॥
नमो गोलोकवासिन्यै राधिकायै नमो नमः।
शतशृङ्गनिवासिन्यै चन्द्रवत्यै नमो नमः॥ २॥

शरणागतकी रक्षासे, अज्ञानीको ज्ञान देनेसे तथा देवताओं और वैष्णवोंका दर्शन करनेसे भी जो फल प्राप्त होता है, वह इस स्तोत्रपाठकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है। इस स्तोत्रके प्रभावसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है॥ २४—२७॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणमें श्रीनारायणकृत राधाषोडशनामस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

उद्धवजीने कहा—मैं श्रीराधाके उन चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा वन्दित हैं तथा जिनकी कीर्तिके कीर्तनसे ही तीनों भुवन पवित्र हो जाते हैं। गोलोकमें वास करनेवाली राधिकाको बारम्बार नमस्कार। शतशृंगपर निवास करनेवाली

तुलसीवनवासिन्यै वृन्दारण्यै नमो नमः।
रासमण्डलवासिन्यै रासेश्वर्यै नमो नमः॥ ३॥
विरजातीरवासिन्यै वृन्दायै च नमो नमः।
वृन्दावनविलासिन्यै कृष्णायै च नमो नमः॥ ४॥
नमः कृष्णप्रियायै च शान्तायै च नमो नमः।
कृष्णवक्षःस्थितायै च तत्प्रियायै नमो नमः॥ ५॥
नमो वैकुण्ठवासिन्यै महालक्ष्म्यै नमो नमः।
विद्याधिष्ठातृदेव्यै च सरस्वत्यै नमो नमः॥ ६॥
सर्वैश्वर्याधिदेव्यै च कमलायै नमो नमः।
पद्मनाभप्रियायै च पद्मायै च नमो नमः॥ ७॥
महाविष्णोश्च मात्रे च पराद्यायै नमो नमः।
नमः सिन्धुसुतायै च मर्त्यलक्ष्म्यै नमो नमः॥ ८॥

चन्द्रवतीको नमस्कार-नमस्कार। तुलसीवन तथा वृन्दावनमें बसनेवालीको नमस्कार-नमस्कार। रासमण्डलवासिनी रासेश्वरीको नमस्कार-नमस्कार। विरजाके तटपर वास करनेवाली वृन्दाको नमस्कार-नमस्कार। वृन्दावनविलासिनी कृष्णाको नमस्कार-नमस्कार॥ १—४॥

कृष्णप्रियाको नमस्कार। शान्ताको पुनः-पुनः नमस्कार। कृष्णके वक्षः-स्थलपर स्थित रहनेवाली कृष्णप्रियाको नमस्कार-नमस्कार। वैकुण्ठवासिनीको नमस्कार। महालक्ष्मीको पुनः-पुनः नमस्कार। विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको नमस्कार-नमस्कार। सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी अधिदेवी कमलाको नमस्कार-नमस्कार। पद्मनाभकी प्रियतमा पद्माको बारम्बार प्रणाम। जो महाविष्णुकी माता और पराद्या हैं; उन्हें पुनः-पुनः नमस्कार। सिन्धुसुताको नमस्कार। मर्त्यलक्ष्मीको नमस्कार-नमस्कार॥ ५—८॥

नारायणप्रियायै च नारायण्यै नमो नमः।
नमोऽस्तु विष्णुमायायै वैष्णव्यै च नमो नमः॥ ९ ॥
महामायास्वरूपायै सम्पदायै नमो नमः।
नमः कल्याणरूपिण्यै शुभायै च नमो नमः॥ १० ॥
मात्रे चतुर्णां वेदानां सावित्र्यै च नमो नमः।
नमो दुर्गविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः॥ ११ ॥
तेजःसु सर्वदेवानां पुरा कृतयुगे मुदा।
अधिष्ठानकृतायै च प्रकृत्यै च नमो नमः॥ १२ ॥
नमस्त्रिपुरहारिण्यै त्रिपुरायै नमो नमः।
सुन्दरीषु च रम्यायै निर्गुणायै नमो नमः॥ १३ ॥
नमो निद्रास्वरूपायै निर्गुणायै नमो नमः।
नमो दक्षसुतायै च नमः सत्यै नमो नमः॥ १४ ॥

नारायणकी प्रिया नारायणीको बारम्बार नमस्कार। विष्णुमायाको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। वैष्णवीको नमस्कार-नमस्कार। महामाया-स्वरूपा सम्पदाको पुनः-पुनः नमस्कार। कल्याणरूपिणीको नमस्कार। शुभाको बारम्बार नमस्कार। चारों वेदोंकी माता और सावित्रीको पुनः-पुनः नमस्कार। दुर्गविनाशिनी दुर्गादेवीको बारम्बार नमस्कार। पहले सत्ययुगमें जो सम्पूर्ण देवताओंके तेजोंमें अधिष्ठित थीं; उन देवीको तथा प्रकृतिको नमस्कार-नमस्कार। त्रिपुरहारिणीको नमस्कार। त्रिपुराको पुनः-पुनः नमस्कार। सुन्दरियोंमें परम सुन्दरी निर्गुणाको नमस्कार-नमस्कार॥ ९—१३ ॥

निद्रास्वरूपाको नमस्कार और निर्गुणाको बारम्बार नमस्कार।

नमः शैलसुतायै च पार्वत्यै च नमो नमः।
नमो नमस्तपस्विन्यै ह्युमायै च नमो नमः॥ १५॥
निराहारस्वरूपायै ह्यपर्णायै नमो नमः।
गौरीलोकविलासिन्यै नमो गौर्यै नमो नमः॥ १६॥
नमः कैलासवासिन्यै माहेश्वर्यै नमो नमः।
निद्रायै च दयायै च श्रद्धायै च नमो नमः॥ १७॥
नमो धृत्यै क्षमायै च लज्जायै च नमो नमः।
तृष्णायै क्षुत्स्वरूपायै स्थितिकर्त्र्यै नमो नमः॥ १८॥
नमः संहाररूपिण्यै महामार्यै नमो नमः।
भयायै चाभयायै च मुक्तिदायै नमो नमः॥ १९॥
नमः स्वधायै स्वाहायै शान्त्यै कान्त्यै नमो नमः।
नमस्तुष्ट्यै च पुष्ट्यै च दयायै च नमो नमः॥ २०॥

दक्षसुताको नमस्कार और सत्याको पुनः-पुनः नमस्कार। शैलसुताको नमस्कार और पार्वतीको बार-बार नमस्कार। तपस्विनीको नमस्कार-नमस्कार और उमाको बारम्बार नमस्कार। निराहारस्वरूपा अपर्णाको पुनः-पुनः नमस्कार। गौरीलोकमें विलास करनेवाली गौरीको बारम्बार नमस्कार। कैलासवासिनीको नमस्कार और माहेश्वरीको नमस्कार-नमस्कार। निद्रा, दया और श्रद्धाको पुनः-पुनः नमस्कार। धृति, क्षमा और लज्जाको बारम्बार नमस्कार। तृष्णा, क्षुत्स्वरूपा और स्थितिकर्त्रीको नमस्कार-नमस्कार॥ १४—१८॥

संहाररूपिणीको नमस्कार और महामारीको पुनः-पुनः नमस्कार। भया, अभया और मुक्तिदाको नमस्कार-नमस्कार। स्वधा, स्वाहा, शान्ति और कान्तिको बारम्बार नमस्कार। तुष्टि, पुष्टि और दयाको पुनः-पुनः नमस्कार।

नमो निद्रास्वरूपायै श्रद्धायै च नमो नमः।
क्षुत्पिपासास्वरूपायै लज्जायै च नमो नमः॥ २१॥
नमो धृत्यै क्षमायै च चेतनायै नमो नमः।
सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै सर्वमात्रे नमो नमः॥ २२॥
अग्नौ दाहस्वरूपायै भद्रायै च नमो नमः।
शोभायै पूर्णचन्द्रे च शरत्पद्मे नमो नमः॥ २३॥
नास्ति भेदो यथा देवि दुग्धधावल्ययोः सदा।
यथैव गन्धभूम्योश्च यथैव जलशैत्ययोः॥ २४॥
यथैव शब्दनभसोर्ज्योतिःसूर्यकयोर्यथा।
लोके वेदे पुराणे च राधामाधवयोस्तथा॥ २५॥
चेतनं कुरु कल्याणि देहि मामुत्तरं सति।
इत्युक्त्वा चोद्धवस्तत्र प्रणनाम पुनः पुनः॥ २६॥

निद्रास्वरूपाको नमस्कार और श्रद्धाको नमस्कार-नमस्कार। क्षुत्पिपासा-स्वरूपा और लज्जाको बारम्बार नमस्कार। धृति, चेतना और क्षमाको बारम्बार नमस्कार। जो सबकी माता तथा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं; उन्हें नमस्कार-नमस्कार। अग्निमें दाहिका-शक्तिके रूपमें विद्यमान रहनेवाली देवी और भद्राको पुनः-पुनः नमस्कार। जो पूर्णिमाके चन्द्रमामें और शरत्कालीन कमलमें शोभारूपसे वर्तमान रहती हैं; उन शोभाको नमस्कार-नमस्कार॥ १९—२३॥

देवि! जैसे दूध और उसकी धवलतामें, गन्ध और भूमिमें, जल और शीतलतामें, शब्द और आकाशमें तथा सूर्य और प्रकाशमें कभी भेद नहीं है; वैसे ही लोक, वेद और पुराणमें—कहीं भी राधा और माधवमें भेद नहीं है; अतः कल्याणि! चेत करो। सति! मुझे उत्तर दो। यों कहकर उद्धव वहाँ उनके चरणोंमें पुनः-पुनः प्रणिपात करने लगे॥ २४—२६॥

इत्युद्धवकृतं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तिपूर्वकम्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते हरिमन्दिरम्॥ २७॥
न भवेद् बन्धुविच्छेदो रोगः शोकः सुदारुणः।
प्रोषिता स्त्री लभेत् कान्तं भार्याभेदी लभेत् प्रियाम्॥ २८॥
अपुत्रो लभते पुत्रान् निर्धनो लभते धनम्।
निर्भूमिर्लभते भूमिं प्रजाहीनो लभेत् प्रजाम्॥ २९॥
रोगाद् विमुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः॥ ३०॥
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः॥ ३१॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे उद्धवकृतं श्रीराधास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस उद्धवकृत स्तोत्रका पाठ करता है; वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वैकुण्ठमें जाता है। उसे बन्धुवियोग तथा अत्यन्त भयंकर रोग और शोक नहीं होते। जिस स्त्रीका पति परदेश गया होता है, वह अपने पतिसे मिल जाती है और भार्यावियोगी अपनी पत्नीको पा जाता है। पुत्रहीनको पुत्र मिल जाते हैं, निर्धनको धन प्राप्त हो जाता है, भूमिहीनको भूमिकी प्राप्ति हो जाती है, प्रजाहीन प्रजाको पा लेता है, रोगी रोगसे विमुक्त हो जाता है, बँधा हुआ बन्धनसे छूट जाता है, भयभीत मनुष्य भयसे मुक्त हो जाता है, आपत्तिग्रस्त आपद्से छुटकारा पा जाता है और मलिन कीर्तिवाला उत्तम यशस्वी तथा मूर्ख पण्डित हो जाता है॥ २७—३१॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणमें उद्धवकृत श्रीराधास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

४०—श्रीराधाष्टकम्

नमस्ते श्रियै राधिकायै परायै
नमस्ते नमस्ते मुकुन्दप्रियायै।
सदानन्दरूपे प्रसीद त्वमन्तः-
प्रकाशे स्फुरन्ती मुकुन्देन सार्धम्॥ १॥
स्ववासोऽपहारं यशोदासुतं वा
स्वदध्यादिचौरं समाराधयन्तीम्।
स्वदाम्नोदरं या बबन्धाशु नीव्या
प्रपद्ये नु दामोदरप्रेयसीं ताम्॥ २॥

श्रीराधिके! तुम्हीं श्री (लक्ष्मी) हो, तुम्हें नमस्कार है, तुम्हीं पराशक्ति राधिका हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम मुकुन्दकी प्रियतमा हो, तुम्हें नमस्कार है। सदानन्दस्वरूपे देवि! तुम मेरे अन्तःकरणके प्रकाशमें श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके साथ सुशोभित होती हुई मुझपर प्रसन्न होओ॥ १॥

जो अपने वस्त्रका अपहरण करनेवाले अथवा अपने दूध-दही, माखन आदि चुरानेवाले यशोदानन्दन श्रीकृष्णकी आराधना करती हैं, जिन्होंने अपनी नीवीके बन्धनसे श्रीकृष्णके उदरको शीघ्र ही बाँध लिया था, जिसके कारण उनका नाम 'दामोदर' हो गया, उन दामोदरकी प्रियतमा श्रीराधा-रानीकी मैं निश्चय ही शरण लेता हूँ॥ २॥

दुराराध्यमाराध्य कृष्णं वशे त्वं
महाप्रेमपूरेण राधाभिधाऽभूः।
स्वयं नामकृत्या हरिप्रेम यच्छ
प्रपन्नाय मे कृष्णरूपे समक्षम्॥ ३॥
मुकुन्दस्त्वया प्रेमदोरेण बद्धः
पतङ्गो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः।
उपक्रीडयन् हार्दमेवानुगच्छन्
कृपा वर्तते कारयातो मयेष्टिम्॥ ४॥
व्रजन्तीं स्ववृन्दावने नित्यकालं
मुकुन्देन साकं विधायाङ्कमालम्।

श्रीराधे! जिनकी आराधना कठिन है, उन श्रीकृष्णकी भी आराधना करके तुमने अपने महान् प्रेमसिन्धुकी बाढ़से उन्हें वशमें कर लिया। श्रीकृष्णकी आराधनाके ही कारण तुम 'राधा' नामसे विख्यात हुई। श्रीकृष्णस्वरूपे! अपना यह नामकरण स्वयं तुमने किया है, इससे अपने सम्मुख आये हुए मुझ शरणागतको श्रीहरिका प्रेम प्रदान करो॥ ३॥

तुम्हारी प्रेमडोरमें बँधे हुए भगवान् श्रीकृष्ण पतंगकी भाँति सदा तुम्हारे आस-पास ही चक्कर लगाते रहते हैं, हार्दिक प्रेमका अनुसरण करके तुम्हारे पास ही रहते और क्रीडा करते हैं। देवि! तुम्हारी कृपा सबपर है, अतः मेरे द्वारा अपनी आराधना (सेवा) करवाओ॥ ४॥

जो प्रतिदिन नियत समयपर श्रीश्यामसुन्दरके साथ उन्हें अपने

सदा मोक्ष्यमाणानुकम्पाकटाक्षैः
श्रियं चिन्तयेत् सच्चिदानन्दरूपाम्॥ ५॥
मुकुन्दानुरागेण रोमाञ्चिताङ्गी-
महं व्याप्यमानां तनुस्वेदविन्दुम्।
महाहार्दवृष्ट्या कृपापाङ्गदृष्ट्या
समालोकयन्तीं कदा त्वां विचक्षे॥ ६॥
पदाङ्कावलोके महालालसौघं
मुकुन्दः करोति स्वयं ध्येयपादः।
पदं राधिके ते सदा दर्शयान्त-
र्हृदीतो नमन्तं किरद्रोचिषं माम्॥ ७॥

अंककी माला अर्पित करके अपनी लीलाभूमि—वृन्दावनमें विहार करती हैं, भक्तजनोंपर प्रयुक्त होनेवाले कृपा-कटाक्षोंसे सुशोभित उन सच्चिदानन्दस्वरूपा श्रीलाड़िलीका सदा चिन्तन करे॥ ५॥

श्रीराधे! तुम्हारे मन-प्राणोंमें आनन्दकन्द श्रीकृष्णका प्रगाढ़ अनुराग व्याप्त है, अतएव तुम्हारे श्रीअंग सदा रोमांचसे विभूषित हैं और अंग-अंग सूक्ष्म स्वेदबिन्दुओंसे सुशोभित होता है। तुम अपनी कृपा-कटाक्षसे परिपूर्ण दृष्टिद्वारा महान् प्रेमकी वर्षा करती हुई मेरी ओर देख रही हो, इस अवस्थामें मुझे कब तुम्हारा दर्शन होगा?॥ ६॥

श्रीराधिके! यद्यपि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण स्वयं ही ऐसे हैं कि उनके चारुचरणोंका चिन्तन किया जाय, तथापि वे तुम्हारे चरणचिह्नोंके अवलोकनकी बड़ी लालसा रखते हैं। देवि! मैं नमस्कार करता हूँ। इधर मेरे अन्तःकरणके हृदय-देशमें ज्योतिपुंज बिखेरते हुए अपने चिन्तनीय चरणारविन्दका मुझे दर्शन कराओ॥ ७॥

सदा राधिकानाम जिह्वाग्रतः स्यात्
सदा राधिका रूपमक्ष्यग्र आस्ताम्।
श्रुतौ राधिकाकीर्तिरन्तःस्वभावे
गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे॥ ८॥

इदं त्वष्टकं राधिकायाः प्रियायाः
पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य।
सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधाम्नि
सखीमूर्तयो युग्मसेवानुकूलाः॥ ९॥

॥ इति श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रविरचितं श्रीराधाष्टकं सम्पूर्णम्॥

मेरी जिह्वाके अग्रभागपर सदा श्रीराधिकाका नाम विराजमान रहे। मेरे नेत्रोंके समक्ष सदा श्रीराधाका ही रूप प्रकाशित हो। कानोंमें श्रीराधिकाकी कीर्ति-कथा गूँजती रहे और अन्तर्हृदयमें लक्ष्मी-स्वरूपा श्रीराधाके ही असंख्य गुणगणोंका चिन्तन हो, यही मेरी शुभ कामना है॥ ८॥

दामोदरप्रिया श्रीराधाकी स्तुतिसे सम्बन्ध रखनेवाले इन आठ श्लोकोंका जो लोग सदा इसी रूपमें पाठ करते हैं, वे श्रीकृष्णधाम वृन्दावनमें युगल सरकारकी सेवाके अनुकूल सखी-शरीर पाकर सुखसे रहते हैं॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रविरचित श्रीराधाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

गायत्रीस्तोत्रम्

४१—गायत्रीस्तुतिः

महेश्वर उवाच

जयस्व देवि गायत्रि महामाये महाप्रभे।
महादेवि महाभागे महासत्त्वे महोत्सवे॥ १॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गि दिव्यस्त्रग्दामभूषिते।
वेदमातर्नमस्तुभ्यं त्र्यक्षरस्थे महेश्वरि॥ २॥
त्रिलोकस्थे त्रितत्त्वस्थे त्रिवह्निस्थे त्रिशूलिनि।
त्रिनेत्रे भीमवक्त्रे च भीमनेत्रे भयानके॥ ३॥
कमलासनजे देवि सरस्वति नमोऽस्तु ते।
नमः पङ्कजपत्राक्षि महामायेऽमृतस्त्रवे॥ ४॥

भगवान् महेश्वर बोले—महामाये! महाप्रभे! गायत्रीदेवि! आपकी जय हो! महाभागे! आपके सौभाग्य, बल, आनन्द—सभी असीम हैं। दिव्य गन्ध एवं अनुलेपन आपके श्रीअंगोंकी शोभा बढ़ाते हैं। परमानन्दमयी देवि! दिव्य मालाएँ एवं गन्ध आपके श्रीविग्रहकी छवि बढ़ाती हैं। महेश्वरि! आप वेदोंकी माता हैं। आप ही वर्णोंकी मातृका हैं। आप तीनों लोकोंमें व्याप्त हैं। तीनों अग्नियोंमें जो शक्ति है, वह आपका ही तेज है। त्रिशूल धारण करनेवाली देवि! आपको मेरा नमस्कार है। देवि! आप त्रिनेत्रा, भीमवक्त्रा, भीमनेत्रा और भयानका आदि अर्थानुरूप नामोंसे व्यवहृत होती हैं। आप ही गायत्री और सरस्वती हैं। आपके लिये हमारा नमस्कार है। अम्बिके! आपकी आँखें कमलके समान हैं। आप महामाया हैं। आपसे अमृतकी वृष्टि होती रहती है॥ १—४॥

सर्वगे सर्वभूतेशि स्वाहाकारे स्वधेऽम्बिके।
सम्पूर्णे पूर्णचन्द्राभे भास्वराङ्गे भवोद्भवे॥ ५॥
महाविद्ये महावेद्ये महादैत्यविनाशिनि।
महाबुद्ध्युद्भवे देवि वीतशोके किरातिनि॥ ६॥
त्वं नीतिस्त्वं महाभागे त्वं गीस्त्वं गौस्त्वमक्षरम्।
त्वं धीस्त्वं श्रीस्त्वमोङ्कारस्तत्त्वे चापि परिस्थिता।
सर्वसत्त्वहिते देवि नमस्ते परमेश्वरि॥ ७॥
इत्येवं संस्तुता देवी भवेन परमेष्ठिना।
देवैरपि जयेत्युच्चैरित्युक्ता परमेश्वरी॥ ८॥

॥ इति श्रीवराहमहापुराणे महेश्वरकृता गायत्रीस्तुतिः सम्पूर्णा॥

सर्वगे! आप सम्पूर्ण प्राणियोंकी अधिष्ठात्री हैं। स्वाहा और स्वधा आपकी ही प्रतिकृतियाँ हैं; अतः आपको मेरा नमस्कार है। महान् दैत्योंका दलन करनेवाली देवि! आप सभी प्रकारसे परिपूर्ण हैं। आपके मुखकी आभा पूर्णचन्द्रके समान है। आपके शरीरसे महान् तेज छिटक रहा है। आपसे ही यह सारा विश्व प्रकट होता है। आप महाविद्या और महावेद्या हैं। आनन्दमयी देवि! विशिष्ट बुद्धिका आपसे ही उदय होता है। आप समयानुसार लघु एवं बृहत् शरीर भी धारण कर लेती हैं। महामाये! आप नीति, सरस्वती, पृथ्वी एवं अक्षरस्वरूपा हैं। देवि! आप श्री, धी तथा ॐकारस्वरूपा हैं। परमेश्वरि! तत्त्वमें विराजमान होकर आप अखिल प्राणियोंका हित करती हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार है॥ ५—७॥

इस प्रकार परम शक्तिशाली भगवान् शंकरने उन देवीकी स्तुति की और देवतालोग भी बड़े उच्चस्वरसे उन परमेश्वरीकी जयध्वनि करने लगे॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीवराहमहापुराणमें महेश्वरकृत गायत्रीस्तुति सम्पूर्ण हुई॥

अन्नपूर्णास्तोत्रम्

४२—श्रीअन्नपूर्णास्तोत्रम्

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ १॥

नानारत्नविचित्रभूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोजकुम्भान्तरी ।
काश्मीरागरुवासिताङ्गरुचिरे काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ २॥

आप नित्य आनन्द प्रदान करनेवाली हैं, वर तथा अभय देनेवाली हैं, सौन्दर्यरूपी रत्नोंकी खान हैं, भक्तोंके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करके उन्हें पवित्र कर देनेवाली हैं, साक्षात् माहेश्वरीके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, [पार्वतीके रूपमें जन्म लेकर] आपने हिमालयके वंशको पावन कर दिया है, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी (स्वामिनी) हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ १॥

आप अनेकविध रत्नोंके विचित्र आभूषण धारण करनेवाली हैं, आप स्वर्णजटित वस्त्रोंसे शोभा पानेवाली हैं, आपके वक्षःस्थलका मध्यभाग मुक्ताहारसे सुशोभित हो रहा है, आपके श्रीअंग केशर और अगरुसे सुवासित हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ २॥

योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठाकरी

चन्द्रार्कानलभासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी।

सर्वैश्वर्यसमस्तवाञ्छितकरी काशीपुराधीश्वरी

भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥ ३ ॥

कैलासाचलकन्दरालयकरी गौरी उमा शङ्करी

कौमारी निगमार्थगोचरकरी ओङ्कारबीजाक्षरी।

मोक्षद्वारकपाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी

भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥ ४ ॥

आप [योगिजनोंको] योगका आनन्द प्रदान करती हैं, शत्रुओंका नाश करती हैं, धर्म और अर्थके लिये लोगोंमें निष्ठा उत्पन्न करती हैं; सूर्य, चन्द्र तथा अग्निकी प्रभा-तरंगोंके समान कान्तिवाली हैं, तीनों लोकोंकी रक्षा करती हैं, अपने भक्तोंको सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करती हैं; उनके समस्त मनोरथ पूर्ण करती हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ३॥

आपने कैलासपर्वतकी गुफाको अपना निवासस्थल बना रखा है, आप गौरी, उमा, शंकरी तथा कौमारीके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, आप वेदार्थ तत्त्वोंका अवबोध करानेवाली हैं, आप 'ओंकार' बीजाक्षरस्वरूपिणी हैं, आप मोक्षमार्गके कपाटका उद्घाटन करनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ४॥

दृश्यादृश्यविभूतिवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपाङ्कुरी।
श्रीविश्वेशमनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ ५॥
उर्वीसर्वजनेश्वरी भगवती मातान्नपूर्णेश्वरी
वेणीनीलसमानकुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी।
सर्वानन्दकरी सदा शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ ६॥

आप दृश्य तथा अदृश्यरूप अनेकविध ऐश्वर्यरूपी वाहनोंपर आरूढ़ होनेवाली हैं, आप अनन्त ब्रह्माण्डको अपने उदररूपी पात्रमें धारण करनेवाली हैं, माया-प्रपंचके (कारणभूत अज्ञान) सूत्रका भेदन करनेवाली हैं, आप विज्ञान (अपरोक्षानुभूति)-रूपी दीपककी शिखा हैं, आप भगवान् विश्वनाथके मनको प्रसन्न रखनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ५॥

आप पृथ्वीतलपर स्थित सभी प्राणियोंकी ईश्वरी (स्वामिनी) हैं, आप ऐश्वर्यशालिनी हैं, सभी जीवोंमें मातृभावसे विराजती हैं, अन्नसे भण्डारको परिपूर्ण रखनेवाली देवी हैं, आप नील वर्णकी वेणीके समान लहराते केश-पाशवाली हैं, आप निरन्तर अन्न-दानमें लगी रहती हैं, समस्त प्राणियोंको आनन्द प्रदान करनेवाली हैं, सर्वदा [भक्तजनोंका] मंगल करनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ६॥

आदिक्षान्तसमस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी
काश्मीरात्रिजलेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुरा शर्वरी।
कामाकाङ्क्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ ७॥
देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
वामं स्वादुपयोधरप्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी।
भक्ताभीष्टकरी सदा शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ ८॥

आप 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त समस्त वर्णमालासे व्याप्त हैं, आप भगवान् शिवके तीनों भावों (सत्त्व, रज, तम)-को प्रादुर्भूत करनेवाली हैं, आप केसरके समान आभावाली हैं, आप स्वर्गगंगा, पातालगंगा तथा भागीरथी—इन तीन जल-राशियोंकी स्वामिनी हैं, आप गंगा, यमुना तथा सरस्वती—इन तीनों नदियोंकी लहरोंके रूपमें विद्यमान हैं, आप विभिन्न रूपोंमें नित्य अभिव्यक्त होनेवाली हैं, आप रात्रिस्वरूपा हैं, आप अभिलाषी भक्त जनोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली हैं, लोगोंका अभ्युदय करनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ७॥

आप सभी प्रकारके अद्भुत रत्नाभूषणोंसे सजी हुई देवीके रूपमें शोभा पाती हैं, आप दक्षकी सुन्दर पुत्री हैं, आप माताके रूपमें अपने वाम तथा स्वादमय पयोधरसे [भक्त शिशुओंका] प्रिय सम्पादन करनेवाली हैं, आप सौभाग्यकी माहेश्वरी हैं, आप भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाली और सदा उनका कल्याण करनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ८॥

चन्द्रार्कानलकोटिकोटिसदृशा चन्द्रांशुबिम्बाधरी
चन्द्रार्काग्निसमानकुन्तलधरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी।
मालापुस्तकपाशसाङ्कुशधरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ ९ ॥
क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी
साक्षान्मोक्षकरी सदा शिवकरी विश्वेश्वरश्रीधरी।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ १० ॥
अन्नपूर्णे सदापूर्णे शङ्करप्राणवल्लभे।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति॥ ११ ॥

आप कोटि-कोटि चन्द्र-सूर्य-अग्निके समान जाज्वल्यमान प्रतीत होती हैं, आप चन्द्रकिरणोंके समान [शीतल] तथा बिम्बाफलके समान रक्त-वर्णके अधरोष्ठवाली हैं, चन्द्र-सूर्य तथा अग्निके समान प्रकाशमान केश धारण करनेवाली हैं, आप चन्द्रमा तथा सूर्यके समान देदीप्यमान वर्णवाली ईश्वरी हैं, आपने [अपने हाथोंमें] माला, पुस्तक, पाश तथा अंकुश धारण कर रखा है, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं; आप भगवती अन्नपूर्णा हैं, मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ९॥

आप घोर संकटकी स्थितिमें अपने भक्तोंकी रक्षा करती हैं, आप भक्तोंको महान् अभय प्रदान करती हैं, आप मातृस्वरूपा हैं, आप कृपासमुद्र हैं, आप साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं, आप सदा कल्याण करनेवाली हैं, आप भगवान् विश्वनाथका ऐश्वर्य धारण करनेवाली हैं, [यज्ञका विध्वंस करके] आप दक्षको रुलानेवाली हैं, आप रोग-दोषोंसे मुक्त करनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं, मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ १०॥

सारे वैभवोंसे सदा परिपूर्ण रहनेवाली तथा भगवान् शंकरकी प्राणप्रिया हे अन्नपूर्णे! हे पार्वति! ज्ञान तथा वैराग्यकी सिद्धिके लिये मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ११॥

माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥ १२॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीअन्नपूर्णास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

४३—श्रीअन्नपूर्णा-माहात्म्य

लालची ललात, बिललात द्वार-द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै ना बिसूरना।
ताकत सराध, कै बिबाह, कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल-तूरना॥
प्यासेहूँ न पावै बारि, भूखें न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार, दारि घूर ना।
सोककी अगार, दुखभार भरो तौलौं जन
जौलौं देबी द्रवै न भवानी अन्नपूरना॥

(कवितावली)

भगवती पार्वती मेरी माता हैं, भगवान् महेश्वर मेरे पिता हैं, सभी शिवभक्त मेरे बन्धु-बान्धव हैं और तीनों लोक मेरा अपना ही देश है [यह भावना सर्वदा मेरे मनमें बनी रहे]।

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीअन्नपूर्णास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

जबतक देवी अन्नपूर्णा कृपा नहीं करतीं, तभीतक मनुष्य लालची होकर (टुकड़े-टुकड़ेके लिये) लालायित होता है और दीन तथा मलिनमुख हो द्वार-द्वारपर बिलबिलाता रहता है, परंतु उसके मनकी चिन्ता दूर नहीं होती; कहीं श्राद्ध, विवाह अथवा कोई उत्सव तो नहीं, इस बातकी टोहमें रहता है; चंचल होकर इधर-उधर घूमता है और यदि कहीं ढोल या तुरहीका शब्द होता है तो पूछता है [कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं है?] प्यास लगनेपर उसे जल नहीं मिलता, भूख होनेपर चार चने भी नहीं मिलते। पहाड़के समान भोजनकी इच्छा होती है, परंतु घूरेपर पड़ी दाल भी नहीं मिलती। इस प्रकार वह शोकका आश्रय-स्थान और दुःखके भारसे दबा रहता है।

श्रीविन्ध्येश्वरीस्तोत्रम्

४४—श्रीविन्ध्येश्वरीस्तोत्रम्

निशुम्भशुम्भमर्दिनीं प्रचण्डमुण्डखण्डिनीम्।
वने रणे प्रकाशिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ १॥
त्रिशूलरत्नधारिणीं धराविघातहारिणीम्।
गृहे गृहे निवासिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ २॥
दरिद्रदुःखहारिणीं सतां विभूतिकारिणीम्।
वियोगशोकहारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ३॥
लसत्सुलोललोचनां लतां सदावरप्रदाम्।
कपालशूलधारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ४॥

शुम्भ तथा निशुम्भका संहार करनेवाली, चण्ड तथा मुण्डका विनाश करनेवाली, वनमें तथा युद्धस्थलमें पराक्रम प्रदर्शित करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ १॥

त्रिशूल तथा रत्न धारण करनेवाली, पृथ्वीका संकट हरनेवाली और घर-घरमें निवास करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ २॥

दरिद्रजनोंका दुःख दूर करनेवाली, सज्जनोंका कल्याण करनेवाली और वियोगजनित शोकका हरण करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ३॥

सुन्दर तथा चंचल नेत्रोंसे सुशोभित होनेवाली, सुकुमार नारी-विग्रहसे शोभा पानेवाली, सदा वर प्रदान करनेवाली और कपाल तथा शूल धारण करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ४॥

करे मुदा गदाधरां शिवां शिवप्रदायिनीम्।
वरावराननां शुभां भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ५॥
ऋषीन्द्रजामिनप्रदां त्रिधास्यरूपधारिणीम्।
जले स्थले निवासिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ६॥
विशिष्टसृष्टिकारिणीं विशालरूपधारिणीम्।
महोदरां विशालिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ७॥
पुरन्दरादिसेवितां मुरादिवंशखण्डिनीम्।
विशुद्धबुद्धिकारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ८॥

॥ इति श्रीविन्ध्येश्वरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

प्रसन्नतापूर्वक हाथमें गदा धारण करनेवाली, कल्याणमयी, सर्वविध मंगल प्रदान करनेवाली तथा सुरूप-कुरूप सभी रूपोंमें व्याप्त परम शुभस्वरूपा भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ५॥

ऋषिश्रेष्ठके यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट होनेवाली, ज्ञानालोक प्रदान करनेवाली; महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीरूपसे तीन स्वरूपोंको धारण करनेवाली और जल तथा स्थलमें निवास करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ६॥

विशिष्टताकी सृष्टि करनेवाली, विशाल स्वरूप धारण करनेवाली, महान् उदरसे सम्पन्न तथा व्यापक विग्रहवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ७॥

इन्द्र आदि देवताओंसे सेवित, मुर आदि राक्षसोंके वंशका नाश करनेवाली तथा अत्यन्त निर्मल बुद्धि प्रदान करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीविन्ध्येश्वरीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

काशीस्तोत्राणि

४५—काशीपञ्चकम्

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः
सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका च।
ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा
सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा॥ १॥
यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं
चराचरं भाति मनोविलासम्।
सच्चित्सुखैका परमात्मरूपा
सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा॥ २॥
कोशेषु पञ्चस्वधिराजमाना
बुद्धिर्भवानी प्रतिदेहगेहम्।

जहाँ मनोवृत्ति आत्यन्तिक रूपसे निरुद्ध होकर परम शान्तिका साधन बन जाती है, वह मणिकर्णिका समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ [काशीका हृदय] है। [काशीमाता कहती हैं—] जहाँ विमल ज्ञानगंगाका आदिकालसे प्रवाह चला आ रहा है, वह आत्मबोधरूपा काशी मैं हूँ॥ १॥

जिस (विज्ञानमयीकाशी)-में यह चराचर सृष्टिरूप प्रपंच कल्पित इन्द्रजाल तथा मनोराज्यके समान [मिथ्यारूप] प्रतीत होता है, अद्वितीय सत्-चित्-आनन्दस्वरूपा तथा परमात्मरूपा वह आत्मबोधरूपा काशी मैं हूँ॥ २॥

पंचकोशों* में अधिष्ठानरूपसे विराजमान तथा जहाँ प्रत्येक देहमें

---

* अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमयकोश एवं काशीकी पंचकोशी।

साक्षी शिवः सर्वगतोऽन्तरात्मा
सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा ॥ ३ ॥

काश्यां हि काशते काशी काशी सर्वप्रकाशिका।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका ॥ ४ ॥

काशीक्षेत्रं शरीरं त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगङ्गा
भक्तिः श्रद्धा गयेयं निजगुरुचरणध्यानयोगः प्रयागः।
विश्वेशोऽयं तुरीयः सकलजनमनःसाक्षिभूतोऽन्तरात्मा
देहे सर्वं मदीये यदि वसति पुनस्तीर्थमन्यत्किमस्ति ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं काशीपञ्चकं सम्पूर्णम् ॥

भवानी बुद्धिरूपसे प्रतिष्ठित हैं और भगवान् शिव सबके साक्षीरूपसे सभी प्राणियोंके हृदयस्थलमें विराजमान रहते हैं, वह आत्मबोधरूपा काशी मैं हूँ ॥ ३ ॥

काशीमें ही सब कुछ प्रकाशित होता है, काशी ही सबको प्रकाशित करनेवाली है, उस आत्मप्रकाशस्वरूपा काशीको जिसने जान लिया, उसने ही सचमुच काशीको प्राप्त किया ॥ ४ ॥

मेरा शरीर ही काशीक्षेत्र है, मेरा चैतन्य (ज्ञान) त्रिभुवनजननी सर्वव्यापिनी गंगा है। मेरी यह भक्ति और श्रद्धा गयातीर्थ है तथा गुरुचरणोंमें ध्यान लगाना ही प्रयागराज है। मेरी आत्मा ही भगवान् विश्वनाथ हैं, जो सभी प्राणियोंके अन्तरात्मा तथा चित्तके साक्षी हैं। जब मेरे देहमें ही इन सबका निवास है, तब अन्य तीर्थोंसे क्या प्रयोजन?

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित काशीपंचक सम्पूर्ण हुआ ॥

४६—काशी-स्तुति

सेइअ सहित सनेह देह भरि, कामधेनु कलि कासी।
समनि सोक-संताप-पाप-रुज, सकल-सुमंगल-रासी॥ १॥
मरजादा चहुँओर चरनबर, सेवत सुरपुर-बासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी॥ २॥
अंतरऐन ऐन भल, थन फल, बच्छ बेद-बिस्वासी।
गलकंबल बरुना बिभाति जनु, लूम लसति, सरिताऽसी॥ ३॥
दंडपानि भैरव बिषान, मलरुचि-खलगन-भयदा-सी।
लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा-सी॥ ४॥

इस कलियुगमें काशीरूपी कामधेनुका प्रेमसहित जीवनभर सेवन करना चाहिये। यह शोक, सन्ताप, पाप और रोगका नाश करनेवाली तथा सब प्रकारके कल्याणोंकी खानि है॥ १॥

काशीके चारों ओरकी सीमा इस कामधेनुके सुन्दर चरण हैं। स्वर्गवासी देवता इसके चरणोंकी सेवा करते हैं। यहाँके सब तीर्थस्थान इसके शुभ अंग हैं और नाशरहित अगणित शिवलिंग इसके रोम हैं॥ २॥

अन्तर्गृही (काशीका मध्यभाग) इस कामधेनुका ऐन* (गद्दी) है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चारों फल इसके चार थन हैं; वेद-शास्त्रोंपर विश्वास रखनेवाले आस्तिक लोग इसके बछड़े हैं—विश्वासी पुरुषोंको ही इसमें निवास करनेसे मुक्तिरूपी अमृतमय दूध मिलता है; सुन्दर वरुणा नदी इसकी गल-कंबलके समान शोभा बढ़ा रही है और असी नामक नदी पूँछके रूपमें शोभित हो रही है॥ ३॥

दण्डधारी भैरव इसके सींग हैं, पापमें मन रखनेवाले दुष्टोंको उन सींगोंसे यह सदा डराती रहती है। लोलार्क (कुण्ड) और त्रिलोचन (एक तीर्थ) इसके नेत्र हैं तथा कर्णघण्टा नामक तीर्थ इसके गलेका घण्टा है॥ ४॥

---

* थनोंके ऊपरका भाग जिसमें दूध भरा रहता है।

मनिकर्निका बदन-ससि सुंदर, सुरसरि-सुख सुखमा-सी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन, पंचकोसि महिमा-सी॥ ५॥
बिस्वनाथ पालक कृपालुचित, लालति नित गिरिजा-सी।
सिद्धि, सची, सारद पूजहिं मन जोगवति रहति रमा-सी॥ ६॥
पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गब्य सुपंचनदा-सी।
ब्रह्म-जीव-सम रामनाम जुग, आखर बिस्व बिकासी॥ ७॥
चारितु चरति करम कुकरम करि, मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन, जेहि चहत प्रपंच-उदासी॥ ८॥

मणिकर्णिका इसका चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है, गंगाजीसे मिलनेवाला पाप-ताप-नाशरूपी सुख इसकी शोभा है। भोग और मोक्षरूपी सुखोंसे परिपूर्ण पंचकोसीकी परिक्रमा ही इसकी महिमा है॥ ५॥

दयालुहृदय विश्वनाथजी इस कामधेनुका पालन-पोषण करते हैं और पार्वती-सरीखी स्नेहमयी जगज्जननी इसपर सदा प्यार करती रहती हैं; आठों सिद्धियाँ, सरस्वती और इन्द्राणी शची इसका पूजन करती हैं; जगत्का पालन करनेवाली लक्ष्मी-सरीखी इसका रुख देखती रहती हैं॥ ६॥

'नमः शिवाय' यह पंचाक्षरी मन्त्र ही इसके पाँच प्राण हैं। भगवान् विन्दुमाधव ही आनन्द हैं। पंचनदी (पंचगंगा) तीर्थ ही इसके पंचगव्य* हैं। यहाँ संसारको प्रकट करनेवाले राम-नामके दो अक्षर 'रकार' और 'मकार' इसके अधिष्ठाता ब्रह्म और जीव हैं॥ ७॥

यहाँ मरनेवाले जीवोंका सब सुकर्म और कुकर्मरूपी घास यह चर जाती है, जिससे उनको वही परमपदरूपी पवित्र दूध मिलता है, जिसको संसारके विरक्त महात्मागण चाहा करते हैं॥ ८॥

---

* दूध, दही, घी, गोमय और गोमूत्र।

कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति कला-सी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी॥ ९॥
(विनय-पत्रिका)

४७—श्रीमणिकर्णिकाष्टकम्

त्वत्तीरे मणिकर्णिके हरिहरौ सायुज्यमुक्तिप्रदौ
वादं तौ कुरुतः परस्परमुभौ जन्तोः प्रयाणोत्सवे।
मद्रूपो मनुजोऽयमस्तु हरिणा प्रोक्तः शवस्तत्क्षणात्
तन्मध्याद् भृगुलाञ्छनो गरुडगः पीताम्बरो निर्गतः॥ १॥
इन्द्राद्यास्त्रिदशाः पतन्ति नियतं भोगक्षये ते पुन-
र्जायन्ते मनुजास्ततोऽपि पशवः कीटाः पतङ्गादयः।

पुराणोंमें लिखा है कि भगवान् विष्णुने सम्पूर्ण कला लगाकर अपने हाथोंसे इसकी रचना की है। हे तुलसीदास! यदि तू सुखी होना चाहता है तो काशीमें रहकर श्रीराम-नाम जपा कर॥ ९॥

हे मणिकर्णिके! आपके तटपर भगवान् विष्णु और शिव सायुज्य-मुक्ति प्रदान करते हैं। [एक बार] जीवके महाप्रयाणके समय वे दोनों [उस जीवको अपने-अपने लोक ले जानेके लिये] आपसमें स्पर्धा कर रहे थे। भगवान् विष्णु शिवजीसे बोले कि यह मनुष्य अब मेरा स्वरूप हो चुका है। उनके ऐसा कहते ही वह जीव उसी क्षण भृगुके पद-चिह्नोंसे सुशोभित वक्षःस्थलवाला तथा पीताम्बरधारी होकर गरुड़पर सवार हो उन दोनोंके बीचसे निकल गया॥ १॥

इन्द्र आदि देवतागणोंका भी यथासमय पतन होता है। भोगके

ये मातर्मणिकर्णिके तव जले मज्जन्ति निष्कल्मषाः
सायुज्येऽपि किरीटकौस्तुभधरा नारायणाः स्युर्नराः ॥ २ ॥
काशी धन्यतमा विमुक्तिनगरी सालङ्कृता गङ्गया
तत्रेयं मणिकर्णिका सुखकरी मुक्तिर्हि तत्किङ्करी।
स्वर्लोकस्तुलितः सहैव विबुधैः काश्या समं ब्रह्मणा
काशी क्षोणितले स्थिता गुरुतरा स्वर्गो लघुः खे गतः ॥ ३ ॥
गङ्गातीरमनुत्तमं हि सकलं तत्रापि काश्युत्तमा
तस्यां सा मणिकर्णिकोत्तमतमा यत्रेश्वरो मुक्तिदः।

पूर्ण हो जानेपर वे पुनः मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होते हैं और उसके बाद भी पशु-कीट-पतंग आदिके रूपमें जन्म लेते हैं; किंतु हे माता मणिकर्णिके! जो मनुष्य आपके जलमें स्नान करते हैं, वे निष्पाप हो जाते हैं और सायुज्य-मुक्ति हो जानेपर किरीट तथा कौस्तुभधारी साक्षात् नारायणरूप हो जाते हैं॥ २॥

गंगासे अलंकृत विमुक्तिनगरी काशी परम धन्य है। उस काशीमें यह मणिकर्णिका परमानन्द प्रदान करनेवाली है; मुक्ति तो निश्चितरूपसे उसकी दासी है। ब्रह्माजी जब काशीको और सभी देवताओंसहित स्वर्गको तौलने लगे तब काशी [स्वर्गकी तुलनामें] भारी पड़नेके कारण पृथ्वीतलपर स्थित हो गयी और स्वर्ग हलका पड़नेके कारण आकाशमें चला गया॥ ३॥

गंगाके सम्पूर्ण तट अत्युत्तम हैं; किंतु उनमें काशी सर्वोत्तम है। उस काशीमें वह मणिकर्णिका उत्तमोत्तम है, जहाँ मुक्ति प्रदान

देवानामपि दुर्लभं स्थलमिदं पापौघनाशक्षमं
पूर्वोपार्जितपुण्यपुञ्जगमकं पुण्यैर्जनैः प्राप्यते॥ ४॥
दुःखाम्भोनिधिमग्नजन्तुनिवहास्तेषां कथं निष्कृति-
र्ज्ञात्वैतद्धि विरञ्चिना विरचिता वाराणसी शर्मदा।
लोकाः स्वर्गमुखास्ततोऽपि लघवो भोगान्तपातप्रदाः
काशी मुक्तिपुरी सदा शिवकरी धर्मार्थकामोत्तरा॥ ५॥
एको वेणुधरो धराधरधरः श्रीवत्सभूषाधरो
यो ह्येकः किल शङ्करो विषधरो गङ्गाधरो माधरः।

करनेवाले साक्षात् भगवान् विश्वनाथ विराजते हैं। सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेमें समर्थ यह स्थल देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। पूर्वजन्ममें अर्जित किये गये पुण्यसमूहकी प्रतीति करानेवाला यह स्थान पुण्यशाली लोगोंको ही सुलभ हो पाता है॥ ४॥

दुःख-सागरमें डूबे हुए जो प्राणिसमूह हैं उनका उद्धार कैसे हो सकेगा, यह विचार करके ब्रह्माजीने कल्याणदायिनी वाराणसीपुरीका निर्माण किया। स्वर्ग आदि प्रधान लोक भोगके पूर्ण जानेके पश्चात् पतनकी प्राप्ति करानेके कारण उस काशीसे बहुत छोटे हैं। यह काशी सदा मुक्ति प्रदान करनेवाली तथा कल्याण करनेवाली है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टय प्रदान करती है॥ ५॥

मुरली धारण करनेवाले, गोवर्धनपर्वत धारण करनेवाले तथा वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न धारण करनेवाले विष्णु एक ही हैं, उसी प्रकार कण्ठमें विष धारण करनेवाले, अपनी जटामें गंगाको धारण

ये मातर्मणिकर्णिके तव जले मज्जन्ति ते मानवा
रुद्रा वा हरयो भवन्ति बहवस्तेषां बहुत्वं कथम्॥ ६॥
त्वत्तीरे मरणं तु मङ्गलकरं देवैरपि श्लाघ्यते
शक्रस्तं मनुजं सहस्रनयनैर्द्रष्टुं सदा तत्परः।
आयान्तं सविता सहस्रकिरणैः प्रत्युद्गतोऽभूत्सदा
पुण्योऽसौ वृषगोऽथवा गरुडगः किं मन्दिरं यास्यति॥ ७॥
मध्याह्ने मणिकर्णिकास्नपनजं पुण्यं न वक्तुं क्षमः
स्वीयैः शब्दशतैश्चतुर्मुखसुरो वेदार्थदीक्षागुरुः।

करनेवाले और अर्द्धांगमें उमाको धारण करनेवाले जो भगवान् शंकर हैं, वे भी एक ही हैं; किंतु हे माता मणिकर्णिके! जो मनुष्य आपके जलमें अवगाहन करते हैं, वे सभी रुद्र तथा विष्णुस्वरूप हो जाते हैं, उनके बहुत्वके विषयमें क्या कहा जाय!॥ ६॥

[हे मातः!] आपके तटपर होनेवाली मंगलकारी मृत्युकी तो देवता भी सराहना करते हैं। देवराज इन्द्र अपने हजार नेत्रोंसे उस मनुष्यका दर्शन करनेके लिये सदा लालायित रहते हैं। सूर्यदेव भी उस जीवको आता हुआ देखकर अपनी हजार किरणोंसे उसके सम्मानके लिये सदा उसकी ओर बढ़ते हैं। [यह देखकर देवतागण सोचते हैं कि] वृषभपर सवार होकर अथवा गरुड़पर आसीन होकर यह पुण्यात्मा जीव [कैलास अथवा वैकुण्ठ] न जाने किस लोकमें जायगा?॥ ७॥

वेदार्थतत्त्वकी दीक्षा देनेवाले गुरुस्वरूप चतुर्मुख ब्रह्मदेव अपने

योगाभ्यासबलेन चन्द्रशिखरस्तत्पुण्यपारं गत-
स्त्वत्तीरे प्रकरोति सुप्तपुरुषं नारायणं वा शिवम् ॥ ८ ॥
कृच्छ्रैः कोटिशतैः स्वपापनिधनं यच्चाश्वमेधैः फलं
तत्सर्वं मणिकर्णिकास्नपनजे पुण्ये प्रविष्टं भवेत्।
स्नात्वा स्तोत्रमिदं नरः पठति चेत्संसारपाथोनिधिं
तीर्त्वा पल्वलवत्प्रयाति सदनं तेजोमयं ब्रह्मणः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीमणिकर्णिकाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

सैकड़ों शब्दोंसे भी मध्याह्नकालमें मणिकर्णिकाके स्नानजन्य पुण्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। केवल चन्द्रमौलि भगवान् शिव अपने योगाभ्यासके बलसे उस पुण्यको जानते हैं तथा [हे माता!] वे ही आपके तटपर मृत्युको प्राप्त पुरुषको साक्षात् नारायण अथवा शिव बना देते हैं ॥ ८ ॥

करोड़ों-करोड़ों कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्त व्रतोंसे जो पापका नाश होता है तथा अश्वमेधयज्ञोंसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब मणिकर्णिकामें स्नान करनेसे प्राप्त पुण्यमें समाविष्ट हो जाता है। यदि मनुष्य [वहाँ] स्नान करके इस स्तोत्रका पाठ करे तो वह संसारसागरको एक छोटे-से तालाबकी भाँति पार करके तेजोमय ब्रह्मलोकमें पहुँच जाता है ॥ ९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीमणिकर्णिकाष्टक सम्पूर्ण हुआ ॥

गङ्गास्तोत्राणि

४८—श्रीगङ्गाष्टकम्

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथि प्रार्थये।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खत-
स्त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥ १ ॥
त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गो वरं
त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः।
नैवान्यत्र मदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टघण्टारण-
त्कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥ २ ॥

पृथ्वीकी शृंगारमाला, पार्वतीजीकी सपत्नी और स्वर्गारोहणके लिये वैजयन्ती पताकारूपिणी हे माता भागीरथि! मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे तटपर निवास करते हुए, तुम्हारे जलका पान करते हुए, तुम्हारी तरंगभंगीमें तरंगायमान होते हुए, तुम्हारा नामस्मरण करते हुए और तुम्हींमें दृष्टि लगाये हुए मेरा शरीरपात हो॥ १॥

हे गंगे! तुम्हारे तटवर्ती तरुवरके कोटरमें पक्षी होकर रहना अच्छा है तथा हे नरकनिवारिणि ! तुम्हारे जलमें मत्स्य या कच्छप होकर जन्म लेना भी बहुत अच्छा है, किंतु दूसरी जगह मदमत्त गजराजोंके जमघटके घण्टारवसे भयभीत हुई शत्रुमहिलाओंसे स्तुत पृथ्वीपति भी होना अच्छा नहीं॥ २॥

उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा
वारीणः स्यां जननमरणक्लेशदुःखासहिष्णुः।
न त्वन्यत्र प्रविरलरणत्कङ्कणक्वाणमिश्रं
वारस्त्रीभिश्चमरमरुता वीजितो भूमिपालः॥ ३॥
काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितम्।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः॥ ४॥
अभिनवबिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णो-
र्मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला ।

हे मातः! मैं भले ही आपके आर-पार रहनेवाला जन्म-मरणरूप क्लेशको सहन न करनेवाला कोई बैल, पक्षी, घोड़ा, सर्प अथवा हाथी हो जाऊँ, किंतु [आपसे दूर] किसी अन्य स्थानपर ऐसा राजा भी न होऊँ, जिसपर वाराङ्गनाएँ मन्द-मन्द झनकारते हुए कंकणोंकी सुमधुर ध्वनिसे युक्त चमर डुला रही हों॥ ३॥

हे परमेश्वरि! हे त्रिपथगे! हे भागीरथि! [मरनेके अनन्तर] देवांगनाओंके करकमलोंमें सुशोभित सुन्दर चमरोंकी हवासे सेवित हुआ मैं अपने मृत शरीरको काकोंसे कुरेदा जाता हुआ, कुत्तोंसे भक्षित होता हुआ, गीदड़ोंसे लुण्ठित होता हुआ, तुम्हारे स्रोतमें पड़कर बहता हुआ, कभी किनारेके स्वल्प जलमें हिलता हुआ और फिर तरंगभंगियोंसे आन्दोलित होता हुआ कब देखूँगा?॥ ४॥

जो भगवान् विष्णुके चरणकमलका नूतन मृणाल (कमलनाल) है तथा कामारि त्रिपुरारिके ललाटकी मालती-माला है, वह मोक्षलक्ष्मीकी

जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः
क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु ॥ ५ ॥
एतत्तालतमालसालसरलव्यालोलवल्लीलता-
च्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दुकुन्दोज्ज्वलम्।
गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूत्तुङ्गस्तनास्फालितं
स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ॥ ६ ॥
गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ॥ ७ ॥
पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि
शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि।

विलक्षण विजयपताका जयको प्राप्त हो। कलिकलंकको नष्ट करनेवाली, वह जाह्नवी हमें पवित्र करे ॥ ५ ॥

जो ताल, तमाल, साल, सरल तथा चंचल वल्लरी और लताओंसे आच्छादित है, सूर्यकिरणोंके तापसे रहित है, शंख, कुन्द और चन्द्रके समान उज्ज्वल है तथा गन्धर्व, देवता, सिद्ध और किन्नरोंकी कामिनियोंके पीन पयोधरोंसे आस्फालित (टकराया हुआ) है, वह अत्यन्त निर्मल गंगाजल नित्यप्रति मेरे स्नानके लिये हो ॥ ६ ॥

जो श्रीमुरारिके चरणोंसे उत्पन्न हुआ है, श्रीशंकरके सिरपर विराजमान है तथा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाला है, वह मनोहर गंगाजल मुझे पवित्र करे ॥ ७ ॥

जो पापोंको हरण करनेवाला, दुष्कर्मोंका शत्रु, तरंगमय, शैल-खण्डोंपर बहनेवाला, पर्वतराज हिमालयकी गुहाओंको विदीर्ण करनेवाला,

झङ्कारकारि हरिपादरजोऽपहारि
गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि॥ ८॥
गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते
वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः।
प्रक्षाल्य गात्रकलिकल्मषपङ्कमाशु
मोक्षं लभेत् पतति नैव नरो भवाब्धौ॥ ९॥

॥ इति श्रीमहर्षिवाल्मीकिविरचितं श्रीगङ्गाष्टकं सम्पूर्णम्॥

४९—श्रीगङ्गाष्टकम्

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि।

मधुर कलकल-ध्वनियुक्त और श्रीहरिकी चरणरजको धोनेवाला है, वह निरन्तर शुभकारी गंगाजल मुझे पवित्र करे॥ ८॥

जो पुरुष वाल्मीकिजीके रचे हुए इस कल्याणप्रद गंगाष्टकको प्रातःकाल एकाग्रचित्तसे पढ़ता है, वह अपने शरीरके कलिकल्मषरूप कीचड़को धोकर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है और फिर संसार-समुद्रमें नहीं गिरता॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीमहर्षिवाल्मीकिविरचित श्रीगङ्गाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

हे देवि! तुम्हारे तीरपर केवल तुम्हारे जलका पान करता हुआ, विषय-तृष्णासे रहित हो, मैं श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना करूँ।

सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद॥ १॥
भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः-
कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति॥ २॥
ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु॥ ३॥
मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम्।

हे सकल पापविनाशिनि! स्वर्गसोपानरूपिणि! तरलतरतरंगिणि! देवि गंगे! मुझपर प्रसन्न हो॥ १॥

हे भगवति! तुम महादेवजीके मस्तककी लीलामयी माला हो, जो प्राणी तुम्हारे जलकणके अणुमात्रको भी स्पर्श करते हैं, वे कलिकलंकके भयको त्यागकर, देवपुरीकी चँवरधारिणी अप्सराओंकी गोदमें शयन करते हैं॥ २॥

ब्रह्माण्डको फोड़कर निकलनेवाली, महादेवजीकी जटा-लताको उल्लसित करती हुई, स्वर्गलोकसे गिरती हुई, सुमेरुकी गुफा और पर्वतमालासे झड़ती हुई, पृथ्वीपर लोटती हुई, पापसमूहकी सेनाको कड़ी फटकार देती हुई, समुद्रको भरती हुई, देवपुरीकी पवित्र नदी गंगा हमें पवित्र करे॥ ३॥

स्नान करते हुए हाथियोंके कुम्भस्थलसे झरते हुए मदरूपी मदिराकी गन्धके कारण मधुपवृन्द जिससे मतवाले हो रहे हैं, सिद्धोंकी स्त्रियोंके स्तनोंसे बहे हुए कुंकुमके मिलनेसे जो पिंगलवर्ण हो रहा है तथा

सायंप्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम्॥ ४॥
आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते॥ ५॥
शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी।
शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी॥ ६॥

सायं-प्रातः मुनियोंद्वारा अर्पित कुश और पुष्पोंके समूहसे जो किनारेपर ढका हुआ है, हाथियोंके बच्चोंकी सूँड़ोंसे जिनकी तरंगोंका वेग आक्रान्त हो रहा है, वह गंगाजल हमारा कल्याण करे॥ ४॥

जह्नु महर्षिकी कन्या, पापनाशिनी भगवती भागीरथी, पहले ब्रह्माके कमण्डलुमें जलरूपसे, फिर शेषशायी भगवान्के पवित्र चरणोदकरूपसे और तदनन्तर महादेवजीकी जटाको सुशोभित करनेवाली मणिरूपसे दीख रही है॥ ५॥

हिमालयसे उतरनेवाली, अपने जलमें गोता लगानेवालोंका उद्धार करनेवाली, समुद्रविहारिणी, संसार-संकटोंका नाश करनेवाली, [विस्तारमें] शेषनागका अनुकरण करनेवाली, शिवजीके मस्तकपर लताके समान सुशोभित, काशीक्षेत्रमें बहनेवाली, मनोहारिणी गंगाजी विजयिनी हो रही हैं॥ ६॥

कुतो वीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पततति यदि कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः॥ ७॥
गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद॥ ८॥
मातर्जाह्नवि शम्भुसङ्गवलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम्।

यदि तुम्हारी तरंग नेत्रोंके सामने आ जाय, तो फिर संसारकी तरंग कहाँ रह सकती है? तुम्हारे थोड़े-से जलका पान करनेपर तुम वैकुण्ठलोकमें निवास देती हो, हे गंगे! यदि जीवोंका शरीर तुम्हारी गोदमें छूट जाता है, तो हे मातः! उस समय इन्द्रपदकी प्राप्ति भी अत्यन्त तुच्छ मालूम होती है॥ ७॥

तीनों लोकोंकी सार, सर्वदेवांगनाएँ जिसमें स्नान करती हैं, ऐसे विस्तृत जलवाली, पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी, स्वर्ग-मार्गमें भगवान्‌के चरणोंकी धूलि धोनेवाली हे गंगे! जब तुम्हारे जलका एक कणमात्र ही ब्रह्महत्यादि पापोंका प्रायश्चित्त है तो हे त्रैलोक्यपापनाशिनि! तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है? हे देवि गंगे! प्रसन्न हो॥ ८॥

हे शिवकी संगिनी मातः गंगे! शरीर शान्त होनेके समय प्राण-यात्राके उत्सवमें, तुम्हारे तीरपर, सिर नवाकर हाथ जोड़े हुए,

सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे
भूयाद्भक्तिरविच्युताहरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती॥ ९ ॥
गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतो नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥ १० ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीगङ्गाष्टकं सम्पूर्णम्॥

५०—श्रीगङ्गास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले॥ १ ॥
भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः।
नाहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम्॥ २ ॥

आनन्दसे भगवान्के चरणयुगलका स्मरण करते हुए मेरी अविचल-भावसे हरि-हरमें अभेदात्मिका नित्य भक्ति बनी रहे॥ ९ ॥

जो पुरुष शुद्ध होकर इस पवित्र श्रीगंगाष्टकका पाठ करता है; वह सब पापोंसे मुक्त होकर वैकुण्ठलोकमें जाता है॥ १० ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीगंगाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

हे देवि गंगे! तुम देवगणकी ईश्वरी हो, हे भगवति! तुम त्रिभुवनको तारनेवाली, विमल और तरल तरंगमयी तथा शंकरके मस्तकपर विहार करनेवाली हो। हे मातः! तुम्हारे चरणकमलोंमें मेरी मति लगी रहे॥ १ ॥

हे भागीरथि! तुम सब प्राणियोंको सुख देती हो, हे मातः! वेद-शास्त्रमें तुम्हारे जलका माहात्म्य वर्णित है, मैं तुम्हारी महिमा कुछ नहीं जानता, हे दयामयि! मुझ अज्ञानीकी रक्षा करो॥ २ ॥

हरिपदपाद्यतरङ्गिणि गङ्गे हिमविधुमुक्ताधवलतरङ्गे।
दूरीकुरु मम दुष्कृतिभारं कुरु कृपया भवसागरपारम्॥ ३॥
तव जलममलं येन निपीतं परमपदं खलु तेन गृहीतम्।
मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्तः किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः॥ ४॥
पतितोद्धारिणि जाह्नवि गङ्गे खण्डितगिरिवरमण्डितभङ्गे।
भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये पतितनिवारिणि त्रिभुवनधन्ये॥ ५॥
कल्पलतामिव फलदां लोके प्रणमति यस्त्वां न पतति शोके।
पारावारविहारिणि गङ्गे विमुखयुवतिकृततरलापाङ्गे॥ ६॥

हे गंगे! तुम श्रीहरिके चरणोंकी चरणोदकमयी नदी हो, हे देवि! तुम्हारी तरंगें हिम, चन्द्रमा और मोतीकी भाँति श्वेत हैं, तुम मेरे पापोंका भार दूर कर दो और कृपा करके मुझे भवसागरके पार उतारो॥ ३॥

हे देवि! जिसने तुम्हारा जल पी लिया, अवश्य ही उसने परमपद पा लिया, हे मातः गंगे! जो तुम्हारी भक्ति करता है, उसको यमराज नहीं देख सकता (अर्थात् तुम्हारे भक्तगण यमपुरीमें न जाकर वैकुण्ठमें जाते हैं)॥ ४॥

हे पतितजनोंका उद्धार करनेवाली जह्नुकुमारी गंगे! तुम्हारी तरंगें गिरिराज हिमालयको खण्डित करके बहती हुई सुशोभित होती हैं, तुम भीष्मकी जननी और जह्नुमुनिकी कन्या हो, पतितपावनी होनेके कारण तुम त्रिभुवनमें धन्य हो॥ ५॥

हे मातः! तुम इस लोकमें कल्पलताकी भाँति फल प्रदान करनेवाली हो, तुम्हें जो प्रणाम करता है, वह कभी शोकमें नहीं पड़ता, हे गंगे! मानिनि वनिताके समान चंचल कटाक्षवाली तुम समुद्रके साथ विहार करती हो॥ ६॥

तव चेन्मातः स्रोतःस्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः।
नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे॥ ७ ॥
पुनरसदङ्गे पुण्यतरङ्गे जय जय जाह्नवि करुणापाङ्गे।
इन्द्रमुकुटमणिराजितचरणे सुखदे शुभदे भृत्यशरण्ये॥ ८ ॥
रोगं शोकं तापं पापं हर मे भगवति कुमतिकलापम्।
त्रिभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे॥ ९ ॥
अलकानन्दे परमानन्दे कुरु करुणामयि कातरवन्द्ये।
तव तटनिकटे यस्य निवासः खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः॥ १० ॥

हे गंगे! जिसने तुम्हारे प्रवाहमें स्नान कर लिया, वह फिर मातृगर्भमें प्रवेश नहीं करता, हे जाह्नवि! तुम भक्तोंको नरकसे बचाती हो और उनके पापोंका नाश करती हो, तुम्हारा माहात्म्य अतीव उच्च है॥ ७॥

हे करुणाकटाक्षवाली जह्नुपुत्री गंगे! मेरे अपावन अंगोंपर अपनी पावन तरंगोंसे युक्त हो उल्लसित होनेवाली, तुम्हारी जय हो! जय हो!! तुम्हारे चरण इन्द्रके मुकुटमणिसे प्रदीप्त हैं, तुम सबको सुख और शुभ देनेवाली हो और अपने सेवकको आश्रय प्रदान करती हो॥ ८॥

हे भगवति! तुम मेरे रोग, शोक, ताप, पाप और कुमति-कलापको हर लो, तुम त्रिभुवनकी सार और वसुधाका हार हो, हे देवि! इस संसारमें एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो॥ ९॥

हे दुःखियोंकी वन्दनीया देवि गंगे! तुम अलकापुरीको आनन्द देनेवाली और परमानन्दमयी हो, तुम मुझपर कृपा करो, हे मातः! जो तुम्हारे तटके निकट वास करता है, वह मानो वैकुण्ठमें ही वास करता है॥ १०॥

वरमिह नीरे कमठो मीनः किं वा तीरे शरटः क्षीणः।
अथवा श्वपचो मलिनो दीनस्तव न हि दूरे नृपतिकुलीनः॥ ११॥
भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये देवि द्रवमयि मुनिवरकन्ये।
गङ्गास्तवमिममलं नित्यं पठति नरो यः स जयति सत्यम्॥ १२॥
येषां हृदये गङ्गाभक्तिस्तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः।
मधुराकान्तापज्झटिकाभिः परमानन्दकलितललिताभिः॥ १३॥
गङ्गास्तोत्रमिदं भवसारं वाञ्छितफलदं विमलं सारम्।
शङ्करसेवकशङ्कररचितं पठति सुखी स्तव इति च समाप्तः॥ १४॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीगङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

हे देवि! तुम्हारे जलमें कच्छप या मीन बनकर रहना अच्छा है, तुम्हारे तीरपर दुबला-पतला गिरगिट (कृकलास) बनकर रहना अच्छा है या अति मलिन दीन चाण्डालकुलमें जन्म ग्रहण कर रहना अच्छा है, परंतु (तुमसे) दूर कुलीन नरपति होकर रहना भी अच्छा नहीं॥ ११॥

हे देवि! तुम त्रिभुवनकी ईश्वरी हो, तुम पावन और धन्य हो, जलमयी तथा मुनिवरकी कन्या हो। जो प्रतिदिन इस गंगास्तोत्रका पाठ करता है, वह निश्चय ही संसारमें जयलाभ कर सकता है॥ १२॥

जिनके हृदयमें गंगाके प्रति अचला भक्ति है, वे सदा ही आनन्द और मुक्तिलाभ करते हैं; यह स्तुति परमानन्दमयी सुललित पदावलीसे युक्त, मधुर और कमनीय है॥ १३॥

इस असार संसारमें उक्त गंगास्तोत्र ही निर्मल सारवान् पदार्थ है, यह भक्तोंको अभिलषित फल प्रदान करता है; शंकरके सेवक शंकराचार्यकृत इस स्तोत्रको जो पढ़ता है, वह सुखी होता है—इस प्रकार यह स्तोत्र समाप्त हुआ॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीगंगास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

५१—गङ्गादशहरास्तोत्रम्

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः।
नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥ १॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः।
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥ २॥
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्छ्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते।
स्थास्नुजङ्गमसम्भूतविषहन्त्र्यै नमोऽस्तु ते॥ ३॥
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोऽस्तु ते।
तापत्रितयसंहन्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमो नमः॥ ४॥
शान्तिसन्तानकारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्तये।
सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्तये॥ ५॥

ॐ शिवस्वरूपा श्रीगंगाजीको नमस्कार है। कल्याणदायिनी गंगाजीको नमस्कार है। हे देवि गंगे! आप विष्णुरूपिणी हैं, आपको नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूपा! आपको नमस्कार है, रुद्ररूपिणी! आपको नमस्कार है। शंकरप्रिया! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। देवस्वरूपिणी! आपको नमस्कार है। ओषधिरूपा! आपको नमस्कार है॥ १-२॥

आप सबके सम्पूर्ण रोगोंकी श्रेष्ठ वैद्या हैं, आपको नमस्कार है। स्थावर और जंगम प्राणियोंसे प्रकट होनेवाले विषका आप नाश करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। संसाररूपी विषका नाश करनेवाली जीवनरूपा आपको नमस्कार है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों प्रकारके क्लेशोंका संहार करनेवाली आपको नमस्कार है। प्राणोंकी स्वामिनी आपको नमस्कार है, नमस्कार है॥ ३-४॥

शान्तिका विस्तार करनेवाली शुद्धस्वरूपा आपको नमस्कार है। सबको शुद्ध करनेवाली तथा पापोंकी शत्रुस्वरूपा आपको नमस्कार है।

भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः।
भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तु ते॥ ६॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिपथायै नमो नमः॥ ७॥
नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै क्षमावत्यै नमो नमः।
त्रिहुताशनसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः॥ ८॥
नन्दायै लिङ्गधारिण्यै सुधाधारात्मने नमः।
नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः॥ ९॥

भोग, मोक्ष तथा कल्याण प्रदान करनेवाली आपको बार-बार नमस्कार है। भोग और उपभोग देनेवाली भोगवती नामसे प्रसिद्ध आप पातालगंगाको नमस्कार है॥ ५-६॥

मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध तथा स्वर्ग प्रदान करनेवाली आप आकाशगंगाको बार-बार नमस्कार है। आप भूतल, आकाश और पाताल—तीन मार्गोंसे जानेवाली और तीनों लोकोंकी आभूषणस्वरूपा हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। गंगाद्वार, प्रयाग और गंगासागर-संगम—इन तीन विशुद्ध तीर्थस्थानोंमें विराजमान आपको नमस्कार है। क्षमावती आपको नमस्कार है। गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निरूप त्रिविध अग्नियोंमें स्थित रहनेवाली तेजोमयी आपको बार-बार नमस्कार है॥ ७-८॥

आप ही अलकनन्दा हैं, आपको नमस्कार है। शिवलिंग धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। सुधाधारामयी आपको नमस्कार है। जगत्में मुख्य सरितारूप आपको नमस्कार है। रेवतीनक्षत्ररूपा आपको

बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमोऽस्तु ते।
नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः॥ १०॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमो नमः।
परापरशताढ्यायै तारायै ते नमो नमः॥ ११॥
पाशजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमोऽस्तु ते।
शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः॥ १२॥
उग्रायै सुखजग्ध्यै च सञ्जीवन्यै नमोऽस्तु ते।
ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः॥ १३॥

नमस्कार है। बृहती नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। लोकोंको धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वके लिये मित्ररूपा आपको नमस्कार है। सबको समृद्धि देकर आनन्दित करनेवाली आपको बारम्बार नमस्कार है॥ ९-१०॥

आप पृथ्वीरूपा हैं, आपको नमस्कार है। आपका जल कल्याणमय है और आप उत्तम धर्मस्वरूपा हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। बड़े-छोटे सैकड़ों प्राणियोंसे सेवित आपको नमस्कार है। सबको तारनेवाली आपको नमस्कार है, नमस्कार है। संसार-बन्धनका उच्छेद करनेवाली अद्वैतरूपा आपको नमस्कार है। आप परम शान्त, सर्वश्रेष्ठ तथा मनोवांछित वर देनेवाली हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है॥ ११-१२॥

आप प्रलयकालमें उग्ररूपा हैं, अन्य समयमें सदा सुखका भोग करानेवाली हैं तथा उत्तम जीवन प्रदान करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मज्ञान देनेवाली तथा पापोंका नाश करनेवाली हैं,

प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते।
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः॥ १४॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १५॥
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः।
परापरपरायै च गङ्गे निर्वाणदायिनि॥ १६॥
गङ्गे ममाग्रतो भूया गङ्गे मे तिष्ठ पृष्ठतः।
गङ्गे मे पार्श्वयोरेधि गङ्गे त्वय्यस्तु मे स्थितिः॥ १७॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गाङ्गते शिवे।
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे॥ १८॥

आपको बार-बार नमस्कार है। प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाली जगन्माता आपको नमस्कार है। आप समस्त विपत्तियोंकी शत्रुभूता तथा सबके लिये मंगलस्वरूपा हैं, आपके लिये बार-बार नमस्कार है॥ १३-१४॥

शरणागतों, दीनों तथा पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली और सबकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि नारायणि! आपको नमस्कार है। आप पाप-ताप अथवा अविद्यारूपी मलसे निर्लिप्त, दुर्गम दुःखका नाश करनेवाली तथा दक्ष हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप पर और अपर सबसे परे हैं। मोक्षदायिनी गंगे! आपको नमस्कार है॥ १५-१६॥

गंगे! आप मेरे आगे हों, गंगे! आप मेरे पीछे रहें, गंगे! आप मेरे उभयपार्श्वमें स्थित हों तथा गंगे! मेरी आपमें ही स्थिति हो। आकाशगामिनी कल्याणमयी गंगे! आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र आप हैं। गंगे! आप ही मूलप्रकृति हैं, आप ही परम पुरुष हैं तथा आप ही परमात्मा शिव हैं; शिवे! आपको नमस्कार है॥ १७-१८॥

य इदं पठते स्तोत्रं शृणुयाच्छ्रद्धयाऽपि यः।
दशधा मुच्यते पापैः* कायवाक्चित्तसम्भवैः॥ १९॥
रोगस्थो रोगतो मुच्येद्द्विपद्भ्यश्च विपद्यतः।
मुच्यते बन्धनाद् बद्धो भीतो भीतेः प्रमुच्यते॥ २०॥
सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य च त्रिदिवं व्रजेत्।
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीपरिवीजितः॥ २१॥
गृहेऽपि लिखितं यस्य सदा तिष्ठति धारितम्।
नाग्निचौरभयं तस्य न सर्पादिभयं क्वचित्॥ २२॥

जो श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रको पढ़ता और सुनता है; वह मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले दस प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। रोगी रोगसे तथा विपत्तिग्रस्त विपत्तियोंसे मुक्त हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ बन्धनमुक्त हो जाता है और भयभीत व्यक्ति भयसे विमुक्त हो जाता है। वह इहलोकमें सभी कामनाओंकी प्राप्ति कर लेता है और मृत्युके अनन्तर दिव्यांगनाओंसे सेवित होता हुआ दिव्य विमानमें आरूढ़ होकर स्वर्गलोकको जाता है॥ १९—२१॥

यह स्तोत्र जिसके घरमें लिखकर रखा हुआ हो, उसे कभी अग्नि, चोर और सर्प आदिका भय नहीं होता॥ २२॥

---

* अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः॥
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम्।पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चैव सर्वशः॥
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्।परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्॥
वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम्।

बिना दी हुई वस्तुको लेना, निषिद्ध हिंसा, परस्त्रीसंगम—यह तीन प्रकारका दैहिक पाप माना गया है। कठोर वचन निकालना, झूठ बोलना, सब ओर चुगली करना और अंट-संट बातें बकना—ये वाणीसे होनेवाले चार प्रकारके पाप हैं। दूसरेके धनको लेनेका विचार करना, मनसे दूसरोंका बुरा सोचना और असत्य वस्तुओंमें आग्रह रखना—ये तीन प्रकारके मानसिक पाप कहे गये हैं।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमीहस्तसंयुता।
संहरेत् त्रिविधं पापं बुधवारेण संयुता॥ २३॥
तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः।
यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः॥ २४॥
सोऽपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां सम्पूज्य यत्नतः॥ २५॥

॥ इति श्रीस्कन्दमहापुराणे काशीखण्डे ईश्वरकथितं गङ्गादशहरास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

५२—गङ्गास्तुतिः

मुनिरुवाच

मातस्त्वं परमासि शक्तिरतुला सर्वाश्रया पावनी
लोकानां सुखमोक्षदाखिलजगत्संवन्द्यपादाम्बुजा।

ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमें हस्त नक्षत्रसहित दशमी तिथिका यदि बुधवारसे योग हो, तो उस दिन गंगाजीके जलमें खड़े होकर जो दस बार इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह दरिद्र हो या असमर्थ, वह भी उसी फलको प्राप्त होता है, जो यथोक्त विधिसे यत्नपूर्वक गंगाजीकी पूजा करनेपर उपलब्ध होनेवाला बताया गया है॥ २३—२५॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत काशीखण्डमें ईश्वरकथित गंगादशहरास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

जह्नुमुनि बोले—माता! आप सर्वश्रेष्ठ, अतुलनीया पराशक्ति, सर्वाश्रयदात्री, लोगोंको पवित्र करनेवाली, आनन्द और मोक्षको प्रदान करनेवाली तथा सम्पूर्ण जगत्‌द्वारा वन्दित चरणकमलवाली हैं।

न त्वां वेद विधिर्न वा स्मररिपुर्नो वा हरिर्नापरे
सञ्जानन्ति शिवे महेशशिरसा मान्ये कथं वेद्म्यहम्॥ १॥
किं तेऽहं प्रवदामि रूपचरितं यच्चेतसो दुर्गमं
पारावारविवर्जितं सुरधुनी ब्रह्मादिभिः पूजिता।
स्वेच्छाचारिणि संवितत्य करुणां स्वीयैर्गुणैर्मां शिवे
पुण्यं त्वं तु कृतागसं शरणगं गङ्गे क्षमस्वाम्बिके॥ २॥
धन्यं मे भुवि जन्म कर्म च तथा धन्यं तपो दुष्करं
धन्यं मे नयनं यतस्त्रिनयनाराध्या दृशालोकये।
धन्यं मत्करयुग्मकं तव जलं स्पृष्टं यतस्तेन वै
धन्यं मत्तनुरप्यहो तव जलं तस्मिन्यतः सङ्गतम्॥ ३॥

आपको ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश (तत्त्वतः) नहीं जानते तथा अन्य लोग भी नहीं जानते। भगवान् शिवके मस्तकसे सम्मानित शिवे! फिर मैं आपको कैसे जान सकता हूँ॥ १॥

मैं आपके अचिन्त्य और अपार रूप तथा चरित्रका क्या वर्णन करूँ? ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा पूजित आप सुरनदीके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। स्वतन्त्ररूपसे विचरण करनेवाली शिवे! मातः! आप अपने शुभ गुणोंसे पुण्य तथा करुणाका विस्तार करके मुझ कृतापराध और शरणागतको क्षमा कीजिये॥ २॥

मेरा इस पृथ्वीपर जन्म और कर्म दोनों धन्य हुए, मेरी कठिन तपस्या धन्य हुई तथा मेरे ये दोनों नेत्र भी धन्य हुए; जो त्रिलोचन भगवान् शंकरकी आराध्या आपका मैं अपने नेत्रोंसे दर्शन कर रहा हूँ। आपके जलके स्पर्शसे ये मेरे दोनों हाथ धन्य हो गये और यह मेरा शरीर भी धन्य हुआ, जिसमें आपका पावन जल गया है॥ ३॥

नमस्ते पापसंहर्त्रि हरमौलिविराजिते।
नमस्ते सर्वलोकानां हिताय धरणीगते॥ ४॥
स्वर्गापवर्गदे देवि गङ्गे पतितपावनि।
त्वामहं शरणं यातः प्रसन्ना मां समुद्धर॥ ५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे जह्नुमुनिकृता गङ्गास्तुतिः सम्पूर्णा॥

५३—गंगा-स्तुति

जय जय भगीरथनन्दिनि, मुनि-चय चकोर-चन्दिनि,
नर-नाग-बिबुध-बन्दिनि जय जह्नु बालिका।
बिस्नु-पद-सरोजजासि, ईस-सीसपर बिभासि,
त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-छालिका॥ १॥

पापोंका संहार करनेवाली, भगवान् शंकरके मस्तकपर विराजमान तथा सभी प्राणियोंके हितके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण आपको नमस्कार है, नमस्कार है। देवी गंगे! आप स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली हैं, पतितोंको पवित्र करनेवाली हैं, मैं आपकी शरणमें हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होकर मेरा उद्धार कीजिये॥ ४-५॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत जह्नुमुनिद्वारा की गयी गंगा-स्तुति सम्पूर्ण हुई॥

हे भगीरथनन्दिनी! तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम मुनियोंके समूहरूपी चकोरोंके लिये चन्द्रिकारूप हो। मनुष्य, नाग और देवता तुम्हारी वन्दना करते हैं। हे जह्नुकी पुत्री! तुम्हारी जय हो। तुम भगवान् विष्णुके चरणकमलसे उत्पन्न हुई हो; शिवजीके मस्तकपर शोभा पाती हो; स्वर्ग, भूमि और पाताल—इन तीन मार्गोंसे तीन धाराओंमें होकर बहती हो। पुण्योंकी राशि और पापोंको धोनेवाली हो॥ १॥

बिमल बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रयताप-हारि,
भँवर बर बिभंगतर तरंग-मालिका।
पुरजन पूजोपहार, सोभित ससि धवलधार,
भंजन भव-भार, भक्ति-कल्पथालिका॥ २॥
निज तटबासी बिहंग, जल-थर-चर पसु-पतंग,
कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका।
तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस-बीर,
बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका॥ ३॥

(विनय-पत्रिका)

तुम अगाध निर्मल जलको धारण किये हो, वह जल शीतल और तीनों तापोंको हरनेवाला है। तुम सुन्दर भँवर और अति चंचल तरंगोंकी माला धारण किये हो। नगर-निवासियोंने पूजाके समय जो सामग्रियाँ भेंट चढ़ायी हैं, उनसे तुम्हारी चन्द्रमाके समान धवल धारा शोभित हो रही है। वह धारा संसारके जन्म-मरणरूप भारका नाश करनेवाली तथा भक्तिरूपी कल्पवृक्षकी रक्षाके लिये थाल्हारूप है॥ २॥

तुम अपने तीरपर रहनेवाले पक्षी, जलचर, थलचर, पशु, पतंग, कीट और जटाधारी तपस्वी आदि सबका समानभावसे पालन करती हो। हे मोहरूपी महिषासुरको मारनेके लिये कालिकारूप गंगाजी! मुझ तुलसीदासको ऐसी बुद्धि दो कि जिससे वह श्रीरघुनाथजीका स्मरण करता हुआ तुम्हारे तीरपर विचरा करे॥ ३॥

श्रीयमुनास्तोत्राणि

५४—श्रीयमुनाष्टकम्

मुरारिकायकालिमाललामवारिधारिणी
तृणीकृतत्रिविष्टपा त्रिलोकशोकहारिणी।
मनोऽनुकूलकूलकुञ्जपुञ्जधूतदुर्मदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा॥ १॥
मलापहारिवारिपूरभूरिमण्डितामृता
भृशं प्रपातकप्रवञ्चनातिपण्डितानिशम्।
सुनन्दनन्दनाङ्गसङ्गरागरञ्जिता हिता। धुनोतु०॥ २॥
लसत्तरङ्गसङ्गधूतभूतजातपातका
नवीनमाधुरीधुरीणभक्तिजातचातका।

जो भगवान् कृष्णचन्द्रके अंगोंकी नीलिमा लिये हुए मनोहर जलौघ धारण करती है, त्रिभुवनका शोक हरनेवाली होनेके कारण स्वर्गलोकको तृणके समान सारहीन समझती है, जिसके मनोरम तटपर निकुंजोंका पुंज वर्तमान है, जो लोगोंका दुर्मद दूर कर देती है; वह कालिन्दी यमुना सदा हमारे आन्तरिक मलको धोवे॥ १॥

जो मलापहारी सलिलसमूहसे अत्यन्त सुशोभित है, मुक्तिदायक है, सदा ही बड़े-बड़े पातकोंको लूट लेनेमें अत्यन्त प्रवीण है, सुन्दर नन्दनन्दनके अंगस्पर्शजनित रागसे रंजित है, सबकी हितकारिणी है, वह कालिन्दी यमुना सदा हमारे मानसिक मलको धोवे॥ २॥

जो अपनी सुहावनी तरंगोंके सम्पर्कसे समस्त प्राणियोंके पापोंको धो डालती है, जिसके तटपर नूतन मधुरिमासे भरे भक्तिरसके अनेकों चातक रहा करते हैं, तटके समीप वास करनेवाले भक्तरूपी हंसोंसे

तटान्तवासदासहंससंसृता हि कामदा। धुनोतु० ॥ ३ ॥
विहाररासखेदभेदधीरतीरमारुता
गता गिरामगोचरे यदीयनीरचारुता।
प्रवाहसाहचर्यपूतमेदिनीनदीनदा । धुनोतु० ॥ ४ ॥
तरङ्गसङ्गसैकताञ्चितान्तरा सदासिता
शरन्निशाकरांशुमञ्जुमञ्जरीसभाजिता ।
भवार्चनाय चारुणाम्बुनाधुना विशारदा। धुनोतु० ॥ ५ ॥
जलान्तकेलिकारिचारुराधिकाङ्गरागिणी
स्वभर्तुरन्यदुर्लभाङ्गसङ्गतांशभागिनी ।
स्वदत्तसुप्तसप्तसिन्धुभेदनातिकोविदा । धुनोतु० ॥ ६ ॥

जो सेवित रहती है और उनकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है; वह कलिन्द-कन्या यमुना सदा हमारे मानसिक मलको मिटावे ॥ ३ ॥

जिसके तटपर विहार और रास-विलासके खेदको मिटा देनेवाली मन्द-मन्द वायु चल रही है, जिसके नीरकी सुन्दरताका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता, जो अपने प्रवाहके सहयोगसे पृथ्वी, नदी और नदोंको पावन बनाती है; वह कलिन्दनन्दिनी यमुना सदा हमारे मानसिक मलको दूर करे ॥ ४ ॥

लहरोंसे सम्पर्कित वालुकामय तटसे जिसका मध्यभाग सुशोभित है, जिसका वर्ण सदा ही श्यामल रहता है, जो शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी किरणमयी मनोहर मंजरीसे अलंकृत होती है और सुन्दर सलिलसे संसारको सन्तोष देनेमें जो कुशल है, वह कलिन्द-कन्या यमुना सदा हमारे मानसिक मलको नष्ट करे ॥ ५ ॥

जो जलके भीतर क्रीडा करनेवाली सुन्दरी राधाके अंगरागसे युक्त है, अपने स्वामी श्रीकृष्णके अंगस्पर्शसुखका, जो अन्य किसीके

जलच्युताच्युताङ्गरागलम्पटालिशालिनी
विलोलराधिकाकचान्तचम्पकालिमालिनी।
सदावगाहनावतीर्णभर्तृभृत्यनारदा ।धुनोतु०॥ ७॥
सदैव नन्दनन्दकेलिशालिकुञ्जमञ्जुला
तटोत्थफुल्लमल्लिकाकदम्बरेणुसूज्ज्वला।
जलावगाहिनां नृणां भवाब्धिसिन्धुपारदा। धुनोतु०॥ ८॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीयमुनाष्टकं सम्पूर्णम्॥

लिये दुर्लभ है, उपभोग करती है, जो अपने प्रवाहसे प्रशान्त सप्तसमुद्रोंमें हलचल पैदा करनेमें अत्यन्त कुशल है; वह कालिन्दी यमुना सदा हमारे आन्तरिक मलको धोवे॥ ६॥

जलमें धुलकर गिरे हुए श्रीकृष्णके अंगरागसे अपना अंगस्नान करती हुई सखियोंसे जिसकी शोभा बढ़ रही है, जो राधाकी चंचल अलकोंमें गुँथी हुई चम्पक-मालासे मालाधारिणी हो गयी है, स्वामी श्रीकृष्णके भृत्य नारद आदि जिसमें सदा ही स्नान करनेके लिये आया करते हैं; वह कलिन्द-कन्या यमुना सदा हमारे आन्तरिक मलको धो डाले॥ ७॥

जिसके तटवर्ती मंजुल निकुंज सदा ही नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी लीलाओंसे सुशोभित होते हैं; किनारेपर बढ़कर खिली हुई मल्लिका और कदम्बके पुष्प-परागसे जिसका वर्ण उज्ज्वल हो रहा है, जो अपने जलमें डुबकी लगानेवाले मनुष्योंको भवसागरसे पार कर देती है, वह कलिन्द-कन्या यमुना सदा हमारे मानसिक मलको दूर बहावे॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीयमुनाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

५५—श्रीयमुनाष्टकम्

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं
मुरारिप्रेयस्कां भवभयदवां भक्तवरदाम्।
वियज्जालान्मुक्तां श्रियमपि सुखाप्तेः प्रतिदिनं
सदा धीरो नूनं भजति यमुनां नित्यफलदाम्॥ १॥
मधुवनचारिणि भास्करवाहिनि जाह्नविसङ्गिनि सिन्धुसुते
मधुरिपुभूषिणि माधवतोषिणि गोकुलभीतिविनाशकृते।
जगदघमोचिनि मानसदायिनि केशवकेलिनिदानगते
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम्॥ २॥
अयि मधुरे मधुमोदविलासिनि शैलविहारिणि वेगभरे
परिजनपालिनि दुष्टनिषूदिनि वाञ्छितकामविलासधरे।

जो कृपाकी समुद्र, सूर्यकुमारी, तापको शान्त करनेवाली, श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रेमिका, संसारभीतिके लिये दावानलस्वरूप, भक्तोंको वर देनेवाली और आकाशजालसे मुक्त लक्ष्मीस्वरूपा हैं, उन नित्यफलदायिनी यमुनाजीका धीर पुरुष सुखप्राप्तिके लिये निश्चयपूर्वक निरन्तर प्रतिदिन भजन करता है॥ १॥

हे मधुवनमें विहार करनेवाली! हे भास्करवाहिनि! हे गंगाजीकी सहचरी! हे सिन्धुसुते! हे श्रीमधुसूदनविभूषिणि! हे माधवतृप्तिकारिणि! हे गोकुलका भय दूर करनेवाली! हे जगत्पापविनाशिनि! हे वांछितफलदायिनि! हे कृष्णकेलिकी आश्रयभूता सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ २॥

अयि मधुरे! अयि मधुगन्धविलासिनि! हे पर्वतोंमें विहार करनेवाली! परम वेगवती, अपने तीरवर्ती भक्तजनोंका पालन करनेवाली, दुष्टोंका संहार करनेवाली, इच्छित कामनाओंकी विलासभूमि,

व्रजपुरवासिजनार्जितपातकहारिणि विश्वजनोद्धरिके। जय० ॥ ३ ॥
अतिविपदम्बुधिमग्नजनं भवतापशताकुलमानसकं
गतिमतिहीनमशेषभयाकुलमागतपादसरोजयुगम् ।
ऋणभयभीतिमनिष्कृतिपातककोटिशतायुतपुञ्जतरम्। जय० ॥ ४ ॥
नवजलदद्युतिकोटिलसत्तनुहेममयाभररञ्जितके
तडिदवहेलिपदाञ्चलचञ्चलशोभितपीतसुचैलधरे ।
मणिमयभूषणचित्रपटासनरञ्जितगञ्जितभानुकरे। जय० ॥ ५ ॥

व्रजभूमिनिवासियोंके अर्जित पापोंको हरण करनेवाली तथा सम्पूर्ण जीवोंका उद्धार करनेवाली, सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ३॥

जो महान् विपत्तिसागरमें निमग्न है, सैकड़ों सांसारिक संतापोंसे जिसका मन व्याकुल है, जो गति (आश्रय) और मति (विचार)-से शून्य तथा सब प्रकारके भयोंसे व्याकुल है, जो ऋण और भयसे दबा हुआ तथा सैकड़ों-हजारों-करोड़ों प्रतिकारशून्य पापोंका पुतला है, तुम्हारे चरणकमल-युगलमें प्राप्त हुए ऐसे मुझको, हे सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ४॥

तुम्हारा शरीर करोड़ों नवीन मेघोंकी कान्तिसे सुशोभित तथा सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित है, जिसका चंचल अंचल चपलाकी भी अवहेलना करता है, ऐसे पीत दुकूलको धारण करके तुम परम शोभायमान हो रही हो तथा मणिमय आभूषण और चित्र-विचित्र वस्त्र एवं आसनसे रंजित होकर तुमने सूर्यकी किरणोंको भी कुण्ठित कर दिया है; हे सकल भयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ५॥

शुभपुलिने मधुमत्तयदूद्भवरासमहोत्सवकेलिभरे
उच्चकुलाचलराजितमौक्तिकहारमयाभररोदसिके ।
नवमणिकोटिकभास्करकञ्चुकिशोभिततारकहारयुते। जय० ॥ ६ ॥
करिवरमौक्तिकनासिकभूषणवातचमत्कृतचञ्चलके
मुखकमलामलसौरभचञ्चलमत्तमधुव्रतलोचनिके ।
मणिगणकुण्डललोलपरिस्फुरदाकुलगण्डयुगामलके। जय० ॥ ७ ॥
कलरवनूपुरहेममयाचितपादसरोरुहसारुणिके
धिमिधिमिधिमिधिमितालविनोदितमानसमञ्जुलपादगते।
तव पदपङ्कजमाश्रितमानवचित्तसदाखिलतापहरे । जय० ॥ ८ ॥

हे सुन्दर तटोंवाली! हे मधुमत्त-यदुकुलोत्पन्न श्रीकृष्ण और बलरामके रासमहोत्सवकी क्रीडाभूमि! हे ऊँचे-ऊँचे कुलपर्वतोंकी श्रेणियोंपर शोभायमान मुक्तावलीरूप आभूषणोंसे पृथ्वी और आकाशको विभूषित करनेवाली, हे करोड़ों भास्करोंके समान नवीन मणियोंकी कंचुकीसे सुशोभित तथा तारावलीरूप हारसे युक्त, सकलभयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम मुझे पवित्र करो ॥ ६ ॥

तुम्हारी नासिकाकी भूषणरूप गजमुक्ता वायुसे चंचल होकर झिलमिला रही है, तुम्हारे नेत्ररूप मतवाले भौंरे मानो मुखकमलकी सुवाससे चंचल हो रहे हैं तथा दोनों अमल कपोल हिलते हुए मणिमय कुण्डलोंकी झलकसे झिलमिला रहे हैं, हे सकलभयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम मुझे पवित्र करो ॥ ७ ॥

तुम्हारे अरुण चरणकमल सुवर्णमय नूपुरोंके कलरवसे युक्त हैं, तुम मनको प्रसन्न करनेवाली 'धिमि-धिमि' स्वरमयी मनोहर गतिसे गमन करती हो, जो मनुष्य तुम्हारे चरणकमलोंमें चित्त लगाता है, तुम उसके सम्पूर्ण ताप हर लेती हो; हे सकलभयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ८ ॥

भवोत्तापाम्भोधौ निपतितजनो दुर्गतियुतो
यदि स्तौति प्रातः प्रतिदिनमनन्याश्रयतया।
हयाह्रेषैः कामं करकुसुमपुञ्जैरविरतं
सदा भोक्ता भोगान्मरणसमये याति हरिताम्॥ ९॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीयमुनाष्टकं सम्पूर्णम्॥

५६—श्रीयमुनाष्टकम्

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा
मुरारिपदपङ्कजस्फुरदमन्दरेणूत्कटाम्।
तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना
सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम्॥ १॥

जो मनुष्य संसारके सन्तापसमुद्रमें डूबकर अत्यन्त दुर्गतिग्रस्त हो रहा है, वह यदि प्रतिदिन प्रातःकाल अनन्यचित्तसे (इस स्तोत्रद्वारा श्रीयमुनाजीकी) स्तुति करेगा, वह (यावज्जीवन) घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा हाथोंमें पुष्पपुंजसे सुशोभित होकर, निरन्तर सम्पूर्ण भोगोंको भोगेगा और मरनेके समय भगवद्रूप हो जायगा॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीयमुनाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

मैं सम्पूर्ण सिद्धियोंकी हेतुभूता श्रीयमुनाजीको सानन्द नमस्कार करता हूँ, जो भगवान् मुरारिके चरणारविन्दोंकी चमकीली और अमन्द महिमावाली धूल धारण करनेसे अत्यन्त उत्कर्षको प्राप्त हुई हैं और तटवर्ती नूतन काननोंके सुगन्धित पुष्पोंसे सुवासित जलराशिके द्वारा देवदानववन्दित प्रद्युम्नपिता भगवान् श्रीकृष्णकी श्याम सुषमाको धारण करती हैं॥ १॥

कलिन्दगिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वला
विलासगमनोल्लसत्प्रकटगण्डशैलोन्नता।
सघोषगतिदन्तुरा समधिरूढदोलोत्तमा
मुकुन्दरतिवर्द्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता॥ २॥
भुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः
प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः।
तरङ्गभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिकावालुकां
नितम्बतटसुन्दरीं नमत कृष्णतुर्यप्रियाम्॥ ३॥

कलिन्दपर्वतके शिखरपर गिरती हुई तीव्र वेगवाली जलधारासे जो अत्यन्त उज्ज्वल जान पड़ती हैं, लीलाविलासपूर्वक चलनेके कारण शोभायमान हैं, सामने प्रकट हुई चट्टानोंसे जिनका प्रवाह कुछ ऊँचा हो जाता है, गम्भीर गर्जनयुक्त गतिके कारण जिनमें ऊँची-ऊँची लहरें उठती हैं और ऊँचे-नीचे प्रवाहके द्वारा जो उत्तम झूलेपर झूलती हुई-सी प्रतीत होती हैं, भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रगाढ़ अनुरागकी वृद्धि करनेवाली वे सूर्यसुता यमुना सर्वत्र विजयिनी हो रही हैं॥ २॥

जो इस भूतलपर पधारकर समस्त भुवनको पवित्र कर रही हैं, शुक-मयूर और हंस आदि पक्षी भाँति-भाँतिके कलरवोंद्वारा प्रिय सखियोंकी भाँति जिनकी सेवा कर रहे हैं, जिनकी तरंगरूपी भुजाओंके कंगनमें जड़े हुए मुक्तिरूपी मोतीके कण ही वालुका बनकर चमक रहे हैं तथा जो नितम्बसदृश तटोंके कारण अत्यन्त सुन्दर जान पड़ती हैं, उन श्रीकृष्णकी चौथी पटरानी श्रीयमुनाजीको नमस्कार करो॥ ३॥

अनन्तगुणभूषिते शिवविरञ्चिदेवस्तुते
घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे।
विशुद्धमथुरातटे सकलगोपगोपीवृते
कृपाजलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय॥ ४॥
यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियम्भावुका
समागमनतोऽभवत् सकलसिद्धिदा सेवताम्।
तया सदृशतामियात् कमलजा सपत्नीव यद्धरि-
प्रियकलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम्॥ ५॥

देवि यमुने! तुम अनन्त गुणोंसे विभूषित हो। शिव और ब्रह्मा आदि देवता तुम्हारी स्तुति करते हैं। मेघोंकी गम्भीर घटाके समान तुम्हारी अंगकान्ति सदा श्याम है। ध्रुव और पराशर-जैसे भक्तजनोंको तुम अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाली हो। तुम्हारे तटपर विशुद्ध मथुरापुरी सुशोभित है। समस्त गोप और गोपसुन्दरियाँ तुम्हें घेरे रहती हैं। तुम करुणासागर भगवान् श्रीकृष्णके आश्रित हो। मेरे अन्तःकरणको सुखी बनाओ॥ ४॥

भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई गंगा जिनसे मिलनेके कारण ही भगवान्को प्रिय हुईं और अपने सेवकोंके लिये सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली हो सकीं, उन यमुनाजीकी समता केवल लक्ष्मीजी कर सकती हैं और वह भी एक सपत्नीके सदृश। ऐसी महत्त्वशालिनी श्रीकृष्णप्रिया कलिन्दनन्दिनी यमुना सदा मेरे मनमें निवास करें॥ ५॥

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं
न जातु यमयातना भवति ते पयःपानतः।
यमोऽपि भगिनीसुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिकाः॥ ६॥
ममास्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वमेतावता
न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्दप्रिये।
अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं सङ्गमात्
तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितैः॥ ७॥
स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपत्नि प्रिये
हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः।

यमुने! तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम्हारा चरित्र अत्यन्त अद्भुत है। तुम्हारा जल पीनेसे कभी यमयातना नहीं भोगनी पड़ती है। अपनी बहिनके पुत्र दुष्ट हों तो भी यमराज उन्हें कैसे मार सकते हैं। तुम्हारी सेवासे मनुष्य गोपांगनाओंकी भाँति श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका प्रिय हो जाता है॥ ६॥

श्रीकृष्णप्रिये यमुने! तुम्हारे समीप मेरे शरीरका नवनिर्माण हो—मुझे नूतन शरीर धारण करनेका अवसर मिले। इतनेसे ही मुरारि श्रीकृष्णमें प्रगाढ़ अनुराग दुर्लभ नहीं रह जाता, अतः तुम्हारी अच्छी तरह स्तुति-प्रशंसा होती रहे—तुमको लाड़ लड़ाया जाय। तुमसे मिलनेके कारण ही देवनदी गंगा इस भूतलपर उत्कृष्ट बतायी गयी हैं; परंतु पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंने तुम्हारे संगमके बिना केवल गंगाकी कभी स्तुति नहीं की है॥ ७॥

लक्ष्मीकी सपत्नी हरिप्रिये यमुने! तुम्हारी स्तुति कौन कर सकता

इयं तव कथाधिका सकलगोपिकासङ्गमस्मर-

श्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः सङ्गमः ॥ ८ ॥

तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते सदा

समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः ।

तया सकलसिद्धयो मुररिपुश्च सन्तुष्यति

स्वभाववविजयो भवेद् वदति वल्लभः श्रीहरेः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं श्रीयमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

है? भगवान्‌की निरन्तर सेवासे मोक्षपर्यन्त सुख प्राप्त होता है, परंतु तुम्हारे लिये विशेष महत्त्वकी बात यह है कि तुम्हारे जलका सेवन करनेसे सम्पूर्ण गोपसुन्दरियोंके साथ श्रीकृष्णके समागमसे जो प्रेमलीलाजनित स्वेदजलकण सम्पूर्ण अंगोंसे प्रकट होते हैं, उनका सम्पर्क सुलभ हो जाता है॥ ८॥

सूर्यकन्ये यमुने! जो तुम्हारी इस आठ श्लोकोंकी स्तुतिका प्रसन्नतापूर्वक सदा पाठ करता है, उसके सारे पापोंका नाश हो जाता है और उसे भगवान् श्रीकृष्णका प्रगाढ प्रेम प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, सारी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं, भगवान् श्रीकृष्ण सन्तुष्ट होते हैं और स्वभावपर भी विजय प्राप्त हो जाती है। यह श्रीहरिके वल्लभका कथन है॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचित श्रीयमुनाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

नर्मदास्तोत्रम्

५७—नर्मदास्तुतिः

व्यास उवाच

जय भगवति देवि नमो वरदे जय पापविनाशिनि बहुफलदे।
जय शुम्भनिशुम्भकपालधरे प्रणमामि तु देवनरार्त्तिहरे॥ १॥

जय चन्द्रदिवाकरनेत्रधरे जय पावकभूषितवक्त्रवरे।
जय भैरवदेहनिलीनपरे जय अन्धकरक्तविशोषकरे॥ २॥

जय महिषविमर्दिनि शूलकरे जय लोकसमस्तकपापहरे।
जय देवि पितामहरामनते जय भास्करशक्रशिरोऽवनते॥ ३॥

व्यासजी बोले—हे वरदायिनी देवि! हे भगवति! तुम्हारी जय हो। हे पापोंको नष्ट करनेवाली और अनन्त फल देनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो! हे शुम्भ-निशुम्भके मुण्डोंको धारण करनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो। देवताओं तथा मनुष्योंकी पीड़ा हरनेवाली हे देवि! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ॥ १॥

हे सूर्य-चन्द्रमारूपी नेत्रोंको धारण करनेवाली! तुम्हारी जय हो। हे अग्निके समान देदीप्यमान मुखसे शोभित होनेवाली! तुम्हारी जय हो। हे भैरवशरीरमें लीन रहनेवाली और अन्धकासुरके रक्तका शोषण करनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो॥ २॥

महिषासुरका मर्दन करनेवाली, शूलधारिणी और लोकके समस्त पापोंको दूर करनेवाली हे भगवति! तुम्हारी जय हो। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और इन्द्रसे विनम्रभावसे नमस्कृत होनेवाली हे देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो॥ ३॥

जय षण्मुखसायुधईशनुते जय सागरगामिनि शम्भुनुते।
जय दुःखदरिद्रविनाशकरे जय पुत्रकलत्रविवृद्धिकरे॥ ४॥
जय देवि समस्तशरीरधरे जय नाकविदर्शिनि दुःखहरे।
जय व्याधिविनाशिनि मोक्षकरे जय वाञ्छितदायिनि सिद्धिवरे॥ ५॥
एतद् व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
गृहे वा शुद्धभावेन कामक्रोधविवर्जितः॥ ६॥
तस्य व्यासो भवेत्प्रीतः प्रीतश्च वृषवाहनः।
प्रीता स्यान्नर्मदा देवी सर्वपापक्षयङ्करी॥ ७॥
न ते यान्ति यमालोकं यैः स्तुता भुवि नर्मदा॥ ८॥

॥ इति श्रीस्कन्दमहापुराणे रेवाखण्डे व्यासकृता नर्मदास्तुतिः सम्पूर्णा॥

सशस्त्र शंकर और कार्तिकेयजीके द्वारा वन्दित होनेवाली हे देवि! तुम्हारी जय हो। शिवके द्वारा प्रशंसित एवं सागरमें मिलनेवाली हे देवि! तुम्हारी जय हो। दुःख और दरिद्रताका नाश तथा पुत्र-कलत्रकी वृद्धि करनेवाली हे देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो॥ ४॥

हे देवि! तुम्हारी जय हो। तुम समस्त शरीरोंको धारण करनेवाली, स्वर्गलोकका दर्शन करानेवाली और दुःखहारिणी हो। हे व्याधिनाशिनी देवि! तुम्हारी जय हो। मोक्ष तुम्हारे करतलगत है, मनोवांछित फल देनेवाली श्रेष्ठ सिद्धियोंसे सम्पन्न हे देवि! तुम्हारी जय हो॥ ५॥

जो काम-क्रोधसे रहित होकर शुद्धभावसे भगवान् शिवके समक्ष अथवा घरपर ही व्यासजीद्वारा किये गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसपर व्यासजी प्रसन्न हो जाते हैं, वृषवाहन भगवान् शिव प्रसन्न हो जाते हैं और सभी पापोंका विनाश करनेवाली देवी नर्मदा भी प्रसन्न हो जाती हैं। पृथ्वीलोकपर जो नर्मदाकी स्तुति करते हैं, वे यमके दृष्टिपथमें नहीं जा पाते हैं॥ ६—८॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणान्तर्गत रेवाखण्डमें व्यासजीद्वारा की गयी नर्मदास्तुति सम्पूर्ण हुई॥

५८—नर्मदाष्टकम्

सबिन्दुसिन्धुसुस्खलत्तरङ्गभङ्गरञ्जितं
द्विषत्सु पापजातजातकारिवारिसंयुतम्।
कृतान्तदूतकालभूतभीतिहारिवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे॥ १॥

त्वदम्बुलीनदीनमीनदिव्यसम्प्रदायकं
कलौ मलौघभारहारि सर्वतीर्थनायकम्।
सुमच्छकच्छनक्रचक्रचक्रवाकशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे॥ २॥

महागभीरनीरपूरपापधूतभूतलं
ध्वनत्समस्तपातकारिदारितापदाचलम्।

मृत्युके दूत कालसे उत्पन्न होनेवाले भयसे रक्षा करनेवाला कवच प्रदान करनेवाली हे भगवति नर्मदे! पवित्र जल-बिन्दुओंसे युक्त महासिन्धुसे प्रकट होनेवाली तरंगभंगिमाओंसे सुशोभित तथा द्वेष करनेवालोंके पापसमूहोंसे होनेवाले कष्टोंको दूर करनेमें समर्थ जलसे युक्त आपके चरणकमलको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १॥

सुन्दर मछलियों, कच्छपों, घड़ियालों, चकवा पक्षियों तथा हंसोंका कल्याण करनेवाली हे भगवति नर्मदे! आपके जलमें निमग्न दीन मत्स्यसमुदायको दिव्यता प्रदान करनेवाले, कलियुगमें पापराशिका भारी बोझ दूर करनेमें समर्थ तथा सभी तीर्थोंके नायकस्वरूप आपके चरणकमलको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २॥

महान् अभय प्रदान करनेवाली, सम्पूर्ण विश्वकी आश्रयस्वरूपिणी तथा मार्कण्डेय ऋषिको विशाल भवन प्रदान करनेवाली हे भगवति

जगल्लये महाभये मृकण्डसूनुहर्म्यदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे॥ ३॥
गतं तदैव मे भवं त्वदम्बुवीक्षितं यदा
मृकण्डसूनुशौनकासुरारिसेवि सर्वदा।
पुनर्भवाब्धिजन्मजं भवाब्धिदुःखवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे॥ ४॥
अलक्षलक्षकिन्नरामरासुरादिपूजितं
सुलक्षनीरतीरधीरपक्षिलक्षकूजितम्।
वसिष्ठसिष्टपिप्पलादिकर्दमादिशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे॥ ५॥

नर्मदे! अत्यन्त गहरे जलसे धरातलके सम्पूर्ण पापोंको धो डालनेवाले, घोर शब्द करते हुए समस्त पापोंके शत्रुरूप तथा विपत्तिके पहाड़ोंको विदीर्ण कर देनेवाले आपके चरणकमलको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३॥

भवसागरके दुःखसे रक्षाके लिये कवच प्रदान करनेवाली हे भगवति नर्मदे! जब मुझे आपके जलका दर्शन हुआ, उसी समय इस भवसागरमें बार-बार जन्म लेनेसे उत्पन्न होनेवाला मेरा सारा सांसारिक कष्ट दूर हो गया। मार्कण्डेय तथा शौनक आदि ऋषियों और देवताओंके द्वारा सेवित आपके चरणकमलको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४॥

वसिष्ठ, सिष्ट, पिप्पलादि तथा कर्दम आदि मुनियोंका कल्याण करनेवाली हे भगवति नर्मदे! विशुद्ध भावसे लाखों किन्नरों, देवताओं, असुरों आदिसे पूजित तथा सुन्दर दीखनेवाले जलसे सुशोभित तटपर सौम्य स्वभाववाले लाखों पक्षियोंके कलरवसे निनादित आपके चरणकमलको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ५॥

सनत्कुमारनाचिकेतकश्यपादिषट्पदै-

धृतं स्वकीयमानसेषु नारदादिषट्पदैः।

रवीन्दुरन्तिदेवदेवराजकर्मशर्मदे

त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे॥ ६॥

अलक्षलक्षलक्षपापलक्षसारसायुधं

ततस्तु जीवजन्तुतन्तुभुक्तिमुक्तिदायकम्।

विरञ्चिविष्णुशङ्करस्वकीयधामवर्मदे

त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे॥ ७॥

अहोऽमृतं स्वनं श्रुतं महेशकेशजातटे

किरातसूतवाडवेषु पण्डिते शठे नटे।

सूर्य, चन्द्र, रन्तिदेव और इन्द्रके कर्मोंको निर्विघ्न सम्पन्न करनेवाली हे भगवति नर्मदे! सनत्कुमार, नाचिकेत, कश्यप और नारद आदि भ्रमररूपी ऋषिगणोंके द्वारा अपने हृदयोंमें धारण किये गये आपके चरणकमलको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ६॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवको अपना धामरूपी कवच देनेवाली हे भगवति नर्मदे! मनुष्योंके परोक्ष तथा प्रत्यक्ष लाखों पापोंका नाश करनेके लिये तटपर विचरनेवाले लाखों सारस पक्षीरूपी आयुधोंसे मण्डित और जीव-जंतुओंके समूहको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले आपके चरणकमलको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ७॥

घोर पापों और कष्टोंका नाश करके सभी प्राणियोंको कल्याण प्रदान करनेवाली हे भगवति नर्मदे! भगवान् शिवके जटाजूटसे उद्भूत गंगाके तटपर, किरात, सूत, ब्राह्मण, पण्डित, मूर्ख, नट—इन सबमें

दुरन्तपापतापहारिसर्वजन्तुशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे॥ ८॥
इदं तु नर्मदाष्टकं त्रिकालमेव ये सदा
पठन्ति ते निरन्तरं न यान्ति दुर्गतिं कदा।
सुलभ्य देहदुर्लभं महेशधामगौरवं
पुनर्भवा नरा न वै विलोकयन्ति रौरवम्॥ ९॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं नर्मदाष्टकं सम्पूर्णम्॥

मुझे आपकी ही अमृतमयी तरंग-ध्वनि सुनायी पड़ी, आपके चरणकमलको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ८॥

जो लोग नित्य तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न एवं सायं)-में इस नर्मदाष्टकका निरन्तर पाठ करते हैं, वे कभी भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होते। बार-बार जन्म लेनेवाले मनुष्य [इसके पाठसे] देहधारियोंके लिये परम दुर्लभ शिवलोकका गौरव प्राप्त करके पुनः रौरव नरकमें नहीं पड़ते॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित नर्मदाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

प्रकीर्णस्तोत्राणि

५९—शीतलाष्टकम्

अस्य श्रीशीतलास्तोत्रस्य महादेव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, शीतला देवता, लक्ष्मी बीजम्, भवानी शक्तिः, सर्व-विस्फोटकनिवृत्तये जपे विनियोगः।

ईश्वर उवाच

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम्।
मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालङ्कृतमस्तकाम्॥ १॥

वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोगभयापहाम्।
यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत्॥ २॥

इस श्रीशीतलास्तोत्रके ऋषि महादेवजी, छन्द अनुष्टुप्, देवता शीतला माता, बीज लक्ष्मीजी तथा शक्ति भवानी देवी हैं। सभी प्रकारके विस्फोटक (चेचक आदि)-के निवारणहेतु इस स्तोत्रका जपमें विनियोग होता है।

ईश्वर बोले—गर्दभपर विराजमान, दिगम्बरा, हाथमें मार्जनी (झाड़ू) तथा कलश धारण करनेवाली, सूपसे अलंकृत मस्तकवाली भगवती शीतलाकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

मैं सभी प्रकारके भय तथा रोगोंका नाश करनेवाली उन भगवती शीतलाकी वन्दना करता हूँ, जिनकी शरणमें जानेसे विस्फोटक (चेचक)-का बड़ा-से-बड़ा भय दूर हो जाता है॥ २॥

शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्दाहपीडितः।
विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति॥ ३॥
यस्त्वामुदकमध्ये तु धृत्वा पूजयते नरः।
विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न जायते॥ ४॥
शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धयुतस्य च।
प्रणष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम्॥ ५॥
शीतले तनुजान् रोगान्नृणां हरसि दुस्त्यजान्।
विस्फोटकविदीर्णानां त्वमेकामृतवर्षिणी॥ ६॥
गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम्।
त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति संक्षयम्॥ ७॥

[चेचककी] जलनसे पीड़ित जो व्यक्ति 'शीतले-शीतले'—ऐसा उच्चारण करता है, उसका भयंकर विस्फोटकरोगजनित भय शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ ३॥

जो मनुष्य आपकी प्रतिमाको (हाथमें) लेकर जलके मध्य स्थित हो आपकी पूजा करता है, उसके घरमें विस्फोटक रोगका भीषण भय नहीं उत्पन्न होता है॥ ४॥

हे शीतले! ज्वरसे संतप्त, मवादके दुर्गन्धसे युक्त तथा विनष्ट नेत्र-ज्योतिवाले मनुष्यके लिये आपको ही जीवनरूपी औषधि कहा गया है॥ ५॥

हे शीतले! मनुष्योंके शरीरमें होनेवाले तथा अत्यन्त कठिनाईसे दूर किये जानेवाले रोगोंको आप हर लेती हैं; एकमात्र आप ही विस्फोटक-रोगसे विदीर्ण मनुष्योंके लिये अमृतकी वर्षा करनेवाली हैं॥ ६॥

हे शीतले! मनुष्योंके गलगण्डग्रह आदि तथा और भी अन्य प्रकारके जो भीषण रोग हैं, वे आपके ध्यानमात्रसे नष्ट हो जाते हैं॥ ७॥

न मन्त्रो नौषधं तस्य पापरोगस्य विद्यते।
त्वामेकां शीतले धात्रीं नान्यां पश्यामि देवताम्॥ ८ ॥
मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहृन्मध्यसंस्थिताम्।
यस्त्वां संचिन्तयेद्देवि तस्य मृत्युर्न जायते॥ ९ ॥
अष्टकं शीतलादेव्या यो नरः प्रपठेत्सदा।
विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न जायते॥ १० ॥
श्रोतव्यं पठितव्यं च श्रद्धाभक्तिसमन्वितैः।
उपसर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत्॥ ११ ॥
शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता।
शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमो नमः॥ १२ ॥

उस उपद्रवकारी पाप-रोगकी न कोई औषधि है और न मन्त्र ही है। हे शीतले! एकमात्र आप जननीको छोड़कर [उस रोगसे मुक्ति पानेके लिये] मुझे कोई दूसरा देवता नहीं दिखायी देता॥ ८॥

हे देवि! जो प्राणी मृणाल-तन्तुके समान कोमल स्वभाववाली और नाभि तथा हृदयके मध्य विराजमान रहनेवाली आप भगवतीका ध्यान करता है, उसकी मृत्यु नहीं होती है॥ ९॥

जो मनुष्य भगवती शीतलाके इस अष्टकका नित्य पाठ करता है, उसके घरमें विस्फोटकका घोर भय नहीं रहता॥ १०॥

मनुष्योंको विघ्न-बाधाओंके विनाशके लिये श्रद्धा तथा भक्तिसे युक्त होकर इस परम कल्याणकारी स्तोत्रका पाठ और श्रवण करना चाहिये॥ ११॥

हे शीतले! आप जगत्‌की माता हैं, हे शीतले! आप जगत्‌के पिता हैं, हे शीतले! आप जगत्‌का पालन करनेवाली हैं, आप शीतलाको बार-बार नमस्कार है॥ १२॥

रासभो गर्दभश्चैव खरो वैशाखनन्दनः।
शीतलावाहनश्चैव दूर्वाकन्दनिकृन्तनः॥ १३॥
एतानि खरनामानि शीतलाग्रे तु यः पठेत्।
तस्य गेहे शिशूनां च शीतलारुङ् न जायते॥ १४॥
शीतलाष्टकमेवेदं न देयं यस्य कस्यचित्।
दातव्यं च सदा तस्मै श्रद्धाभक्तियुताय वै॥ १५॥

॥ इति श्रीस्कन्दमहापुराणे शीतलाष्टकं सम्पूर्णम्॥

६०—श्रीसंकटास्तुतिः

अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमेदिनि विश्वविनोदिनि नन्दिनुते
गिरिवरविन्ध्यशिरोऽधिनिवासिनि विष्णुविलासिनि जिष्णुनुते।

जो व्यक्ति रासभ, गर्दभ, खर, वैशाखनन्दन, शीतलावाहन, दूर्वाकन्द-निकृन्तन—[भगवती शीतलाके वाहनके] इन नामोंका उनके समक्ष पाठ करता है, उसके घरमें बच्चोंको शीतलारोग नहीं होता है॥ १३-१४॥

इस शीतलाष्टकस्तोत्रको जिस किसी अनधिकारीको नहीं देना चाहिये अपितु भक्ति तथा श्रद्धासे सम्पन्न व्यक्तिको ही सदा यह स्तोत्र प्रदान करना चाहिये॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणमें वर्णित शीतलाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

पर्वतराज हिमालयकी कन्यारूपिणी, पृथ्वीको आनन्दित करनेवाली, संसारको हर्षित रखनेवाली, नन्दिगणसे नमस्कार की जानेवाली, गिरिश्रेष्ठ विन्ध्याचलके शिखरपर निवास करनेवाली, भगवान् विष्णुको

भगवति हे शितिकण्ठकुटुम्बिनि भूरिकुटुम्बिनि भूतिकृते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ १॥
सुरवरवर्षिणि दुर्धरधर्षिणि दुर्मुखमर्षिणि हर्षरते
त्रिभुवनपोषिणि शंकरतोषिणि कल्मषमोषिणि घोषरते।
दनुजनिरोषिणि दुर्मदशोषिणि दुर्मुनिरोषिणि सिन्धुसुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ २॥
अयि जगदम्ब कदम्बवनप्रियवासिनि तोषिणि हासरते
शिखरिशिरोमणितुङ्गहिमालयशृङ्गनिजालयमध्यगते ।

प्रसन्न रखनेवाली, इन्द्रसे नमस्कृत होनेवाली, भगवान् शिवकी भार्याके रूपमें प्रतिष्ठित, विशाल कुटुम्बवाली और ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ १॥

देवराज इन्द्रको समृद्धिशाली बनानेवाली, दुर्धर तथा दुर्मुख नामक दैत्योंका विनाश करनेवाली, सर्वदा हर्षित रहनेवाली, तीनों लोकोंका पालन-पोषण करनेवाली, भगवान् शिवको संतुष्ट रखनेवाली, पापको दूर करनेवाली, घोर गर्जन करनेवाली, दैत्योंपर भीषण कोप करनेवाली, मदान्धोंके मदका हरण कर लेनेवाली, सदाचारसे रहित मुनिजनोंपर क्रोध करनेवाली और समुद्रकी कन्या महालक्ष्मीके रूपमें प्रतिष्ठित हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ २॥

जगत्की मातास्वरूपिणी, कदम्बवृक्षके वनमें प्रेमपूर्वक निवास करनेवाली, सदा संतुष्ट रहनेवाली, हास-परिहासमें सदा रत रहनेवाली, पर्वतोंमें श्रेष्ठ ऊँचे हिमालयकी चोटीपर अपने भवनमें

मधुमधुरे मधुकैटभगञ्जिनि महिषविदारिणि रासरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ३॥
अयि निजहुंकृतिमात्रनिराकृतधूम्रविलोचनधूम्रशते
समरविशोषितरोषितशोणितबीजसमुद्भवबीजलते ।
शिवशिवशुम्भनिशुम्भमहाहवतर्पितभूतपिशाचरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ४॥
अयि शतखण्डविखण्डितरुण्डवितुण्डितशुण्डगजाधिपते
निजभुजदण्डनिपातितचण्डविपाटितमुण्डभटाधिपते ।
रिपुगजगण्डविदारणचण्डपराक्रमशौण्डमृगाधिपते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ५॥

विराजमान रहनेवाली, मधुसे भी अधिक मधुर स्वभाववाली, मधु-कैटभका संहार करनेवाली, महिषको विदीर्ण कर डालनेवाली और रासक्रीडामें मग्न रहनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ ३॥

अपने हुंकारमात्रसे धूम्रलोचन तथा धूम्र आदि सैकड़ों असुरोंको भस्म कर डालनेवाली, युद्धभूमिमें कुपित रक्तबीजके रक्तसे उत्पन्न हुए अन्य रक्तबीजसमूहोंका रक्त पी जानेवाली और शुम्भ-निशुम्भ नामक दैत्योंके महायुद्धसे तृप्त किये गये मंगलकारी शिवके भूत-पिशाचोंके प्रति अनुराग रखनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ ४॥

गजाधिपतिके बिना सूँड़के धड़को काट-काटकर सैकड़ों टुकड़े कर देनेवाली, सेनाधिपति चण्ड-मुण्ड नामक दैत्योंको अपने भुज-दण्डसे मार-मारकर विदीर्ण कर देनेवाली, शत्रुओंके हाथियोंके गण्डस्थलको भग्न करनेमें उत्कट पराक्रमसे सम्पन्न कुशल सिंहपर आरूढ़ होनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ ५॥

धनुरनुषङ्गरणक्षणसङ्गपरिस्फुरदङ्गनटत्कटके
कनकपिशङ्गपृषत्कनिषङ्गरसद्भटशृङ्गहताबटुके ।
हतचतुरङ्गबलक्षितिरङ्गघटद् बहुरङ्गरटद् बटुके
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ ६ ॥
अयि रणदुर्मदशत्रुवधाद्धुरदुर्धरनिर्भरशक्तिभृते
चतुरविचारधुरीणमहाशयदूतकृतप्रमथाधिपते ।
दुरितदुरीहदुराशयदुर्मतिदानवदूतदुरन्तगते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥ ७ ॥
अयि शरणागतवैरिवधूजनवीरवराभयदायिकरे
त्रिभुवनमस्तकशूलविरोधिशिरोधिकृतामलशूलकरे ।

समरभूमिमें धनुष धारण कर अपने शरीरको केवल हिलानेमात्रसे शत्रुदलको कम्पित कर देनेवाली, स्वर्णके पीले वर्णके तीर और तरकशसे युक्त भीषण योद्धाओंके सिर काटनेवाली और [हाथी-घोड़ा, रथ, पैदल] चारों प्रकारकी सेनाओंका संहार करके रणभूमिमें अनेक प्रकारकी शब्दध्वनि करनेवाले बटुकोंको उत्पन्न करनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो ॥ ६ ॥

रणभूमिमें मदोन्मत्त शत्रुओंके वधसे बढ़ी हुई अदम्य तथा पूर्ण शक्ति धारण करनेवाली, चातुर्यपूर्ण विचारवाले लोगोंमें श्रेष्ठ और गम्भीर कल्पनावाले प्रमथाधिपति भगवान् शंकरको दूत बनानेवाली; पापी, दूषित कामनाओं तथा कुत्सित विचारोंवाले दुर्बुद्धि दानवोंके दूतोंसे न जानी जा सकनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो ॥ ७ ॥

शरणागत शत्रुओंकी स्त्रियोंके वीर पतियोंको अभय प्रदान करनेवाले हाथसे शोभा पानेवाली, तीनों लोकोंको पीड़ित करनेवाले दैत्यशत्रुओंके मस्तकपर प्रहार करनेयोग्य तेजोमय त्रिशूल हाथमें धारण करनेवाली तथा

दुमिदुमितामरदुन्दुभिनादमुहुर्मुखरीकृतदिङ्‌निकरे
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ८ ॥
सुरललनाततथेयितथेयितथाभिनयोत्तरनृत्यरते
कृतकुकुथाकुकुथोदिडदाडिकतालकुतूहलगानरते ।
धुधुकुटधूधुटधिन्धिमितध्वनिघोरमृदङ्गनिनादरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ९ ॥
जय जय जाप्यजये जयशब्दपरस्तुतितत्परविश्वनुते
झणझणझिंझिमझिंकृतनूपुरशिञ्जितमोहितभूतपते ।
नटितनटार्धनटीनटनायकनाटननाटितनाट्यरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ १० ॥
अयि सुमनःसुमनःसुमनःसुमनःसुमनोरमकान्तियुते
श्रितरजनीरजनीरजनीरजनीरजनीकरवक्त्रभृते ।

देवताओंकी दुन्दुभिसे 'दुम्-दुम्'—इस प्रकारकी ध्वनिसे समस्त दिशाओंको बार-बार गुंजित करनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ ८॥

देवांगनाओंके तत-था-थेयि-थेयि आदि शब्दोंसे युक्त भावमय नृत्यमें मग्न रहनेवाली, कुकुथा आदि विभिन्न प्रकारकी मात्राओंवाले तालोंसे युक्त आश्चर्यमय गीतोंको सुननेमें लीन रहनेवाली और मृदंगकी धुधुकुट-धूधुट आदि गम्भीर ध्वनिको सुननेमें तत्पर रहनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ ९॥

हे जपनीय मन्त्रकी विजयशक्तिस्वरूपिणि! आपकी बार-बार जय हो। जय-जयकार शब्दसहित स्तुति करनेमें तत्पर समस्त संसारके लोगोंसे नमस्कृत होनेवाली, अपने नूपुरके झण-झण, झिंझिम शब्दोंसे भूतनाथ भगवान् शंकरको मोहित करनेवाली और नटी-नटोंके नायक प्रसिद्ध नट अर्धनारीश्वर शंकरके नृत्यसे सुशोभित नाट्य देखनेमें तल्लीन रहनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ १०॥

प्रसन्नचित्त तथा संतुष्ट देवताओंके द्वारा अर्पित किये गये पुष्पोंसे

सुनयनविभ्रमरभ्रमरभ्रमरभ्रमरभ्रमराभिद्रुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ ११॥
महितमहाहवमल्लमतल्लिकवल्लितरल्लितभल्लिरते
विरचितवल्लिकपालिकपल्लिकझिल्लिकभिल्लिकवर्गवृते ।
श्रुतकृतफुल्लसमुल्लसितारुणतल्लजपल्लवसल्ललिते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ १२॥
अयि सुदतीजन लालसमानसमोहनमन्मथराजसुते
अविरलगण्डगलन्मदमेदुरमत्तमतङ्गजराजगते ।
त्रिभुवनभूषणभूतकलानिधिरूपपयोनिधिराजसुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ १३॥

अत्यन्त मनोरम कान्ति धारण करनेवाली, निशाचरोंको वर प्रदान करनेवाले शिवजीकी भार्या, रात्रिसूक्तसे प्रसन्न होनेवाली, चन्द्रमाके समान मुखमण्डलवाली और सुन्दर नेत्रवाले कस्तूरी मृगोंमें व्याकुलता उत्पन्न करनेवाले भौंरोंसे तथा भ्रान्तिको दूर करनेवाले ज्ञानियोंसे अनुसरणकी जानेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ ११॥

महनीय महायुद्धके श्रेष्ठ वीरोंके द्वारा (इधर-उधर) घुमावदार तथा कलापूर्ण ढंगसे चलाये गये भालोंके युद्धके निरीक्षणमें चित्त लगानेवाली; कृत्रिम लतागृहका निर्माण कर उसका पालन करनेवाली स्त्रियोंकी बस्तीमें 'झिल्लिक' नामक वाद्यविशेष बजानेवाली भिल्लिनियोंके समूहसे सेवित होनेवाली और कानपर रखे हुए विकसित सुन्दर रक्तवर्ण तथा श्रेष्ठ कोमल पत्तोंसे सुशोभित होनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ १२॥

सुन्दर दंतपंक्तिवाली स्त्रियोंके उत्कण्ठापूर्ण मनको मुग्ध कर देनेवाले कामदेवको जीवन प्रदान करनेवाली, निरन्तर मद चूते हुए गण्डस्थलसे युक्त मदोन्मत्त गजराजके सदृश मन्थर गतिवाली और तीनों लोकोंके आभूषणस्वरूप चन्द्रमाके समान कान्तियुक्त सागर-कन्याके रूपमें प्रतिष्ठित हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ १३॥

कमलदलामलकोमलकान्तिकलाकलितामलभालतले
सकलविलासकलानिलयक्रमकेलिचलत्कलहंसकुले ।
अलिकुलसङ्कुलकुन्तलमण्डलमौलिमिलद्बकुलालिकुले
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ १४॥
करमुरलीरववर्जितकूजितलज्जितकोकिलमञ्जुमते
मिलितमिलिन्दमनोहरगुञ्जितरञ्जितशैलनिकुञ्जगते ।
निजगणभूतमहाशबरीगणरङ्गणसम्भृतकेलिरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ १५॥
कटितटपीतदुकूलविचित्रमयूखतिरस्कृतचण्डरुचे
जितकनकाचलमौलिमदोर्जितगर्जितकुञ्जरकुम्भकुचे ।

कमलदलके सदृश वक्र, निर्मल और कोमल कान्तिसे परिपूर्ण एक कलावाले चन्द्रमासे सुशोभित उज्ज्वल ललाट-पटलवाली, सम्पूर्ण विलासोंकी कलाओंकी आश्रयभूत मन्दगति तथा क्रीड़ासे सम्पन्न राजहंसोंके समुदायसे सुशोभित होनेवाली और भौंरोंके सृदश काले तथा सघन केशपाशकी चोटीपर शोभायमान मौलसिरी-पुष्पोंकी सुगन्धसे भ्रमरसमूहोंको आकृष्ट करनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ १४॥

आपके हाथमें सुशोभित मुरलीकी ध्वनि सुनकर बोलना बंद करके लाजसे भरी हुई कोकिलके प्रति प्रिय भावना रखनेवाली, भौंरोंके समूहोंकी मनोहर गूँजसे सुशोभित पर्वत-प्रदेशके निकुंजोंमें विहार करनेवाली और अपने भूत तथा भिल्लिनी आदि गणोंके नृत्यसे युक्त क्रीड़ाओंको देखनेमें सदा तल्लीन रहनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ १५॥

अपने कटिप्रदेशपर सुशोभित पीले रंगके रेशमी वस्त्रकी विचित्र कान्तिसे सूर्यकी प्रभाको तिरस्कृत कर देनेवाली, सुमेरु पर्वतके शिखरपर मदोन्मत्त गर्जना करनेवाले हाथियोंके गण्डस्थलके समान

प्रणतसुराऽसुरमौलिमणिस्फुरदंशुलसन्नखचन्द्ररुचे
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ १६॥
विजितसहस्त्रकरैकसहस्त्रकरैकसहस्त्रकरैकनुते
कृतसुरतारकसङ्गरतारकसङ्गरतारकसूनुनुते ।
सुरथसमाधिसमानसमाधिसमानसमाधिसुजाप्यरते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ १७॥
पदकमलं करुणानिलये वरिवस्यति योऽनुदिनं सुशिवे
अयि कमले कमलानिलये कमलानिलयः स कथं न भवेत्।

वक्षःस्थलवाली और आपको प्रणाम करनेवाले देवताओं तथा दैत्योंके मस्तकपर स्थित मणियोंसे निकली हुई किरणोंसे प्रकाशित चरणनखोंमें चन्द्रमासदृश कान्ति धारण करनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ १६॥

हजारों हस्त नक्षत्रोंको जीतनेवाले, सहस्त्र किरणोंवाले भगवान् सूर्यकी एकमात्र नमस्करणीय; देवताओंके उद्धारहेतु युद्ध करनेवाले, तारकासुरसे संग्राम करनेवाले तथा संसारसागरसे पार करनेवाले शिवजीके पुत्र कार्तिकेयसे प्रणाम की जानेवाली और राजा सुरथ तथा समाधि नामक वैश्यकी सविकल्प समाधिके समान समाधियोंमें सम्यक् जपे जानेवाले मन्त्रोंमें प्रेम रखनेवाली हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ १७॥

हे करुणामयी कल्याणमयी शिवे! हे कमलवासिनी कमले! जो मनुष्य प्रतिदिन आपके चरणकमलकी उपासना करता है, उसे लक्ष्मीका आश्रय

तव पदमेव परं पदमस्त्विति शीलयतो मम किं न शिवे
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ १८॥
कनकलसत्कलशीकजलैरनुषिञ्चति तेऽङ्गणरङ्गभुवं
भजति स किं न शचीकुचकुम्भनटीपरिरम्भसुखानुभवम्।
तव चरणं शरणं करवाणि सुवाणि पथं मम देहि शिवं
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ १९॥
तव विमलेन्दुकलं वदनेन्दुमलं कलयन्ननुकूलयते
किमु पुरुहूतपुरीन्दुमुखीसुमुखीभिरसौ विमुखीक्रियते।

क्यों नहीं प्राप्त होगा! हे शिवे! आपका चरण ही परम पद (मोक्ष) है—ऐसी भावना रखनेवाले मुझ भक्तको क्या-क्या सुलभ नहीं हो जायगा अर्थात् सब कुछ प्राप्त हो जायगा। हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ १८॥

स्वर्णके समान चमकते घड़ोंके जलसे जो आपके प्रांगणकी रंगभूमिको प्रक्षालित कर उसे स्वच्छ बनाता है, वह इन्द्राणीके समान विशाल वक्षःस्थलोंवाली सुन्दरियोंका सान्निध्य-सुख अवश्य ही प्राप्त करता है। हे सरस्वति! मैं आपके चरणोंको ही अपनी शरणस्थली बनाऊँ; मुझे कल्याणकारक मार्ग प्रदान करो। हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ १९॥

स्वच्छ चन्द्रमाके सदृश सुशोभित होनेवाले आपके मुखचन्द्रको निर्मल करके जो आपको प्रसन्न कर लेता है, क्या उसे देवराज इन्द्रकी नगरीमें रहनेवाली चन्द्रमुखी सुन्दरियाँ सुखसे वंचित रख सकती हैं!

मम तु मतं शिवमानधने भवती कृपया किमु न क्रियते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ २०॥
अयि मयि दीनदयालुतया कृपयैव त्वया भवितव्यमुमे
अयि जगतो जननीति यथाऽसि मयाऽसि तथाऽनुमतासि रमे।
यदुचितमत्र भवत्पुरगं कुरु शाम्भवि देवि दयां कुरु मे
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते॥ २१॥
स्तुतिमिमां स्तिमितः सुसमाधिना नियमतो यमतोऽनुदिनं पठेत्।
परमया रमया स निषेव्यते परिजनोऽरिजनोऽपि च तं भजेत्॥ २२॥

॥ इति श्रीसंकटास्तुतिः सम्पूर्णा ॥

भगवान् शिवके सम्मानको अपना सर्वस्व समझनेवाली [हे भगवति!] मेरा तो यह विश्वास है कि आपकी कृपासे क्या-क्या सिद्ध नहीं हो जाता! हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ २०॥

हे उमे! आप सदा दीन-दुःखियोंपर दयाका भाव रखती हैं, अतः आप मुझपर कृपालु बनी रहें। हे महालक्ष्मी! जैसे आप सारे संसारकी माता हैं, वैसे ही मैं आपको अपनी भी माता समझता हूँ। हे शिवे! यदि आपको उचित प्रतीत होता हो तो मुझे अपने लोकमें जानेकी योग्यता प्रदान करें; हे देवि! मुझपर दया करें। हे भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी महिषासुरमर्दिनी पार्वती! आपकी जय हो, जय हो॥ २१॥

जो मनुष्य शान्तभावसे पूर्णरूपसे मनको एकाग्र करके तथा इन्द्रियोंपर नियन्त्रण कर नियमपूर्वक प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करता है, भगवती महालक्ष्मी उसके यहाँ सदा वास करती हैं और उसके बन्धु-बान्धव तथा शत्रुजन भी सदा उसकी सेवामें तत्पर रहते हैं॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीसंकटास्तुति सम्पूर्ण हुई ॥

६१—संकष्टनामाष्टकम्

नारद उवाच

जैगीषव्य मुनिश्रेष्ठ सर्वज्ञ सुखदायक।
आख्यातानि सुपुण्यानि श्रुतानि त्वत्प्रसादतः॥ १॥
न तृप्तिमधिगच्छामि तव वागमृतेन च।
वदस्वैकं महाभाग संकटाख्यानमुत्तमम्॥ २॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा जैगीषव्योऽब्रवीत्ततः।
संकष्टनाशनं स्तोत्रं शृणु देवर्षिसत्तम॥ ३॥
द्वापरे तु पुरा वृत्ते भ्रष्टराज्यो युधिष्ठिरः।
भ्रातृभिः सहितो राज्यनिर्वेदं परमं गतः॥ ४॥
तदानीं तु ततः काशीं पुरीं यातो महामुनिः।
मार्कण्डेय इति ख्यातः सह शिष्यैर्महायशाः॥ ५॥

नारदजी बोले—हे मुनिवर जैगीषव्य! हे सर्वज्ञ! हे सुखदायक! आपकी कृपासे मैंने परम कल्याणदायक अनेक आख्यान सुने। किंतु आपकी अमृतमयी वाणीसे मुझे तृप्ति नहीं हो रही है; अतः हे महाभाग! आप संकटादेवीका एक उत्तम आख्यान कहिये॥ १-२॥

तब उनका यह वचन सुनकर जैगीषव्य बोले—हे देवर्षिश्रेष्ठ! अब आप संकटका नाश करनेवाले स्तोत्रको सुनें॥ ३॥

पूर्वकालमें जब द्वापरयुग चल रहा था, उसी समय महाराज युधिष्ठिर राज्यसे च्युत हो जानेके कारण भाइयोंसहित महान् राज्य-कष्टमें पड़ गये॥ ४॥

उस समय वे वहाँसे काशीपुरी पहुँचे, जहाँ महायशस्वी तथा अतिप्रसिद्ध महर्षि मार्कण्डेयजी अपने शिष्योंके साथ विद्यमान थे॥ ५॥

तं दृष्ट्वा स समुत्थाय प्रणिपत्य सुपूजितः।
किमर्थं म्लानवदन एतत्त्वं मां निवेदय॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

संकष्टं मे महत्प्राप्तमेतादृग्वदनं ततः।
एतन्निवारणोपायं किञ्चिद् ब्रूहि मुने मम॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

आनन्दकानने देवी संकटा नाम विश्रुता।
वीरेश्वरोत्तमे भागे पूर्वं चन्द्रेश्वरस्य च॥ ८ ॥
शृणु नामाष्टकं तस्याः सर्वसिद्धिकरं नृणाम्।
संकटा प्रथमं नाम द्वितीयं विजया तथा॥ ९ ॥
तृतीयं कामदा प्रोक्तं चतुर्थं दुःखहारिणी।
शर्वाणी पञ्चमं नाम षष्ठं कात्यायनी तथा॥ १० ॥

उन मुनिको देखकर युधिष्ठिरने उठकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनके द्वारा भलीभाँति पूजित मार्कण्डेयजीने उनसे पूछा—'आपके मुखपर उदासी क्यों है; आप मुझे यह बताइये'॥ ६॥

युधिष्ठिर बोले—मुझे महान् कष्ट मिला है, इसी कारणसे मेरे मुखपर ऐसी उदासी है। हे मुने! आप मेरे इस कष्टके निवारणका कोई उपाय बतलावें॥ ७॥

मार्कण्डेयजी बोले—आनन्दवन (काशी)-में 'संकटा' नामक भगवती कही गयी हैं, जो वीरेश्वरके उत्तरभागमें तथा चन्द्रेश्वरके पूर्वभागमें स्थित हैं॥ ८॥

मनुष्योंको सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले उनके नामाष्टकस्तोत्रको सुनिये। उनका पहला नाम संकटा, दूसरा विजया, तीसरा नाम कामदा, चौथा नाम दुःखहारिणी, पाँचवाँ शर्वाणी, छठा कात्यायनी,

सप्तमं भीमनयना सर्वरोगहराऽष्टमम्।
नामाष्टकमिदं पुण्यं त्रिसंध्यं श्रद्धयाऽन्वितः॥ ११॥
यः पठेत्पाठयेद्वापि नरो मुच्येत संकटात्।
इत्युक्त्वा तु द्विजश्रेष्ठमृषिर्वाराणसीं ययौ॥ १२॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा नारदो हर्षनिर्भरः।
ततः सम्पूजितां देवीं वीरेश्वरसमन्विताम्॥ १३॥
भुजैस्तु दशभिर्युक्तां लोचनत्रयभूषिताम्।
मालाकमण्डलुयुतां पद्मशङ्खगदायुताम्॥ १४॥
त्रिशूलडमरुधरां खड्गचर्मविभूषिताम्।
वरदाभयहस्तां तां प्रणम्य विधिनन्दनः॥ १५॥
वारत्रयं गृहीत्वा तु ततो विष्णुपुरं ययौ।
एतत्स्तोत्रस्य पठनं पुत्रपौत्रविवर्धनम्॥ १६॥

सातवाँ भीमनयना और आठवाँ नाम सर्वरोगहरा कहा गया है। जो मनुष्य श्रद्धासे युक्त होकर देवी संकटाके इस कल्याणकारी नामाष्टक स्तोत्रका तीनों सन्ध्याकालोंमें पाठ करता या कराता है, वह संकटसे मुक्त हो जाता है। द्विजवर नारदसे ऐसा कहकर ऋषि जैगीषव्य वाराणसी चले गये॥ ९—१२॥

उनकी यह बात सुनकर नारदजी आनन्दसे परिपूर्ण हो गये। इसके बाद उन्होंने वीरेश्वरसहित दस भुजाओं तथा तीन नेत्रोंसे सुशोभित, माला तथा कमण्डलु धारण करनेवाली, कमल-शंख-गदासे समन्वित, त्रिशूल तथा डमरू धारण करनेवाली, खड्ग तथा ढालसे विभूषित, हाथमें वर तथा अभय मुद्रा धारण करनेवाली भगवती संकटाका पूजन किया। इस प्रकार सम्यक् रूपसे पूजित उन देवीको प्रणाम करके तथा तीन बार उनका चरणोदक लेकर ब्रह्मापुत्र नारद विष्णुलोकको चले गये। इस स्तोत्रका पाठ पुत्र-पौत्रकी वृद्धि

संकष्टनाशनं चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन महावन्ध्याप्रसूतिकृत्॥ १७॥

॥ इति श्रीपद्ममहापुराणे संकष्टनामाष्टकं सम्पूर्णम्॥

६२—तुलसीस्तुतिः

श्रीभगवानुवाच

वृन्दारूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च।
विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम्॥ १॥
पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने।
तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम्॥ २॥
असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम्।
तेन विश्वपूजिताख्यां जगत्पूज्यां भजाम्यहम्॥ ३॥

करनेवाला है। संकटका नाश करनेवाला यह स्तोत्र तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है और यह महावन्ध्या स्त्रीको भी संतानकी प्राप्ति करानेवाला है। इस स्तोत्रको प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये॥ १३—१७॥

॥ इस प्रकार श्रीपद्ममहापुराणमें वर्णित संकष्टनामाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

श्रीभगवान् बोले—जब वृन्दा (तुलसी)-रूप वृक्ष तथा दूसरे वृक्ष एकत्र होते हैं, तब वृक्षसमुदाय अथवा वनको बुधजन वृन्दा कहते हैं। ऐसी वृन्दा नामसे प्रसिद्ध अपनी प्रिया तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ॥ १॥

जो देवी प्राचीनकालमें वृन्दावनमें प्रकट हुई थीं, अतएव जिन्हें वृन्दावनी कहते हैं, उन सौभाग्यवती देवीकी मैं उपासना करता हूँ॥ २॥

जो असंख्य वृक्षोंमें निरन्तर पूजा प्राप्त करती हैं, अतः जिनका नाम विश्वपूजिता पड़ा है, उन जगत्पूज्या देवीकी मैं उपासना करता हूँ॥ ३॥

असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि यया सदा।
तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥ ४॥
देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना।
तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥ ५॥
विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद् ध्रुवम्।
नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवताद्धि मे॥ ६॥
यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च।
तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥ ७॥
कृष्णजीवनरूपा या शश्वत्प्रियतमा सती।
तेन कृष्णजीवनीति मम रक्षतु जीवनम्॥ ८॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे प्रकृतिखण्डे भगवत्कृता तुलसीस्तुतिः सम्पूर्णा॥

जिन्होंने सदा अनन्त विश्वोंको पवित्र किया है, उन विश्वपावनी देवीका मैं विरहसे आतुर होकर स्मरण करता हूँ॥ ४॥

जिनके बिना अन्य पुष्पसमूहोंके अर्पण करनेपर भी देवता प्रसन्न नहीं होते, ऐसी पुष्पसारा—पुष्पोंमें सारभूता, शुद्धस्वरूपिणी तुलसीदेवीका मैं शोकसे व्याकुल होकर दर्शन करना चाहता हूँ॥ ५॥

संसारमें जिसकी प्राप्तिमात्रसे भक्त परम आनन्दित हो जाता है, इसलिये नन्दिनी नामसे जिनकी प्रसिद्धि है, वे भगवती तुलसी अब मुझपर प्रसन्न हो जायँ॥ ६॥

जिन देवीकी अखिल विश्वमें कहीं तुलना नहीं है, अतएव जो 'तुलसी' कहलाती हैं, उन अपनी प्रियाकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ ७॥

वे साध्वी तुलसी वृन्दारूपसे भगवान् श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा हैं और उनकी सदा प्रियतमा होनेसे 'कृष्णजीवनी' नामसे विख्यात हैं। वे देवी तुलसी मेरे जीवनकी रक्षा करें॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणके प्रकृतिखण्डमें भगवान्द्वारा की गयी तुलसीस्तुति सम्पूर्ण हुई॥

६३—तुलसीस्तोत्रम्

जगद्धात्रि नमस्तुभ्यं विष्णोश्च प्रियवल्लभे।
यतो ब्रह्मादयो देवाः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः॥ १॥
नमस्तुलसि कल्याणि नमो विष्णुप्रिये शुभे।
नमो मोक्षप्रदे देवि नमः सम्पत्प्रदायिके॥ २॥
तुलसी पातु मां नित्यं सर्वापद्भ्योऽपि सर्वदा।
कीर्तितापि स्मृता वापि पवित्रयति मानवम्॥ ३॥
नमामि शिरसा देवीं तुलसीं विलसत्तनुम्।
यां दृष्ट्वा पापिनो मर्त्या मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषात्॥ ४॥
तुलस्या रक्षितं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
या विनिहन्ति पापानि दृष्ट्वा वा पापिभिर्नरैः॥ ५॥

हे जगज्जननि! हे विष्णुकी प्रियवल्लभे! आपको नमस्कार है। आपसे ही शक्ति प्राप्तकर ब्रह्मा आदि देवता विश्वका सृजन, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ होते हैं॥ १॥

हे कल्याणमयी तुलसि! आपको नमस्कार है। हे सौभाग्यशालिनी विष्णुप्रिये! आपको नमस्कार है। हे मोक्षदायिनी देवि! आपको नमस्कार है। हे सम्पत्ति देनेवाली देवि! आपको नमस्कार है॥ २॥

भगवती तुलसी समस्त आपदाओंसे नित्य मेरी रक्षा करें। इनका संकीर्तन अथवा स्मरण करनेपर ये देवी तुलसी मनुष्यको पवित्र कर देती हैं॥ ३॥

प्रकाशमान विग्रहवाली भगवती तुलसीको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, जिनका दर्शन करके पातकी मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ४॥

तुलसीके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् रक्षित है। पापी मनुष्योंके द्वारा इनका दर्शनमात्र कर लेनेसे ये भगवती उनके पापोंका नाश कर देती हैं॥ ५॥

नमस्तुलस्यतितरां यस्यै बद्ध्वाञ्जलिं कलौ।
कलयन्ति सुखं सर्वं स्त्रियो वैश्यास्तथाऽपरे॥ ६ ॥
तुलस्या नापरं किञ्चिद् दैवतं जगतीतले।
यथा पवित्रितो लोको विष्णुसङ्गेन वैष्णवः॥ ७ ॥
तुलस्याः पल्लवं विष्णोः शिरस्यारोपितं कलौ।
आरोपयति सर्वाणि श्रेयांसि वरमस्तके॥ ८ ॥
तुलस्यां सकला देवा वसन्ति सततं यतः।
अतस्तामर्चयेल्लोके सर्वान् देवान् समर्चयन्॥ ९ ॥
नमस्तुलसि सर्वज्ञे पुरुषोत्तमवल्लभे।
पाहि मां सर्वपापेभ्यः सर्वसम्पत्प्रदायिके॥ १० ॥

हे तुलसि! आपको नमस्कार है, जिन्हें श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर नमस्कार करनेमात्रसे कलियुगमें सभी स्त्रियाँ, वैश्य तथा अन्य लोग समस्त सुख प्राप्त कर लेते हैं॥ ६॥

इस पृथ्वीतलपर तुलसीसे बढ़कर अन्य कोई देवता नहीं है, जिनके द्वारा यह जगत् उसी भाँति पवित्र कर दिया गया है जैसे भगवान् विष्णुके प्रति अनुरागभावसे कोई वैष्णव पवित्र हो जाता है॥ ७॥

इस कलियुगमें भगवान् विष्णुके सिरपर अर्पित किया गया तुलसीदल मनुष्यके श्रेष्ठ मस्तकपर सभी प्रकारके कल्याण-साधन प्रतिष्ठित कर देता है॥ ८॥

समस्त देवगण तुलसीमें निवास करते हैं, अतः लोकमें मनुष्यको सभी देवताओंकी पूजा करनेके साथ ही तुलसीकी भी आराधना करनी चाहिये॥ ९॥

हे सब कुछ जाननेवाली तुलसि! आपको नमस्कार है। हे विष्णुप्रिये! हे सर्वसम्पत्तिदायिनि! सभी पापोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

इति स्तोत्रं पुरा गीतं पुण्डरीकेण धीमता।
विष्णुमर्चयता नित्यं शोभनैस्तुलसीदलैः॥ ११॥
तुलसी श्रीर्महालक्ष्मीर्विद्याविद्या यशस्विनी।
धर्म्या धर्मानना देवी देवीदेवमनःप्रिया॥ १२॥
लक्ष्मीप्रियसखी देवी द्यौर्भूमिरचला चला।
षोडशैतानि नामानि तुलस्याः कीर्तयन्नरः॥ १३॥
लभते सुतरां भक्तिमन्ते विष्णुपदं लभेत्।
तुलसी भूर्महालक्ष्मीः पद्मिनी श्रीर्हरिप्रिया॥ १४॥
तुलसि श्रीसखि शुभे पापहारिणि पुण्यदे।
नमस्ते नारदनुते नारायणमनःप्रिये॥ १५॥

॥ इति श्रीपुण्डरीककृतं तुलसीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

पूर्वकालमें श्रेष्ठ तुलसीदलोंसे भगवान् विष्णुकी नित्य उपासना करते हुए बुद्धिमान् पुण्डरीक इस स्तोत्रका गान किया करते थे॥ ११॥

तुलसी, श्री, महालक्ष्मी, विद्या, अविद्या, यशस्विनी, धर्म्या, धर्मानना, देवी, देवीदेवमनःप्रिया, लक्ष्मीप्रियसखी, देवी, द्यौ, भूमि, अचला और चला—भगवती तुलसीके इन सोलह नामोंका संकीर्तन करनेवाला मनुष्य विशुद्ध भक्ति प्राप्त करता है और अन्तमें विष्णुलोक प्राप्त कर लेता है। तुलसी, भू, महालक्ष्मी, पद्मिनी, श्री तथा हरिप्रिया—इन नामोंसे भी आप प्रसिद्ध हैं। लक्ष्मीकी सखी, सौभाग्यशालिनी, पापोंका नाश करनेवाली, पुण्य देनेवाली, नारदके द्वारा नमस्कृत तथा नारायणके मनको प्रिय लगनेवाली हे तुलसि! आपको नमस्कार है॥ १२—१५॥

॥ इस प्रकार श्रीपुण्डरीककृत तुलसीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

६४—षष्ठीस्तोत्रम्

प्रियव्रत उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः।
शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥ १॥
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः।
सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥ २॥
शक्तेः षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः।
मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥ ३॥
पारायै पारदायै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
सारायै शारदायै च पारायै सर्वकर्मणाम्॥ ४॥
बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्॥ ५॥

राजा प्रियव्रत बोले—देवीको नमस्कार है। महादेवीको नमस्कार है। भगवती सिद्धि एवं शान्तिको नमस्कार है। शुभा, देवसेना एवं भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदा, पुत्रदा, धनदा, सुखदा एवं मोक्षदा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है॥ १-२॥

मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली भगवती सिद्धाको नमस्कार है। माया, सिद्धयोगिनी, स्वयं मुक्त एवं मुक्तिदात्री, सारा, शारदा और सभी कर्मोंसे परे रहनेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है॥ ३-४॥

बालकोंकी अधिष्ठात्री, कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याणस्वरूपिणी एवं कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है॥ ५॥

प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु॥ ६ ॥
देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा॥ ७ ॥
हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि॥ ८ ॥
धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
भूमिं देहि प्रजां देहि देहि विद्यां सुपूजिते॥ ९ ॥
कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
इति देवीं च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः।
यशस्विनं च राजेन्द्रः षष्ठीदेवीप्रसादतः॥ १०॥

अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली तथा सबके लिये सम्पूर्ण कार्योंमें पूजा प्राप्त करनेकी अधिकारिणी स्वामी कार्तिकेयकी प्राणप्रिया देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है॥ ६॥

मनुष्य जिनकी सदा वन्दना करते हैं तथा देवताओंकी रक्षामें जो तत्पर रहती हैं, उन शुद्धसत्त्वस्वरूपा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हिंसा और क्रोधसे रहित भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हे सुरेश्वरि! आप मुझे धन दें, प्रिय पत्नी दें और पुत्र देनेकी कृपा करें॥ ७-८॥

मुझे धर्म दें, यश दें। हे भगवती षष्ठी! आपको बार-बार नमस्कार है। हे सुपूजिते! आप मुझे भूमि दें, प्रजा दें, विद्या दें तथा कल्याण एवं जय प्रदान करें। हे षष्ठीदेवि! आपको बार-बार नमस्कार है। इस प्रकार देवीकी स्तुति करनेके पश्चात् महाराज प्रियव्रतने षष्ठीदेवीके प्रसादसे यशस्वी पुत्र प्राप्त कर लिया॥ ९-१०॥

षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति च वत्सरम्।
अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम्॥ ११॥
वर्षमेकं च या भक्त्या संयतेदं शृणोति च।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्ता महावन्ध्या प्रसूयते॥ १२॥
वीरपुत्रं च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम्।
सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीमातृप्रसादतः॥ १३॥
काकवन्ध्या * च या नारी मृतापत्या च या भवेत्।
वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः॥ १४॥
रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति च।
मासं च मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः॥ १५॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे प्रकृतिखण्डे प्रियव्रतकृतं षष्ठीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

ब्रह्मन्! जो पुरुष भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रका एक वर्षतक श्रवण करता है, वह यदि पुत्रहीन हो तो दीर्घजीवी सुन्दर पुत्र प्राप्त कर लेता है॥ ११॥

जो स्त्री एक वर्षतक भक्तिपूर्वक संयतचित्त होकर देवीकी पूजा करके इनका यह स्तोत्र सुनती है, उसके सम्पूर्ण पाप विलीन हो जाते हैं। महान् वन्ध्या भी इसके प्रसादसे संतान प्रसव करनेकी योग्यता प्राप्त कर लेती है। वह माता षष्ठीदेवीकी कृपासे गुणी, विद्वान्, यशस्वी, दीर्घायु एवं श्रेष्ठ पुत्रकी जननी होती है॥ १२-१३॥

काकवन्ध्या अथवा मृतवत्सा नारी एक वर्षतक इसका श्रवण करनेके फलस्वरूप भगवती षष्ठीके प्रभावसे पुत्र प्राप्त कर लेती है। यदि बालकको रोग हो जाय तो उसके माता-पिता एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करें तो षष्ठीदेवीकी कृपासे उस बालककी व्याधि शान्त हो जाती है॥ १४-१५॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणके प्रकृतिखण्डमें प्रियव्रतकृत षष्ठीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

* काकवन्ध्या वह नारी है, जो एक ही संतानको जन्म देती है।

६५—सुरभिस्तोत्रम्

महेन्द्र उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः।
गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके॥ १॥
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः।
नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः॥ २॥
कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परम्।
श्रीदायै धनदायै च बुद्धिदायै नमो नमः॥ ३॥
शुभदायै प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः।
यशोदायै सौख्यदायै धर्मज्ञायै नमो नमः॥ ४॥
स्तोत्रस्मरणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः।
आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी॥ ५॥

महेन्द्र बोले—देवी एवं महादेवी सुरभीको बार-बार नमस्कार है। जगदम्बिके! तुम गौओंकी बीजस्वरूपा हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम श्रीराधाको प्रिय हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम लक्ष्मीकी अंशभूता हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है। श्रीकृष्णप्रियाको नमस्कार है। गौओंकी माताको बार-बार नमस्कार है॥ १-२॥

जो सबके लिये कल्पवृक्षस्वरूपा तथा श्री, धन और बुद्धि प्रदान करनेवाली हैं, उन भगवती सुरभीको बार-बार नमस्कार है। शुभदा, प्रसन्ना और गोप्रदायिनी सुरभीदेवीको बार-बार नमस्कार है। यश और सौख्य प्रदान करनेवाली धर्मज्ञादेवीको बार-बार नमस्कार है॥ ३-४॥

इस प्रकार स्तुति सुनते ही सनातनी जगज्जननी भगवती सुरभी संतुष्ट और प्रसन्न हो उस ब्रह्मलोकमें ही प्रकट हो गयीं।

महेन्द्राय वरं दत्त्वा वाञ्छितं सर्वदुर्लभम्।
जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम्॥ ६ ॥
बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद।
दुग्धाद्घृतं ततो यज्ञस्ततःप्रीतिः सुरस्य च॥ ७ ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्।
स गोमान् धनवांश्चैव कीर्तिवान् पुण्यवान् भवेत्॥ ८ ॥
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम्॥ ९ ॥
सुचिरं निवसेत्तत्र कुरुते कृष्णसेवनम्।
न पुनर्भवनं तस्य ब्रह्मपुत्र भवे भवेत्॥ १०॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे प्रकृतिखण्डे महेन्द्रकृतं सुरभिस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

देवराज इन्द्रको परम दुर्लभ मनोवांछित वर देकर वे पुनः गोलोकको चली गयीं, देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ ५-६॥

नारद! फिर तो सारा विश्व सहसा दूधसे परिपूर्ण हो गया। दूधसे घृत बना और घृतसे यज्ञ सम्पन्न होने लगे तथा उनसे देवता संतुष्ट हुए॥ ७॥

जो मानव इस महान् पवित्र स्तोत्रका भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, वह गोधनसे सम्पन्न, प्रचुर सम्पत्तिवाला, परम यशस्वी और पुत्रवान् हो जायगा॥ ८॥

उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने तथा अखिल यज्ञोंमें दीक्षित होनेका फल सुलभ होगा। ऐसा पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके धाममें चला जाता है॥ ९॥

चिरकालतक वहाँ रहकर भगवान्‌की सेवा करता रहता है। हे ब्रह्मपुत्र नारद! उसे पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणके प्रकृतिखण्डमें महेन्द्रकृत सुरभिस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

६६—पृथ्वीस्तोत्रम्

विष्णुरुवाच

यज्ञसूकरजाया त्वं जयं देहि जयावहे।
जयेऽजये जयाधारे जयशीले जयप्रदे॥ १॥
सर्वाधारे सर्वबीजे सर्वशक्तिसमन्विते।
सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे॥ २॥
सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे।
सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भवे॥ ३॥
मङ्गले मङ्गलाधारे मङ्गल्ये मङ्गलप्रदे।
मङ्गलार्थे मङ्गलेशे मङ्गलं देहि मे भवे॥ ४॥

भगवान् विष्णु बोले—विजयकी प्राप्ति करानेवाली वसुधे! मुझे विजय दो। तुम भगवान् यज्ञवराहकी पत्नी हो। जये! तुम्हारी कभी पराजय नहीं होती है। तुम विजयका आधार, विजयशील और विजयदायिनी हो॥ १॥

देवि! तुम्हीं सबकी आधारभूमि हो। सर्वबीजस्वरूपिणी तथा सम्पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न हो। समस्त कामनाओंको देनेवाली देवि! तुम इस संसारमें मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तु प्रदान करो॥ २॥

तुम सब प्रकारके शस्योंका घर हो। सब तरहके शस्योंसे सम्पन्न हो। सभी शस्योंको देनेवाली हो तथा समयविशेषमें समस्त शस्योंका अपहरण भी कर लेती हो। इस संसारमें तुम सर्वशस्यस्वरूपिणी हो॥ ३॥

मंगलमयी देवि! तुम मंगलका आधार हो। मंगलके योग्य हो। मंगलदायिनी हो। मंगलमय पदार्थ तुम्हारे स्वरूप हैं। मंगलेश्वरि! तुम जगत्‌में मुझे मंगल प्रदान करो॥ ४॥

भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे।
भूमिपाहङ्काररूपे भूमिं देहि च भूमिदे॥ ५॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं तां सम्पूज्य च यः पठेत्।
कोटिकोटि जन्मजन्म स भवेद् भूमिपेश्वरः॥ ६॥
भूमिदानकृतं पुण्यं लभते पठनाज्जनः।
भूमिदानहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥ ७॥
भूमौ वीर्यत्यागपापाद् भूमौ दीपादिस्थापनात्।
पापेन मुच्यते प्राज्ञः स्तोत्रस्य पाठनान्मुने।
अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥ ८॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे प्रकृतिखण्डे विष्णुकृतं पृथ्वीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

भूमे! तुम भूमिपालोंका सर्वस्व हो, भूमिपालपरायण हो तथा भूमिपालोंके अहंकारका मूर्तरूप हो। भूमिदायिनी देवि! मुझे भूमि दो॥ ५॥

[नारद!] यह स्तोत्र परम पवित्र है। जो पुरुष पृथ्वीका पूजन करके इसका पाठ करता है, उसे अनेक जन्मोंतक भूपाल—सम्राट् होनेका सौभाग्य प्राप्त होता है॥ ६॥

इसे पढ़नेसे मनुष्य पृथ्वीके दानसे उत्पन्न पुण्यका अधिकारी बन जाता है। पृथ्वी-दानके अपहरणसे जो पाप होता है, इस स्तोत्रका पाठ करनेपर मनुष्य उससे छुटकारा पा जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ७॥

मुने! पृथ्वीपर वीर्य त्यागने तथा दीपक रखनेसे जो पाप होता है, उससे भी बुद्धिमान् पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मुक्त हो जाता है और सौ अश्वमेधयज्ञोंके करनेका पुण्यफल प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणके प्रकृतिखण्डमें विष्णुकृत पृथ्वीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

६७—स्वधास्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत्॥ १॥
स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत्।
श्राद्धस्य फलमाप्नोति कालस्य तर्पणस्य च॥ २॥
श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
लभेच्छ्राद्धशतानां च पुण्यमेव न संशयः॥ ३॥
स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
प्रियां विनीतां स लभेत्साध्वीं पुत्रं गुणान्वितम्॥ ४॥
पितॄणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी।
श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—'स्वधा' शब्दके उच्चारणमात्रसे मानव तीर्थस्नायी हो जाता है। वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर वाजपेययज्ञके फलका अधिकारी हो जाता है॥ १॥

स्वधा, स्वधा, स्वधा—इस प्रकार यदि तीन बार स्मरण किया जाय तो श्राद्ध, काल और तर्पणके फल पुरुषको प्राप्त हो जाते हैं॥ २॥

श्राद्धके अवसरपर जो पुरुष सावधान होकर स्वधादेवीके स्तोत्रका श्रवण करता है, वह सौ श्राद्धोंका पुण्य पा लेता है—इसमें संशय नहीं है॥ ३॥

जो मानव स्वधा, स्वधा, स्वधा—इस पवित्र नामका त्रिकाल सन्ध्याके समय पाठ करता है, उसे विनीत, पतिव्रता एवं प्रिय पत्नी प्राप्त होती है तथा सद्‌गुणसम्पन्न पुत्रका लाभ होता है॥ ४॥

देवि! तुम पितरोंके लिये प्राणतुल्या और ब्राह्मणोंके लिये जीवनस्वरूपिणी हो। तुम्हें श्राद्धकी अधिष्ठात्रीदेवी कहा गया है। तुम्हारी ही कृपासे श्राद्ध और तर्पण आदिके फल मिलते हैं॥ ५॥

बहिर्गच्छ मन्मनसः पितॄणां तुष्टिहेतवे।
सम्प्रीतये द्विजातीनां गृहिणां वृद्धिहेतवे॥ ६ ॥
नित्या त्वं नित्यस्वरूपासि गुणरूपासि सुव्रते।
आविर्भावस्तिरोभावः सृष्टौ च प्रलये तव॥ ७ ॥
ॐ स्वस्तिश्च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा।
निरूपिताश्चतुर्वेदे षट् प्रशस्ताश्च कर्मिणाम्॥ ८ ॥
पुरासीस्त्वं स्वधागोपी गोलोके राधिकासखी।
धृतोरसि स्वधात्मानं कृतं तेन स्वधा स्मृता॥ ९ ॥
इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके च संसदि।
तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधा साविर्बभूव ह॥ १०॥

तुम पितरोंकी तुष्टि, द्विजातियोंकी प्रीति तथा गृहस्थोंकी अभिवृद्धिके लिये मुझ ब्रह्माके मनसे निकलकर बाहर जाओ॥ ६॥

सुव्रते! तुम नित्य हो, तुम्हारा विग्रह नित्य और गुणमय है। तुम सृष्टिके समय प्रकट होती हो और प्रलयकालमें तुम्हारा तिरोभाव हो जाता है॥ ७॥

तुम ॐ, नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा एवं दक्षिणा हो। चारों वेदोंद्वारा तुम्हारे इन छः स्वरूपोंका निरूपण किया गया है, कर्मकाण्डी लोगोंमें इन छहोंकी बड़ी मान्यता है॥ ८॥

हे देवि! तुम पहले गोलोकमें 'स्वधा' नामकी गोपी थी और राधिकाकी सखी थी, भगवान् कृष्णने अपने वक्षःस्थलपर तुम्हें धारण किया, इसी कारण तुम 'स्वधा' नामसे जानी गयी॥ ९॥

इस प्रकार देवी स्वधाकी महिमा गाकर ब्रह्माजी अपनी सभामें विराजमान हो गये। इतनेमें सहसा भगवती स्वधा उनके सामने प्रकट हो गयीं॥ १०॥

तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम्।
तां सम्प्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः॥ ११॥
स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु वेदपाठफलं लभेत्॥ १२॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे प्रकृतिखण्डे ब्रह्माकृतं स्वधास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

६८—दक्षिणास्तोत्रम्

यज्ञपुरुष उवाच

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरा परा।
राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिये॥ १॥
कार्तिकीपूर्णिमायां तु रासे राधामहोत्सवे।
आविर्भूता दक्षिणांशात्कृष्णस्य तेन दक्षिणा॥ २॥

तब पितामहने उन कमलनयनी देवीको पितरोंके प्रति समर्पण कर दिया। उन देवीकी प्राप्तिसे पितर अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने लोकको चले गये॥ ११॥

यह भगवती स्वधाका पुनीत स्तोत्र है। जो पुरुष समाहित चित्तसे इस स्तोत्रका श्रवण करता है, उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया और वह वेदपाठका फल प्राप्त कर लेता है॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणके प्रकृतिखण्डमें ब्रह्माकृत स्वधास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

यज्ञपुरुषने कहा—महाभागे! तुम पूर्वसमयमें गोलोककी एक गोपी थी। गोपियोंमें तुम्हारा प्रमुख स्थान था। राधाके समान ही तुम उनकी सखी थी। भगवान् श्रीकृष्ण तुमसे प्रेम करते थे॥ १॥

कार्तिकी पूर्णिमाके दिन राधा-महोत्सवके अवसरपर तुम भगवान् श्रीकृष्णके दक्षिण कन्धेसे प्रकट हुई थी, अतएव तुम्हारा नाम दक्षिणा पड़ गया॥ २॥

पुरा त्वं सुशीलाख्या शीलेन शोभनेन च।
कृष्णदक्षांशवासाच्च राधाशापाच्च दक्षिणा॥ ३॥
गोलोकात्त्वं परिध्वस्ता मम भाग्यादुपस्थिता।
कृपां कुरु त्वमेवाद्य स्वामिनं कुरु मां प्रिये॥ ४॥
कर्मिणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा।
त्वया विना च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम्॥ ५॥
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो महीतले।
त्वया विना तथा कर्मकर्मिणां च न शोभते॥ ६॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च।
कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना॥ ७॥

तुम इससे पहले मांगलिक शीलवती होनेके कारण सुशीला कहलाती थी। भगवान् श्रीकृष्णके दक्षिणांशमें निवास करनेके कारण देवी श्रीराधाके शापसे गोलोकसे च्युत होकर दक्षिणा नामसे सम्पन्न हो मुझे सौभाग्यवश प्राप्त हुई हो। प्रिये! आज तुम मुझे अपना स्वामी बनानेकी कृपा करो॥ ३-४॥

तुम्हीं यज्ञशाली पुरुषोंके कर्मका सदा फल प्रदान करनेवाली आदरणीया देवी हो, तुम्हारे बिना सम्पूर्ण प्राणियोंके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं॥ ५॥

तुम्हारी अनुपस्थितिमें कर्मियोंका कर्म उसी प्रकार शोभा नहीं पाता, जिस प्रकार पृथ्वीतलपर फल और शाखासे विहीन वृक्ष शोभा नहीं पाता॥ ६॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा दिक्पालप्रभृति सभी देवता तुम्हारे न रहनेसे कर्मोंका फल देनेमें असमर्थ रहते हैं॥ ७॥

कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः।
यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी॥ ८ ॥
फलदाता परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः।
स्वयं कृष्णश्च भगवान्न च शक्तस्त्वया विना॥ ९ ॥
त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि।
सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने॥ १०॥
इत्युक्त्वा तत्पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवकः।
तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला॥ ११॥
इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत्।
फलं च सर्वयज्ञानां लभते नात्र संशयः॥ १२॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे प्रकृतिखण्डे यज्ञपुरुषकृतं दक्षिणास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

ब्रह्मा स्वयं कर्मरूप हैं। शंकरको फलरूप बतलाया गया है। मैं विष्णु स्वयं यज्ञरूपसे प्रकट हूँ। इन सबमें साररूपा तुम्हीं हो॥ ८॥

साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण, जो प्राकृत गुणोंसे रहित तथा प्रकृतिसे परे हैं, समस्त फलोंके दाता हैं, परंतु वे श्रीकृष्ण भी तुम्हारे बिना कुछ करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ९॥

कान्ते! सदा जन्म-जन्मसे तुम्हीं मेरी शक्ति हो। वरानने! तुम्हारे साथ रहकर ही मैं समस्त कर्मोंमें समर्थ हूँ॥ १०॥

ऐसा कहकर यज्ञके अधिष्ठाता देवता दक्षिणाके सामने खड़े हो गये। तब कमलाकी कलास्वरूपा उस देवीने संतुष्ट होकर यज्ञपुरुषका वरण किया॥ ११॥

यह भगवती दक्षिणाका स्तोत्र है। जो पुरुष यज्ञके अवसरपर इसका पाठ करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञोंके फल सुलभ हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणके प्रकृतिखण्डमें यज्ञपुरुषकृत दक्षिणास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

६९—मनसास्तोत्रम्

नारायण उवाच

कन्या भगवती सा च कश्यपस्य च मानसी।
तेनेयं मनसा देवी मनसा या च दीव्यति॥ १॥
मनसा ध्यायते या वा परमात्मानमीश्वरम्।
तेन सा मनसा देवी योगेन तेन दीव्यति॥ २॥
आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी।
त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः॥ ३॥
जरत्कारुशरीरं च दृष्ट्वा यां क्षीणमीश्वरः।
गोपीपतिर्नाम चक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः॥ ४॥
वाञ्छितं च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः।
पूजां च कारयामास चकार च पुनः स्वयम्॥ ५॥

भगवान् नारायण [नारदजीसे] कहते हैं—ये भगवती कश्यपजीकी मानसी कन्या हैं तथा मनसे उद्दीप्त होती हैं, इसलिये मनसादेवीके नामसे विख्यात हैं॥ १॥

अथवा जो मनसे परमात्मा ईश्वर श्रीकृष्णका ध्यान करती हैं और इस मानसयोगसे प्रकाशित होती हैं, इसलिये मनसा कहलाती हैं॥ २॥

आत्मामें रमण करनेवाली इन सिद्धयोगिनी वैष्णवीदेवीने तीन युगोंतक परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी तपस्या की है॥ ३॥

गोपीपति परम प्रभु उन परमेश्वरने इनके वस्त्र और शरीरको जीर्ण देखकर इनका जरत्कारु नाम रख दिया॥ ४॥

साथ ही उन कृपानिधिने कृपापूर्वक इनकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण कर दीं, इनकी पूजाका प्रचार किया और स्वयं भी इनकी पूजा की॥ ५॥

स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः।
भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा।
जगद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती॥ ६ ॥
शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवीति कीर्तिता।
विष्णुभक्तातीव शश्वद् वैष्णवी तेन नारद॥ ७ ॥
नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे जनमेजयस्य च।
नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनी तथा॥ ८ ॥
विषं संहर्तुमीशा सा तेन विषहरीति सा।
सिद्धं योगं हरात्प्राप तेनाति सिद्धयोगिनी॥ ९ ॥
महाज्ञानं च गोप्यं च मृतसञ्जीवनीं पराम्।
महाज्ञानयुतां तां च प्रवदन्ति मनीषिणः॥ १०॥

स्वर्गमें, ब्रह्मलोकमें, भूमण्डलमें और पातालमें—सर्वत्र इनकी पूजा प्रचलित हुई। सम्पूर्ण जगत्में ये अत्यधिक गौरवर्णा, सुन्दरी और मनोहारिणी हैं, अतएव ये साध्वी देवी जगद्गौरीके नामसे विख्यात होकर सम्मान प्राप्त करती हैं॥ ६॥

भगवान् शिवसे शिक्षा प्राप्त करनेके कारण ये देवी शैवी कहलाती हैं। हे नारद! ये भगवान् विष्णुकी अनन्य उपासिका हैं। अतएव लोग इन्हें वैष्णवी कहते हैं॥ ७॥

राजा जनमेजयके यज्ञमें इन्हींके सत्प्रयत्नसे नागोंके प्राणोंकी रक्षा हुई थी, अतः इनका नाम नागेश्वरी और नागभगिनी पड़ गया॥ ८॥

विषका संहार करनेमें परम समर्थ होनेसे इनका एक नाम विषहरी है। इन्हें भगवान् शंकरसे योगसिद्धि प्राप्त हुई थी। अतः ये सिद्धयोगिनी कहलाने लगीं॥ ९॥

इन्होंने शंकरजीसे महान् गोपनीय ज्ञान एवं मृतसंजीवनी नामक उत्तम विद्या प्राप्त की है, इस कारण विद्वान् पुरुष इन्हें महाज्ञानयुता कहते हैं॥ १०॥

आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सा च तपस्विनः।
आस्तीकमाता विख्याता जगत्सु सुप्रतिष्ठिता॥ ११॥
प्रिया मुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्य महात्मनः।
योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारोः प्रिया ततः॥ १२॥
ॐ नमो मनसायै।
जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी।
वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा॥ १३॥
जरत्कारुप्रियास्तीकमाता विषहरीति च।
महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता॥ १४॥
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले च यः पठेत्।
तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च॥ १५॥

ये देवी परम तपस्वी मुनिवर आस्तीककी माता हैं। अतः ये देवी जगत्में सुप्रतिष्ठित होकर आस्तीकमाता नामसे विख्यात हुई हैं॥ ११॥

जगत्पूज्य योगी महात्मा मुनीन्द्र जरत्कारुकी प्रिय पत्नी होनेके कारण ये जरत्कारुप्रिया नामसे विख्यात हुईं॥ १२॥

ॐ मनसादेवीको नमस्कार है। जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरी और महाज्ञानयुता—इन बारह नामोंसे विश्व इनकी पूजा करता है॥ १३-१४॥

जो पुरुष पूजाके समय इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशजोंको भी सर्पका भय नहीं हो सकता॥ १५॥

नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे।
नागयुते महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे॥ १६॥
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः।
नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते॥ १७॥
दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्।
स्तोत्रं सिद्धं भवेद्यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः॥ १८॥
नागौघं भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः।
नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः॥ १९॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणकृतं मनसास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

जिस शयनागारमें नागोंका भय हो, जिस भवनमें बहुतेरे नाग भरे हों, नागोंसे युक्त होनेके कारण जो महान् दारुण स्थान बन गया हो तथा जो नागोंसे वेष्टित हो, वहाँ भी पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करके सर्पभयसे मुक्त हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है। जो नित्य इसका पाठ करता है, उसे देखकर नाग भाग जाते हैं॥ १६-१७॥

दस लाख पाठ करनेसे यह स्तोत्र मनुष्योंके लिये सिद्ध हो जाता है। जिसे यह स्तोत्र सिद्ध हो गया, वह विषभक्षण करने तथा नागोंको भूषण बनाकर नागपर सवारी करनेमें भी समर्थ हो सकता है। वह नागासन, नागतल्प तथा महान् सिद्ध हो जाता है॥ १८-१९॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणके प्रकृतिखण्डमें नारायणकृत मनसास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

७०—श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती॥ १ ॥
ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी।
आर्या दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी॥ २ ॥
पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपाः।
मनो बुद्धिरहङ्कारा चित्तरूपा चिता चितिः॥ ३ ॥
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याभव्या सदागतिः॥ ४ ॥
शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी॥ ५ ॥
अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी॥ ६ ॥
अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता॥ ७ ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः॥ ८ ॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना॥ ९ ॥
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी।
मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी॥ १० ॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा॥ ११ ॥

अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी।
कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः॥ १२॥
अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला॥ १३॥
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी॥ १४॥
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी॥ १५॥
य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम्।
नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति॥ १६॥
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च।
चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम्॥ १७॥
कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम्।
पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम्॥ १८॥
तस्य सिद्धिर्भवेद् देवि सर्वैः सुरवरैरपि।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात्॥ १९॥
गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन
सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो
भवेत् सदा धारयते पुरारिः॥ २०॥
भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् सम्पदां पदम्॥ २१॥

॥ इति श्रीविश्वसारतन्त्रे श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

महादेवीके विभिन्न स्वरूपोंका ध्यान

(१) भगवती दुर्गा

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥

मैं तीन नेत्रोंवाली दुर्गादेवीका ध्यान करता हूँ, उनके श्रीअंगोंकी प्रभा बिजलीके समान है। वे सिंहके कन्धेपर बैठी हुई भयंकर प्रतीत होती हैं। हाथोंमें तलवार और ढाल लिये अनेक कन्याएँ उनकी सेवामें खड़ी हैं। वे अपने हाथोंमें चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और तर्जनी मुद्रा धारण किये हुए हैं। उनका स्वरूप अग्निमय है तथा वे माथेपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करती हैं।

(२) भगवती ललिता

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम्॥

सिन्दूरके समान अरुण विग्रहवाली, तीन नेत्रोंसे सम्पन्न, माणिक्यजटित प्रकाशमान मुकुट तथा चन्द्रमासे सुशोभित मस्तकवाली, मुसकानयुक्त मुखमण्डल एवं स्थूल वक्षःस्थलवाली, अपने दोनों हाथोंमेंसे एक हाथमें मधुसे परिपूर्ण रत्ननिर्मित मधुकलश तथा दूसरे हाथमें लाल कमल धारण करनेवाली और रत्नमय घटपर अपना रक्त चरण रखकर सुशोभित होनेवाली शान्तस्वभाव भगवती पराम्बिकाका ध्यान करना चाहिये।

(३) भगवती गायत्री

रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां
रक्तां रक्तनवस्त्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम्।
गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डाम्बुजां
पद्माक्षीं च वरस्त्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे॥

जो रक्त, श्वेत, पीत, नील और धवल वर्णोंके श्रीमुखोंसे सम्पन्न हैं, तीन नेत्रोंसे जिनका विग्रह देदीप्यमान हो रहा है, जिन्होंने अपने रक्तवर्ण शरीरको नूतन लाल कमलोंकी मालासे सजा रखा है, जो अनेक मणियोंसे अलंकृत हैं, जो कमलके आसनपर विराजमान हैं, जिनके दो हाथोंमें कमल और कुण्डिका एवं दो हाथोंमें वर तथा अक्षमाला सुशोभित हैं, उन हंसकी सवारी करनेवाली, कुमारी अवस्थासे सम्पन्न भगवती गायत्रीकी मैं उपासना करता हूँ।

(४) भगवती अन्नपूर्णा

सिन्दूराभां त्रिनेत्राममृतशशिकलां खेचरीं रक्तवस्त्रां
पीनोत्तुङ्गस्तनाढ्यामभिनवविलसद्यौवनारम्भरम्याम्।
नानालङ्कारयुक्तां सरसिजनयनामिन्दुसंक्रान्तमूर्तिं
देवीं पाशाङ्कुशाढ्यामभयवरकरामन्नपूर्णां नमामि॥

जिनकी अंग-कान्ति सिन्दूर-सरीखी है, जो तीन नेत्रोंसे युक्त, अमृतपूर्ण शशिकलासदृश, आकाशमें गमन करनेवाली, लाल वस्त्रसे सुशोभित, स्थूल एवं ऊँचे स्तनोंसे युक्त, नवीन उल्लसित यौवनारम्भसे रमणीय, विविध अलंकारोंसे युक्त हैं, जिनके नेत्र कमलसदृश हैं, जिनकी मूर्ति चन्द्रमाको संक्रान्त करनेवाली है, जिनके हाथ पाश, अंकुश, अभय और वरद मुद्रासे सुशोभित हैं, उन अन्नपूर्णादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ।

(५) भगवती सर्वमंगला

हेमाभां करुणाभिपूर्णनयनां माणिक्यभूषोज्ज्वलां
द्वात्रिंशद्दलषोडशाष्टदलयुक्पद्मस्थितां सुस्मिताम्।
भक्तानां धनदां वरं च दधतीं वामेन हस्तेन तद्
दक्षेणाभयमातुलुङ्गसुफलं श्रीमङ्गलां भावये॥

जिनकी कान्ति स्वर्णसदृश है, जिनके नेत्र करुणासे परिपूर्ण रहते हैं, जो माणिक्यके आभूषणोंसे विभूषित, बत्तीस दल, षोडशदल, अष्टदल कमलपर स्थित, सुन्दर मुसकानसे सुशोभित, भक्तोंको धन देनेवाली, बायें हाथमें वरद मुद्रा तथा दायें हाथमें अभयमुद्रा एवं बिजौरा नीबूका सुन्दर फल धारण करनेवाली हैं, उन श्रीमंगला-देवीकी मैं भावना करता हूँ।

(६) भगवती विजया

शङ्खं चक्रं च पाशं सृणिमपि सुमहाखेटखड्गौ सुचापं
बाणं कह्लारपुष्पं तदनु करगतं मातुलुङ्गं दधानाम्।
उद्यद्बालार्कवर्णां त्रिभुवनविजयां पञ्चवक्त्रां त्रिनेत्रां
देवीं पीताम्बराढ्यां कुचभरनमितां संततं भावयामि॥

जो अपने हाथोंमें क्रमशः शंख, चक्र, पाश, अंकुश, विशाल ढाल, खड्ग, सुन्दर धनुष, बाण, कमलपुष्प और बिजौरा नीबू धारण करती हैं, जिनका रंग उदयकालीन बालसूर्यके सदृश है, जो त्रिभुवनपर विजय पानेवाली हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, जो पीताम्बरसे विभूषित और स्तनोंके भारसे झुकी रहती हैं, उन विजयादेवीकी मैं निरन्तर भावना करता हूँ।

(७) भगवती प्रत्यंगिरा

श्यामाभां च त्रिनेत्रां तां सिंहवक्त्रां चतुर्भुजाम्।
ऊर्ध्वकेशीं च सिंहस्थां चन्द्राङ्कितशिरोरुहाम्॥
कपालशूलडमरुनागपाशधरां शुभाम्।
प्रत्यङ्गिरां भजे नित्यं सर्वशत्रुविनाशिनीम्॥

जिनकी अंगकान्ति श्याम है, जिनके तीन नेत्र और चार भुजाएँ हैं, जिनका मुख सिंहके मुखसदृश है, जिनके केश ऊपर उठे रहते हैं, जो सिंहपर आरूढ़ होती हैं, जिनके बालोंमें चन्द्रमा शोभित होते हैं; जो कपाल, शूल, डमरू और नागपाश धारण करती हैं तथा समस्त शत्रुओंका विनाश करनेवाली हैं, उन मंगलकारिणी प्रत्यंगिराका मैं नित्य भजन करता हूँ।

(८) भगवती सौभाग्यलक्ष्मी

भूयाद्भूयो द्विपद्माभयवरदकरा तप्तकार्तस्वराभा
शुभ्राभ्राभेभयुग्मद्वयकरधृतकुम्भाद्भिरासिच्यमाना ।
रक्तौघाबद्धमौलिर्विमलतरदुकूलार्तवालेपनाढ्या
पद्माक्षी पद्मनाभोरसि कृतवसतिः पद्मगा श्रीः श्रियै नः॥

जिन्होंने अपने दोनों हाथोंमें दो पद्म तथा शेष दोमें वर और अभय-मुद्राएँ धारण कर रखी हैं, तप्त कांचनके समान जिनके शरीरकी कान्ति है, शुभ्र मेघकी-सी आभासे युक्त दो हाथियोंकी सूँड़ोंमें धारण किये हुए कलशोंके जलसे जिनका अभिषेक हो रहा है, रक्तवर्णके माणिक्यादि रत्नोंका मुकुट जिनके सिरपर सुशोभित है, जिनके वस्त्र अत्यन्त स्वच्छ हैं, ऋतुके अनुकूल चन्दनादि आलेपनके द्वारा जिनके अंग लिप्त हैं, पद्मके समान जिनके नेत्र हैं, पद्मनाभ अर्थात् क्षीरशायी विष्णुभगवान्के उरःस्थलमें जिनका निवास है, वे कमलके आसनपर विराजमान श्रीदेवी हमारे लिये परम ऐश्वर्यका विधान करें।

(९) भगवती अपराजिता

नीलोत्पलनिभां देवीं निद्रामुद्रितलोचनाम्।
नीलकुञ्चितकेशाग्र्यां निम्ननाभीवलित्रयाम्॥
वराभयकराम्भोजां प्रणतार्तिविनाशिनीम्।
पीताम्बरवरोपेतां भूषणस्त्रग्विभूषिताम्॥
वरशक्त्याकृतिं सौम्यां परसैन्यप्रभञ्जिनीम्।
शङ्खचक्रगदाभीतिरम्यहस्तां त्रिलोचनाम्॥
सर्वकामप्रदां देवीं ध्यायेत् तामपराजिताम्॥

जिनकी कान्ति नीलकमल-सरीखी है, जिनके नेत्र निद्रासे मुँदे रहते हैं, जिनके केशोंके अग्रभाग नीले और घुँघराले हैं, जिनकी नाभि गहरी और त्रिवलीसे युक्त है, जो करकमलोंमें वरद और अभयमुद्रा धारण करती हैं, शरणागतोंकी पीड़ाको नष्ट करनेवाली हैं, उत्तम पीताम्बर धारण करती हैं, आभूषण और मालासे विभूषित रहती हैं, जिनकी आकृति श्रेष्ठ शक्तिसे युक्त और सौम्य है, जो शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेवाली हैं, जिनके हाथ शंख, चक्र, गदा और अभयमुद्रासे सुशोभित रहते हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जो समस्त कामनाओंको देनेवाली हैं, उन अपराजितादेवीका ध्यान करना चाहिये।

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥

जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री, स्वाहा और स्वधा—इन नामोंसे प्रसिद्ध जगदम्बिके! आपको नमस्कार है।

आरती

१—श्रीदुर्गाजी

जगजननी जय! जय!! (मा! जगजननी जय! जय!!)
भयहारिणि, भवतारिणि, भवभामिनि जय! जय ॥ टेक ॥
तू ही सत-चित-सुखमय शुद्ध ब्रह्मरूपा।
सत्य सनातन सुन्दर पर-शिव सुर-भूपा ॥ जग० ॥
आदि अनादि अनामय अविचल अविनाशी।
अमल अनन्त अगोचर अज आनँदराशी ॥ जग० ॥
अविकारी, अघहारी, अकल, कलाधारी।
कर्ता विधि, भर्ता हरि, हर सँहारकारी ॥ जग० ॥
तू विधिवधू, रमा, तू उमा, महामाया।
मूल प्रकृति विद्या तू, तू जननी, जाया ॥ जग० ॥
राम, कृष्ण तू, सीता, व्रजरानी राधा।
तू वांछाकल्पद्रुम, हारिणि सब बाधा ॥ जग० ॥
दश विद्या, नव दुर्गा, नानाशस्त्रकरा।
अष्टमातृका, योगिनि, नव नव रूप धरा ॥ जग० ॥
तू परधामनिवासिनि, महाविलासिनि तू।
तू ही श्मशानविहारिणि, ताण्डवलासिनि तू ॥ जग० ॥
सुर-मुनि-मोहिनि सौम्या तू शोभाधारा।
विवसन विकट-सरूपा, प्रलयमयी धारा ॥ जग० ॥
तू ही स्नेह-सुधामयि, तू अति गरलमना।
रत्नविभूषित तू ही, तू ही अस्थि-तना ॥ जग० ॥

मूलाधारनिवासिनि, इह-पर-सिद्धिप्रदे।
कालातीता काली, कमला तू वरदे ॥ जग० ॥
शक्ति शक्तिधर तू ही नित्य अभेदमयी।
भेदप्रदर्शिनि वाणी विमले! वेदत्रयी ॥ जग० ॥
हम अति दीन दुखी मा! विपत-जाल घेरे।
हैं कपूत अति कपटी, पर बालक तेरे ॥ जग० ॥
निज स्वभाववश जननी! दयादृष्टि कीजै।
करुणा कर करुणामयि! चरण-शरण दीजै ॥ जग० ॥

२—श्रीदेवीजी

आरति कीजै शैल-सुताकी ॥ आरति०॥
जगदंबाकी आरति कीजै।
स्नेह-सुधा, सुख सुन्दर लीजै ॥
जिनके नाम लेत दृग भीजै।
ऐसी वह माता वसुधाकी ॥ आरति०॥
पाप-विनाशिनि कलि-मल-हारिणि।
दयामयी, भवसागरतारिणि ॥
शस्त्र-धारिणी, शैल-विहारिणि।
बुद्धिराशि गणपति माताकी ॥ आरति०॥
सिंहवाहिनी मातु भवानी।
गौरव-गान करैं जगप्रानी ॥
शिवके हृदयासनकी रानी।
करैं आरती मिल-जुल ताकी ॥ आरति०॥

३—श्रीअम्बाजी

जय अम्बे गौरी मैया जय श्यामागौरी।
तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिव री॥ जय०॥
माँग सिंदूर विराजत टीको मृगमदको।
उज्ज्वलसे दोउ नैना, चंद्रवदन नीको॥ जय०॥
कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजै।
रक्त-पुष्प गल माला, कण्ठनपर साजै॥ जय०॥
केहरि वाहन राजत, खड्ग खपर धारी।
सुर-नर-मुनि-जन सेवत, तिनके दुखहारी॥ जय०॥
कानन कुण्डल शोभित, नासाग्रे मोती।
कोटिक चंद्र दिवाकर सम राजत ज्योती॥ जय०॥
शुम्भ निशुम्भ विदारे, महिषासुर-घाती।
धूम्रविलोचन नैना निशिदिन मदमाती॥ जय०॥
चण्ड मुण्ड संहारे, शोणितबीज हरे।
मधु कैटभ दोउ मारे, सुर भयहीन करे॥ जय०॥
ब्रह्माणी, रुद्राणी तुम कमलारानी।
आगम-निगम-बखानी, तुम शिव पटरानी॥ जय०॥
चौंसठ योगिनि गावत, नृत्य करत भैरूँ।
बाजत ताल मृदंगा औ बाजत डमरू॥ जय०॥
तुम ही जगकी माता, तुम ही हो भरता।
भक्तनकी दुख हरता सुख सम्पति करता॥ जय०॥
भुजा चार अति शोभित, वर-मुद्रा धारी।
मनवांछित फल पावत, सेवत नर-नारी॥ जय०॥
कंचन थाल विराजत अगर कपुर बाती।
(श्री) मालकेतुमें राजत कोटिरतन ज्योती॥ जय०॥
(श्री) अम्बेजीकी आरति जो कोइ नर गावै।
कहत शिवानँद स्वामी, सुख सम्पति पावै॥ जय०॥

४—श्रीज्वाला-कालीजी

'मंगल' की सेवा, सुन मेरी देवा! हाथ जोड़ तेरे द्वार खड़े।
पान-सुपारी, ध्वजा-नारियल ले ज्वाला तेरी भेंट धरे॥
सुन जगदम्बे न कर बिलंबे संतनके भंडार भरे।
संतन प्रतिपाली सदा खुशाली जै काली कल्याण करे॥ टेक॥
'बुद्ध' विधाता तू जगमाता मेरा कारज सिद्ध करे।
चरण-कमलका लिया आसरा शरण तुम्हारी आन परे॥
जब-जब भीर पड़े भक्तनपर तब-तब आय सहाय करे।
संतन प्रतिपाली॰॥
'गुरु' के बार सकल जग मोह्यो तरुणीरूप अनूप धरे।
माता होकर पुत्र खिलावै, कहीं भार्या भोग करे॥
'शुक्र' सुखदाई सदा सहाई संत खड़े जयकार करे।
संतन प्रतिपाली॰॥
ब्रह्मा विष्णु महेस फल लिये भेंट देन तव द्वार खड़े।
अटल सिंहासन बैठी माता सिर सोनेका छत्र फिरे॥
वार 'शनिश्चर' कुंकुम बरणी, जब लुंकड़पर हुकुम करे।
संतन प्रतिपाली॰॥
खड्ग खपर त्रैशूल हाथ लिये रक्तबीजकूँ भस्म करे।
शुंभ निशुंभ क्षणहिमें मारे महिषासुरको पकड़ दले॥
'आदित' वारी आदि भवानी जन अपनेका कष्ट हरे।
संतन प्रतिपाली॰॥
कुपित होय कर दानव मारे चण्ड मुण्ड सब चूर करे।
जब तुम देखौ दयारूप हो, पलमें संकट दूर टरे॥
'सोम' स्वभाव धर्‌यो मेरी माता जनकी अर्ज कबूल करे।
संतन प्रतिपाली॰॥

सात बारकी महिमा बरनी सब गुण कौन बखान करे।
सिंहपीठपर चढ़ी भवानी अटल भवनमें राज्य करे॥
दर्शन पावें मंगल गावें सिध साधक तेरी भेंट धरे।
संतन प्रतिपाली०॥
ब्रह्मा वेद पढ़े तेरे द्वारे शिवशंकर हरि ध्यान करे।
इन्द्र कृष्ण तेरी करैं आरती चमर कुबेर डुलाय करे॥
जय जननी जय मातु भवानी अचल भवनमें राज्य करे।
संतन प्रतिपाली सदा खुशाली जय काली कल्याण करे॥

५—श्रीगीताजी

जय भगवद्गीते, माँ जय भगवद्गीते।
हरि-हिय-कमल-विहारिणि सुन्दर सुपुनीते॥ टेक॥
कर्म-सुमर्म-प्रकाशिनि कामासक्तिहरा।
तत्त्व-ज्ञान-विकाशिनि विद्या ब्रह्म-परा॥ जय०॥
निश्चल-भक्ति-विधायिनि निर्मल मलहारी।
शरण-रहस्य-प्रदायिनि सब विधि सुखकारी॥ जय०॥
राग-द्वेष-विदारिणि कारिणि मोद सदा।
भव-भय-हारिणि तारिणि परमानन्दप्रदा॥ जय०॥
आसुर-भाव-विनाशिनि नाशिनि तम-रजनी।
दैवी-सद्गुण-दायिनि हरि-रसिका सजनी॥ जय०॥
समता त्याग-सिखावनि, हरिमुखकी बानी।
सकल शास्त्रकी स्वामिनि, श्रुतियोंकी रानी॥ जय०॥
दया-सुधा-बरसावनि मातु! कृपा कीजै।
हरि-पद-प्रेम दान कर अपनो कर लीजै॥ जय०॥

६—श्रीसरस्वतीजी

जय सरस्वती माता, मैया जय सरस्वती माता।
सद्‌गुण, वैभवशालिनि, त्रिभुवन विख्याता॥ जय०॥
चन्द्रवदनि, पद्‌मासिनि द्युति मंगलकारी।
सोहे हंस-सवारी, अतुल तेजधारी॥ जय०॥
बायें कर में वीणा, दूजे कर माला।
शीश मुकुट-मणि सोहे, गले मोतियन माला॥ जय०॥
देव शरण में आये, उनका उद्धार किया।
पैठि मंथरा दासी, असुर-संहार किया॥ जय०॥
वेद-ज्ञान-प्रदायिनि, बुद्धि-प्रकाश करो।
मोहाज्ञान तिमिर का सत्वर नाश करो॥ जय०॥
धूप-दीप-फल-मेवा—पूजा स्वीकार करो।
ज्ञान-चक्षु दे माता, सब गुण-ज्ञान भरो॥ जय०॥
माँ सरस्वती की आरती, जो कोई जन गावे।
हितकारी, सुखकारी ज्ञान-भक्ति पावे॥ जय०॥

७—श्रीलक्ष्मीजी

ॐ जय लक्ष्मी माता, (मैया) जय लक्ष्मी माता।
तुमको निसिदिन सेवत हर-विष्णू-धाता॥ ॐ॥
उमा, रमा, ब्रह्माणी, तुम ही जग-माता।
सूर्य-चन्द्रमा ध्यावत, नारद ऋषि गाता॥ ॐ॥
दुर्गारूप निरंजनि, सुख-सम्पति दाता।
जो कोइ तुमको ध्यावत, ऋधि-सिधि-धन पाता॥ ॐ॥
तुम पाताल-निवासिनि, तुम ही शुभदाता।
कर्म-प्रभाव-प्रकाशिनि, भवनिधिकी त्राता॥ ॐ॥

जिस घर तुम रहती, तहँ सब सद्‌गुण आता।
सब सम्भव हो जाता, मन नहिं घबराता॥ ॐ॥
तुम बिन यज्ञ न होते, वस्त्र न हो पाता।
खान-पानका वैभव सब तुमसे आता॥ ॐ॥
शुभ-गुण-मन्दिर सुन्दर, क्षीरोदधि-जाता।
रत्न चतुर्दश तुम बिन कोई नहिं पाता॥ ॐ॥
महालक्ष्मी (जी) की आरति, जो कोई नर गाता।
उर आनन्द समाता, पाप उतर जाता॥ ॐ॥

८—श्रीजानकीजी

आरति श्रीजनक-दुलारीकी।
सीताजी रघुबर-प्यारीकी॥ टेक॥
जगत-जननि जगकी विस्तारिणि,
नित्य सत्य साकेत-विहारिणि,
परम दयामयि दीनोद्धारिणि,
मैया भक्तन-हितकारीकी॥ सीताजी०॥
सती शिरोमणि पति-हित-कारिणि,
पति-सेवा हित वन-वन चारिणि,
पति-हित पति-वियोग-स्वीकारिणि,
त्याग-धर्म-मूरति-धारीकी॥ सीताजी०॥
विमल-कीर्ति सब लोकन छाई,
नाम लेत पावन मति आई,
सुमिरत कटत कष्ट दुखदाई,
शरणागत-जन-भय-हारीकी॥ सीताजी०॥

॥ श्रीहरि: ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित सर्वोपयोगी प्रकाशन

कोड	पुस्तक
55	महकते जीवनफूल
57	मानसिक दक्षता
59	जीवनमें नया प्रकाश
60	आशाकी नयी किरणें
64	प्रेमयोग
119	अमृतके घूँट
120	आनन्दमय जीवन
122	एक लोटा पानी
129	एक महात्माका प्रसाद
130	तत्त्वविचार
131	सुखी जीवन
132	स्वर्णपथ
133	विवेक-चूड़ामणि
134	सती द्रौपदी
137	उपयोगी कहानियाँ
147	चोखी कहानियाँ
151	सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला
157	सती सुकला
159	आदर्श उपकार— (पढ़ो, समझो और करो)
160	कलेजेके अक्षर ,,
161	हृदयकी आदर्श विशालता ,,
162	उपकारका बदला ,,
163	आदर्श मानव-हृदय ,,
164	भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो)
165	मानवताका पुजारी ,,
166	परोपकार और सच्चाईका फल (पढ़ो, समझो और करो)
191	भगवान् कृष्ण
193	भगवान् राम
195	भगवान्‌पर विश्वास
196	मननमाला
202	मनोबोध
387	प्रेम-सत्संग-सुधामाला
501	उद्धव-सन्देश
510	असीम नीचता और असीम साधुता
542	ईश्वर
668	प्रश्नोत्तरी
698	मार्क्सवाद और रामराज्य— स्वामी करपात्रीजी
701	गर्भपात उचित या....
747	सप्त महाव्रत
774	कल्याणकारी दोहा-संग्रह, गीताप्रेस-परिचयसहित
827	तेईस चुलबुली कहानियाँ

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

गोरखपुर-२७३००५	गीताप्रेस —पो० गीताप्रेस website : www.gitapress.org / e-mail: booksales@gitapress.org	© (०५५१) २३३४७२१; फैक्स २३३६९९७
दिल्ली-११०००६	२६०९, नयी सड़क	© (०११) २३२६९६७८; फैक्स २३२५९१४०
कोलकाता-७००००७	गोबिन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गाँधी रोड e-mail:gobindbhawan@gitapress.org	© (०३३) २२६८६८९४; फैक्स २२६८०२५१
मुम्बई-४००००२	२८२, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट) मरीन लाईन्स स्टेशनके पास	© (०२२) २२०३०७१७
कानपुर-२०८००१	२४/५५, बिरहाना रोड	© (०५१२) २३५२३५१; फैक्स २३५२३५१
पटना-८००००४	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने	© (०६१२) २३००३२५
राँची-८३४००१	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर	© (०६५१) २२१०६८५
सूरत-३९५००१	वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने, भटार रोड e-mail: suratdukan@gitapress.org;	© (०२६१) २२३७३६२, २२३८०६५
इन्दौर-४५२००१	जी० ५, श्रीवर्धन, ४ आर. एन. टी. मार्ग	© (०७३१) २५२६५१६, २५११९७७
जलगाँव-४२५००१	७, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास	© (०२५७) २२२६३९३
हैदराबाद-५०००९६	४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार	© (०४०) २४७५८३११
नागपुर-४४०००२	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारी रोड	© (०७१२) २७३४३५४
कटक-७५३००९	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी	© (०६७१) २३३५४८१
रायपुर-४९२००९	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक	© (०७७१) ४०३४४३०
वाराणसी-२२१००१	५९/९, नीचीबाग	© (०५४२) २४१३५५१
हरिद्वार-२४९४०१	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार	© (०१३३४) २२२६५७
ऋषिकेश-२४९३०४	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम e-mail:gitabhawan@gitapress.org	© (०१३५) २४३०१२२, २४३२७९२
कोयम्बटूर-६४१०१८	गीताप्रेस मैंशन, ८/१ एम, रेसकोर्स	© (०४२२) ३२०२५२१
बेंगलोर-५६००२७	१५, फोर्थ 'इ' क्रास, के० एस० गार्डेन, लालवाग रोड	© (०८०) २२९५५१९०

स्टेशन-स्टाल— दिल्ली (प्लेटफार्म नं० १२); नयी दिल्ली (नं० ८-९); हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली] (नं० ४-५); कोटा [राजस्थान] (नं० १); बीकानेर (नं० १); गोरखपुर (नं० १); कानपुर (नं० १); लखनऊ [एन० ई० रेलवे]; वाराणसी (नं० ४-५); मुगलसराय (नं० ३-४); हरिद्वार (नं० १); पटना (मुख्य प्रवेशद्वार); राँची (नं० १); धनबाद (नं० २-३); मुजफ्फरपुर (नं० १); समस्तीपुर (नं० २); हावड़ा (नं० ५ तथा १८ दोनोंपर); सियालदा मेन (नं० ८); आसनसोल (नं० ५); कटक (नं० १); भुवनेश्वर (नं० १); राऊरकेला (पुस्तक-ट्राली); राजगंगपुर (पुस्तक-ट्राली); औरंगाबाद [महाराष्ट्र] (नं० १); सिकन्दराबाद [आं० प्र०] (नं० १); गुवाहाटी (नं० १); खड़गपुर (नं० १-२); रायपुर [छत्तीसगढ़] (नं० १) एवं अन्तर्राज्यीय बस-अड्डा, दिल्ली।

फुटकर पुस्तक-दूकानें

चूरू-३३१००१	ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क © (०१५६२) २५२६७४
ऋषिकेश-२४९१९२	मुनिकी रेती
तिरुपति-५१७५०४	शॉप नं० ५६, टी० टी० डी० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, तिरुमलाई हिल्स

GPPN 1774

Code 1774